ऋतु आये फल होय

ज़ेन पर ओशो द्वारा फरवरी 1975 में अंग्रेजी में दिये गये अमृत प्रवचनों का हिन्दी में अनुवाद।

Translation of The Grass Grows by Itself.

अनुक्रम

1. ज़ेन का महत्व 2
2. सद्गुरु और शिष्ट 33
3. शून्यता और भिसु की नाक 63
4. लुलियांग का जलप्रपात 97
5. सद्गुरु का मौन 127
6. जागरण 158
7. मैं अभी मरा नहीं हूं 190
8. गहरे नीले और बैंजली रंगों के पुष्पों की घाटी 215

पहला प्रवचन

ज़ेन का महत्व

दिनांक 21 फरवरी 1975

सारसूत्र:

किसी व्यक्ति ने सद्गुरु बोकूजू से पूछा :

हमें कपड़े पहनने होते हैं और प्रतिदिन भोजन करना होता है,

इस सभी से हम कैसे बाहर आएं?

बोकूजू ने उत्तर दिया :

हम कपड़े पहनें, हम भोजन करें।

प्रश्नकर्त्ता ने कहा :

मैं कुछ समझा नहीं।

बोकूजू ने उत्तर दिया :

यदि तुम नहीं समझे,

तो अपने कपड़े पहन लो,

और खाना खा लो।

ज़ेन क्या है?

ज़ेन है एक बहुत असाधारण विकास।

बहुत थोड़े से असाधारण लोग ही ऐसी सम्भावना को यथार्थ में बदल पाते हैं। क्योंकि इसमें बहुत से खतरे और उलझनें आती हैं।

बहुत समय पूर्व जो एक सम्भावना अस्तित्व में थी, सौभाग्य से उसका आध्यात्मिक विकास हो सका–और ज़ेन जैसी अनूठी चीज का जन्म हुआ। लेकिन कभी भी उसे समग्रता से समझा नहीं गया। मनुष्य की चेतना के पूरे इतिहास में केवल एक बार ही ज़ेन जैसी कोई चीज अस्तित्व में आई।

ऐसा होना अति असाधारण है।

इसलिए पहले मैं तुम्हें यह समझाना चाहूंगा कि ज़ेन है क्या? क्योंकि यदि तुम इसे समझे ही नहीं, तो यह प्रसंग अधिक सहायक न होंगे, तुम्हें इनकी पूरी पृष्ठभूमि जानना आवश्यक है।

इसी पृष्ठभूमि और इसी संदर्भ में, यह प्रसंग स्पष्ट हो सकेंगे–तभी अकस्मात् तुम उसके अर्थ और महत्व को प्राप्त कर सकोगे, अन्यथा वे अलग-अलग इकाइयां हैं।

तुम उनका आनन्द ले सकते हो, कभी तुम उन पर हंस सकते हो; वे बहुत काव्यात्मक हैं; वे अपने आप में बहुत सुन्दर, और अनूठी कला के नमूने हैं, लेकिन इन प्रसंगों को केवल बाह्य दृष्टि से देखने पर कि ' ज़ेन क्या है तुम उसके मर्म तक गहरे न उतर सकोगे।

ज़ेन के विकास के साथ यह घटनाएं कैसे घटीं इन्हें समझने के लिए पहले आहिस्ता से मेरा अनुसरण करने का प्रयास करें। ज़ेन का जन्म भारत में हुआ, वह चीन में विकसित हुआ, और उसकी खिलावट जापान में हुई।

तुम कैसे सभी से सम्बन्ध तोड़कर अलग हो जाओ,

तुम कैसे अपने अन्दर प्रवेश कर बाहर को भूल जाओ।

यही कारण है कि ज़ेन का जन्म भारत में हुआ।

ज़ेन का अर्थ होता है–ध्यान।

'ध्यान' शब्द ही बदलकर जापानी भाषा में ज़ेन हो गया।

ध्यान है–भारत की चेतना का समग्र-प्रयास।

ध्यान का अर्थ होता है–इतना अधिक अकेले हो जाना,

स्वयं अपने ही अस्तित्व की इतनी अधिक गहराई में अन्दर उतर जाना,

कि जहां विचार की एक तरंग भी न रहे।

वास्तव में अंग्रेजी में ध्यान का सीधा अनुवाद नहीं किया जा सकता।

'कनटेश्वेशन' ठीक शब्द नहीं है ध्यान के लिए

'कनटेफ्लेशन' का अर्थ होता है–विचार करना, चिंतन करना,

'मेडीटेशन' भी इसके लिए ठीक शब्द नहीं है

क्योंकि मेडीटेशन को चित्त एकाग्र करने के लिए कोई वस्तु चाहिए

इसका अर्थ है कि वहां कुछ चीज है।

तुम क्राइस्ट पर अथवा उनके क्रॉस पर मन को एकाग्र या 'मेडीटेट' कर सकते हो। लेकिन ध्यान का अर्थ होता है–इतने अकेले हो जाना कि वहां मन एकाग्र करने के लिए भी कोई वस्तु न हो,

केवल वैयक्तिकता ही अस्तित्व में रहे–बिना बादलों की, शुभ्र निरभ्र आकाश जैसी शुद्ध चेतना ही रहे।

जब यह शब्द चीन पहुंचा, तो वह 'चान' बन गया।

जब 'चान' जापान पहुंचा, वह 'ज़ेन' बन गया,

यह संस्कृत भाषा के मूल, ध्यान से ही उद्‌भूत है।

भारत, ध्यान को जन्म दे सकता है।

हजारों वर्षों तक भारत की पूरी चेतना, ध्यान के पथ पर यात्रा करती रही है, कि कैसे विचारों को गिराकर

शुद्ध चेतना में जड़ें जमाई जाएं।

बुद्ध के साथ ही यह बीज अस्तित्व में आया।

गौतम बुद्ध से पहले भी

यह बीज कई बार अस्तित्व में आया था, लेकिन वह ठीक भूमि न पा सका था, इसीलिए विलुप्त हो गया।

और यदि यह बीज भारतीय चेतना को दे दिया जाए–तो वह मिट जाएगा, क्योंकि भारतीय चेतना अधिक से अधिक अन्दर की ओर गतिशील होगी, और बीज लघु से लघुतम, सूक्ष्म से और अधिक सूक्ष्म होता जाएगा,

जब तक कि वह क्षण नहीं आ जाता कि वह अदृश्य हो जाए।

केंद्र की ओर मुड़ती ऊर्जा, चीजों को छोटा और सूक्ष्म बनाती है–

उन्हें आणविक बना देती है–जब तक कि वह अकस्मात मिट न जाए गौतम बुद्ध से भी काफी समय पूर्व उस बीज का जन्म हुआ था–गौतम बुद्ध ध्यान करने वाले कोई पहले व्यक्ति न थे।

और एक ध्यानी बनने के लिए एक महान ध्यानी होने में–वास्तव में अतीत की लम्बी संखला में वह अंतिम में से एक थे।

उन्हें स्वयं अपने से पूर्व हुए चौबीस बुद्धों का स्मरण था।

तब वहां चौबीस जैन तीर्थंकर भी हुए थे

और वे सभी ध्यानी थे।

वे कुछ और करते ही नहीं थे, सिवाय ध्यान के, वे बस ध्यान, ध्यान और ध्यान करते थे।

और वे एक ऐसे बिंदु पर आए जहां केवल उनका होना भर रह गया,

और उसके अतिरिक्त प्रत्येक चीज मिट गई, भाप बन कर उड़ गई।

पारसनाथ, नेमिनाथ, महावीर और अन्य दूसरों के साथ ही–उस बीज का जन्म हुआ।

तब से वह भारत की चेतना के साथ ही बना रहा।

भारत की चेतना इस बीज को जन्म तो दे सकती है,

लेकिन उसके विकास के लिए ठीक भूमि नहीं बन सकती।

वह उसी दिशा में काम किए चली जाती है,

और बीज सूक्ष्म से सूक्ष्म होता जाता है।

परमाणु अणु और तब वह विलुप्त हो जाता है।

ऐसा ही कुछ उपनिषदों के साथ घटा,

ऐसा ही कुछ वेदों के साथ घटा,

और ऐसा ही कुछ महावीर तथा अन्य लोगों के साथ ध्यान का हुआ।

बुद्ध के साथ भी ऐसा ही होने जा रहा था,

पर बोधिधर्म ने उसे बचा लिया।

यदि वह बीज भारत की चेतना के साथ छोड़ दिया जाता,

तो वह कभी अंकुरित होता ही नहीं, और विलुप्त हो गया होता। क्योंकि उसके अंकुरित होने के लिए एक अलग तरह की–

मिट्टी की जरूरत होती है, एक बहुत ही संतुलित भूमि,

और अंतर्मुखी होना बहुत गहरे में एक असंतुलन है, एक अति है। बोधिधर्म इस बीज को अपने साथ चीन लाए।

चेतना के इतिहास में उन्होंने महानतम कार्यों में से यह कार्य किया। बुद्ध ने जो बीज संसार को दिया था, उन्होंने उसके विकास के लिए ठीक भूमि की खोज की।

ऐसा कहा जाता है कि बुद्ध ने स्वयं यह कहा था–

कि मेरा धर्म पांच सौ वर्षों से अधिक अस्तित्व में न रहेगा,

और तब वह विलुप्त हो जायेगा।

वह इसके प्रति सजग थे कि इसी तरह हमेशा होता रहा है

और भारत की चेतना, ध्यान के बीज को पीसती चली जाती है, उसे छोटे से छोटे टुकड़ों में तोड़ती चली जाती है

और तब एक क्षण आता है

कि वह अत्यंत लघु और सूक्ष्म बनकर अदृश्य हो जाता है।

वह और आगे इस संसार का भाग रह ही नहीं जाता,
और आकाश के शून्य में विलीन हो जाता है।

बोधिधर्म का प्रयोग बहुत महान था
उन्होंने विश्व में गहराई से चारों ओर उस स्थान को खोजा, जहां ध्यान का बीज विकसित हो सके।
चीन, भारत अथवा जापान की भांति नहीं है
वह एक बहुत संतुलित देश था,
कक्यूशियस की विचार धारा ने उसे सदा मध्य में बनाए रखा न तो अंतर्मुखी और न बहिर्मुखी।
न तो इस संसार के बारे में बहुत अधिक सोचने वाला,
और न उस संसार के बारे में अधिक विचार करने वाला
ठीक मध्य में बने रहने वाला।

चीन ने किसी भी धर्म को जन्म नहीं दिया,
उसने केवल नैतिकता और आदर्शों को जन्म दिया।
वहां कभी किसी धर्म का जन्म हुआ ही नहीं
चीन की चेतना किसी धर्म को जन्म दे ही नहीं सकती थी।
वह किसी बीज का सृजन नहीं कर सकती थी।
चीन में जिन सभी धर्मों का अस्तित्व रहा है
वे सभी बाहर से आए हैं, वे सभी आयात किए गए।
बौद्ध धर्म, हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाइयत,
ये सभी बाहर के देशों से चीन में आए।
चीन की भूमि उपजाऊ और सुन्दर है, लेकिन वह किसी धर्म को जन्म नहीं दे सकती,
क्योंकि धर्म को जन्म देने के लिए
किसी को भी अपने ही अन्दर के संसार में गहराई तक जाना होता है।
धर्म को जन्म देने के लिए
किसी को स्त्री के शरीर के गर्भ जैसा बनना होता है।
स्त्रैण चेतना अत्यधिक अंतर्मुखी होती है।

एक स्त्री स्वयं अपने तक सीमित रहती है,
उसके चारों ओर अपना एक छोटा सा संसार होता है,
जितना भी सम्भव हो सके, उतना कम से कम छोटा संसार।
यही कारण है कि एक स्त्री को तुम बहुत बड़ी और महत्वपूर्ण चीजों में– दिलचस्पी लेते हुए नहीं देख सकते।
नहीं, तुम उससे वियतनाम के बारे में चर्चा-परिचर्चा नहीं कर सकते,
वह उसकी फिक्र करती ही नहीं।
वियतनाम बहुत अधिक दूर है, उसके सोचने के दायरे से बाहर है।

उसका सम्बन्ध तो अपने परिवार अपने पति, अपने बच्चों,

कुत्ते, फर्नीचर, रेडियो और टी.वी.सेट से ही होता है।

उसके चारों ओर एक छोटा सा सीमित संसार होता है।

क्योंकि उसके चारों ओर का संसार बहुत छोटा होता है

इसलिए पुरुष के लिए स्त्री से बुद्धिगत चर्चा करना बहुत कठिन है–वे दोनों अलग-अलग संसार में रहते हैं।

स्त्री केवल तभी सुन्दर लगती है, जब वह खामोश रहती है,

जिस क्षण वह बात करना शुरू करती है, तो मूर्खतापूर्ण चीजें उसके बाहर निकलना शुरू हो जाती हैं। वह बुद्धिमत्तापूर्ण चर्चा-परिचर्चा कर ही नहीं सकती।

वह प्रेम कर सकती है, लेकिन बुद्धिमानी की बात नहीं कर सकती,

वह कोई बड़ी दार्शनिक नहीं बन सकती। नहीं, यह सम्भव ही नहीं है। यह चीजें उसकी पहुंच के बाहर हैं, वह उनकी फिक्र करती भी नहीं।

वह अपने ही संसार के एक छोटे से दायरे में रहती है,

और वह स्वयं ही उसका केंद्र होती है, और जो कुछ भी अर्थपूर्ण होता है, उसमें केवल वही अर्थपूर्ण होता है, जिसका सम्बन्ध स्वयं उससे ही हो–अन्यथा वह अर्थपूर्ण होता ही नहीं है।

वह यह समझ ही नहीं सकती कि तुम वियतनाम की चिंता क्यों कर रहे हो, आखिर तुम्हारा उससे क्या मतलब है?

वियतनाम का तुमसे कहीं कोई सम्बन्ध है ही नहीं।

वहां कोई युद्ध हो रहा है अथवा नहीं, तुम्हारा उससे क्या लेना देना?

और घर में बच्चा बीमार है और तुम वियतनाम की फिक्र कर रहे हो।

वह विश्वास ही नहीं कर पाती कि वह तुम्हारे निकट बैठी है,

क्योंकि तुम तो अखबार पड़े जा रहे हो।

स्त्री एक पृथक संसार में रहती है

वह आत्मकेन्द्रित और अंतर्मुखी होती है। सभी स्त्रियां, भारतीय स्त्रियों की तरह होती हैं–वे कहीं की भी हों, इससे कोई भी अंतर नहीं पड़ता।

पुरुष की प्रवृत्ति अपने केंद्र से दूर जाने की होती है, उसका रस बाहर में है। जिस क्षण वह कोई बहाना खोज पाता है, वह घर से निकल भागेगा।

वह घर केवल तभी आता है, जब वह कहीं अन्यत्र नहीं जा सकता,

जब सभी क्लब और होटल बंद हो जाते हैं, तब आखिर किया क्या जाए?

जब कहीं भी नहीं जाना होता है, वह घर तभी वापस लौटता है।

एक स्त्री हमेशा गृह-केंन्द्रित होती है, घर ही उसका आधार होता है।

वह घर के बाहर केवल तभी जाती है, जब जाना बहुत जरूरी होता है,

उससे अन्यथा वह कुछ कर ही नहीं सकती।

जब उसके लिए बाहर जाना एक अनिवार्यता बन जाती है, वह तभी बाहर जाती है, अन्यथा उसका आधार घर ही है।

पुरुष एक आवारा घुमक्कड़ है।

पूरा पारिवारिक जीवन स्त्री द्वारा ही सृजित किया जाता है, पुरुष द्वारा नहीं। वास्तव में सभ्यता स्त्री के कारण ही अस्तित्व में है, पुरुष के द्वारा नहीं। यदि उसे अनुमति मिले तो वह एक घुमक्कड़ ही बनना चाहेगा–

न कोई घर हो और न सभ्यता के बन्धन।

पुरुष की चेतना बाहर की ओर उम्मुख है, जब कि स्त्री की अन्दर की ओर, पुरुष बहिर्मुखी है और स्त्री है– अंतर्मुखी।

पुरुष की दिलचस्पी हमेशा स्वयं अपने से हटकर किसी अन्य चीज में होती है, यही कारण है कि वह अधिक स्वस्थ दीखता है,

क्योंकि जब तुम स्वयं से अधिक सम्बन्ध रखने लगते हो

तुम अस्वस्थ हो जाते हो। पुरुष अधिक प्रसन्न दिखाई देता है।

स्त्री को तुम हमेशा अपने ही बारे में दिलचस्पी लेते उदास पाओगे,

जरा सा सिर दर्द हुआ नहीं,

कि वह सिरदर्द, स्वयं में अधिक दिलचस्पी लेने और घर में ही रहने के कारण, अनुपात में कहीं अधिक बड़ा हो जाता है। लेकिन एक पुरुष अपने सिरदर्द को भूल सकता है,

उसके पास बहुत से अन्य सिर दर्द भी हैं।

वह अपने चारों ओर बहुत से सिर दर्द स्वयं उत्पन्न करता है,

इसलिए उनसे बाहर आकर स्वयं के सिर दर्द बने रहने की

कोई सम्भावना रहती ही नहीं,

और वह दर्द इतना कम होता है, कि वह उसके बारे में भूल सकता है।

स्त्री हमेशा अपने ही बारे में सोचती रहती है

कभी उसका पैर दुख रहा है, कभी कुछ उसके हाथ में हो रहा है,

कभी उसकी पीठ में दर्द है, तो कोई गड़बड़ उसके पेट के साथ है,

उसे हमेशा कुछ न कुछ होता ही रहता है,

क्योंकि उसकी अपनी चेतना अपने अन्दर की ओर केन्द्रित है।

एक पुरुष की शारीरिक व्याधियां कम होती हैं, वह कहीं अधिक

स्वस्थ रहता है। कहीं अधिक बाहर जाते हुए उसकी दिलचस्पी दूसरों के

बारे में कहीं अधिक होती है।

यही कारण है कि सभी धर्मों में तुम यह पाओगे

कि यदि वहां पांच लोग उपस्थित हैं,

तो उनमें पुरुष एक ही होगा और स्त्रियां चार,

और वह एक पुरुष भी केवल किसी स्त्री के कारण ही आया हो सकता है पत्नी मंदिर जा रही थी, इसलिए पति को उसके साथ जाना पड़ा, अथवा वह कोई धार्मिक प्रवचन सुनने जा रही थी, इसलिए उसे उसके साथ जाना पड़ा।

सभी गिरजाघरों में भी

सभी पूजाघरों और मंदिरों में भी तुम जहां कहीं भी जाओ,

स्त्री-पुरुषों का तुम्हें यही अनुपात मिलेगा।

यहां तक कि बुद्ध और महावीर के पास भी जाने वालों में

स्त्री-पुरुषों का यही अनुपात था।

बुद्ध के पचास हजार भिक्षुओं में

चालीस हजार स्त्रियां और दस हजार पुरुष थे।

शारीरिक रूप से पुरुष अधिक स्वस्थ हो सकता है,

आध्यात्मिक रूप से स्त्री अधिक स्वस्थ हो सकती है,

क्योंकि उनकी दिलचस्पियां भिन्न-भिन्न हैं।

जब तुम दूसरों के बारे में अधिक दिलचस्पी लेते हो,

तुम अपने शरीर के बारे में भूल जाते हो,

तुम शारीरिक रूप से अधिक स्वस्थ हो सकते हो

लेकिन धार्मिक रूप में तुम इतनी सरलता से विकसित नहीं हो सकते। धार्मिक विकास के लिए अंतर्संबंध जोड़ना होता है।

एक स्त्री धर्म में बहुत-बहुत आसानी से विकसित हो सकती है

उसके लिए यह मार्ग आसान है,

लेकिन राजनीति में विकसित होना उसके लिए कठिन है।

और एक पुरुष के लिए धर्म में विकसित होना कठिन है।

अंतर्मुखी चेतना होने के अपने लाभ हैं, और बहिर्मुखी होने के अपने फायदे हैं, और दोनों के अपने- अपने खतरे भी हैं।

भारत एक अंतर्मुखी रुप-चित्त देश है,

वह एक गर्भ के समान है, बहुत अधिक ग्राहकतापूर्ण।

लेकिन यदि एक बच्चा गर्भ के अन्दर ही हमेशा-हमेशा के लिए वहीं बने रहना चाहे तो गर्भ ही उसकी कब्र बन जाएगा।

बच्चे को मां के गर्भ के बाहर आना ही होता है,

अन्यथा मां बच्चे को गर्भ के अन्दर ही मार देगी।

भले ही गर्भ बच्चे के लिए सुविधाजनक हो सकता है

लेकिन उसे बाहर का बहुत बड़ा संसार खोजने के लिए

गर्भ छोड़ना ही पड़ता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि गर्भ से अधिक सुविधाजनक

हम आज तक कोई भी अन्य चीज निर्मित करने में समर्थ नहीं हो सके। इतनी अधिक वैज्ञानिक प्रगति होने के बावजूद भी हम उससे अधिक सुविधाजनक कोई चीज बना ही न सके।

गर्भ ठीक एक स्वर्ग जैसा ही होता है,

लेकिन फिर भी बच्चे को वह स्वर्ग छोड़ना ही होता है

और एक निश्चित समय के बाद गर्भ के बाहर आना ही होता है,

मां ही बहुत खतरनाक बन सकती है, वह गर्भ उसे मार भी सकता है,

क्योंकि तब वही उसके लिए एक कारागृह बन जाएगा–

उस समय तक के लिए अच्छा है, जब बीज विकसित हो रहा है,

लेकिन तब बीज से विकसित हुए पौधे को, बाहर के संसार में रोपना होता

बोधि धर्म ने पूरे विश्व में चारों ओर निरीक्षण किया

और चीन की भूमि इसके लिए सर्वश्रेष्ठ पाई,

वह एक मध्यम तरह की भूमि थी, जहां कुछ भी अपनी पराकाष्ठा पर न था। वहां की जलवायु भी अपनी चरम सीमा पर न होकर बीच की थी,

इसलिए वृक्ष सरलता से विकसित हो सकता था

और वहां के लोग भी संतुलित थे।

जहां संतुलन होता है, वहीं की भूमि ठीक होती है, जिससे कुछ चीज पनप सके।

अधिक सर्दी भी हानिकारक होती है और अधिक गर्मी भी।

संतुलित और समशीतोष्ण जलवायु में

वृक्ष विकसित हो सकता है।

बोधिधर्म उस सभी को बचाकर जो भारत ने उत्पन्न किया था,

उसके बीज के साथ भारत से पलायन कर चीन आ गए।

कोई भी व्यक्ति इस बात के प्रति सचेत न था कि वह क्या कर रहे हैं, लेकिन वह एक महान प्रयोग था।

और उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वह ठीक थे।

चीन में वृक्ष विकसित हुआ

और विशाल अनुपात में विकसित हुआ।

यद्यपि वह वृक्ष बहुत बड़ा और विशाल हो गया,

लेकिन उसमें फूल नहीं खिले। उसमें फूल आए ही नहीं,

क्योंकि फूलों को खिलने के लिए बहिर्मुखी चेतना की भूमि की जरूरत थी। ठीक जैसे कि एक बीज अंतर्मुखी होता है, फूल होता है–बहिर्मुखी। बीज, स्त्रैण चेतना की भांति होता है, और फूल होता है–पुरुष चेतना की भांति।

फूल बाहर के संसार में खिलता है

और बाहर के संसार में ही अपनी सुवास बिखेरता है।

तब वह सुगंध, हवा के पंखों द्वारा

सुदूर विश्व के कोने-कोने तक फैल जाती है।

जो ऊर्जा बीज में छिपी थी, फूल उसी ऊर्जा को सभी दिशाओं में फैला देता है। वह एक द्वार बन जाता है।

फूल वृक्ष को छोड़कर, तितलियों की तरह उड़ना चाहते हैं।

वास्तव में सूक्ष्म रूप में वे यह कर भी रहे हैं,

वे वृक्ष की आत्मा की सुवास,

और वृक्ष के होने के अर्थ और महत्व को विश्व में चारों ओर फैला रहे हैं। वे महान सहभागी हैं।

एक बीज, एक बहुत बड़े लोभी की भांति स्वयं अपने तक सीमित

और बंद रहता है

और एक फूल उसकी सम्पदा को चारों ओर बांटता है।

जापान एक बहिर्मुखी चेतना का देश है,
इसके लिए जापान की ही आवश्यकता थी।
वहां की जीवन-शैली और चेतना बहिर्मुखी है।
जरा देखें... भारत में तो कोई भी व्यक्ति बाहर के संसार के बारे में बहुत अधिक चिंता करता ही नहीं,
अपने कपड़ों के बारे में, अपने घर और अपने रहन-सहन के बारे में
कोई भी, कुछ भी फिक्र करता ही नहीं।
यही कारण है कि भारत एक गरीब देश बना रहा।
यदि तुम बाहर के संसार के बारे में फिक्र करोगे ही नहीं
तो तुम धनी और समृद्ध कैसे बन सकते हो?
यदि बाहर के संसार को बेहतर बनाने के लिए तुम दिलचस्पी लोगे ही नहीं, तो तुम गरीब ही बने रहोगे।
और भारत, जीवन से पलायन करने के मामले में हमेशा से,
पहले से ही तैयार रहा है।
सभी बुद्ध इस् बारे में ही बताते रहे–कि कैसे पूर्ण रूप से सभी कुछ का पूरी तरह त्याग किया जाए
न केवल समाज से बल्कि स्वयं इस अस्तित्व से भी
अंतिम रूप से कैसे मुक्त हुआ जाए!
पूरा संसार उन सभी के लिए बहुत ऊब उत्पन्न करने वाला था
भारतीय दृष्टि में, जीवन केवल मटमैला है उसमें दिलचस्पी लेने जैसा कुछ नहीं है, और प्रत्येक वस्तु व्यर्थ के भार और ऊब से भरी हुई है।
एक व्यक्ति को पिछले कर्मों के अनुसार उसे केवल ढोए जाना है।
यदि कोई भारतीय किसी के प्रेम में पड़ता भी है
तो वह कहता है कि ऐसा पिछले जन्मों के कर्मों के कारण है,
और उसे इसके द्वारा किसी तरह गुजर जाना है
प्रेम भी उसके लिए एक बोझ की तरह होता है, जिसे उसे घसीटना भर होता है।
भारत का झुकाव, जीवन की अपेक्षा मृत्यु की ओर अधिक है।
एक अंतर्मुखी व्यक्ति का झुकाव मृत्यु की ओर होना ही है।
यही कारण है कि भारत में वह सभी विधियां विकसित हुईं,
कि कैसे पूर्ण रूप से ऐसी मृत्यु को प्राप्त किया जाए
कि तुम्हारा जन्म फिर से न हो।
उनके लिए जीवन नहीं, मृत्यु ही लक्ष्य है,
जीवन है मूर्खों के लिए और मृत्यु है उनके लिए जो प्रज्ञावान हैं।
बुद्ध और महावीर कितने भी सुन्दर और महान क्यों न हों,
तुम उन्हें अपने आप में बंद ही पाओगे।
उनके चारों ओर अनासक्ति का एक आभामंडल हमेशा बना रहता है।
उनके आसपास चाहे कुछ भी घट रहा हो, उनका उससे कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।
वह चाहे इस ढंग से हो, और चाहे उस ढंग से,

उन्हें उससे कोई भी अंतर नहीं पड़ता है,
चाहे पूरा संसार जीवित रहे अथवा मर जाए
इससे उन्हें कोई भी फर्क नहीं पड़ता है।
एक भयंकर उपेक्षा और तटस्थता है उनमें,
इस तटस्थता में खिलावट का होना सम्भव ही न था।
जापान पूरी तरह एक भिन्न देश है।
जापान के लिए चेतना कुछ ऐसी है, जैसे मानो, अन्दर का कुछ अस्तित्व है ही नहीं।
केवल बाह्य जगत ही अर्थपूर्ण है।
जरा जापानी लोगों की पोशाक देखो,
उनमें फूलों और इन्द्रधनुष के सारे रंग हैं–
जैसे मानो बाहर का संसार ही सबसे अधिक अर्थपूर्ण है।
अब जरा पुराने समय की भारतीय पोशाक को देखो,
फिर जापानी वस्त्रों की ओर देखो।
जरा किसी भारतीय को भोजन करते हुए देखो,
और फिर किसी जापानी की ओर देखो।

किसी भारतीय को चाय पीते हुए देखो– और फिर जापानी की ओर देखो। एक जापानी साधारण सी चीजों में भी एक समारोह सृजित करता है,

चाय पीने को लो, वह उसे एक उत्सव बना देता है, वह एक कला बन जाती है।
उनके लिए जो कुछ बाहर है, वह बहुत महत्वपूर्ण है;
वस्त्र पहनना भी बहुत महत्वपूर्ण है
आपसी रिश्ते-नाते भी बहुत महत्वपूर्ण हैं।

तुम संसार भर में जापानी की अपेक्षा कोई अन्य बहिर्मुखी व्यक्ति नहीं खोज सकते, हमेशा मुस्कराता हुआ और प्रसन्न।

भारतीयों के लिए वे लोग उथले दिखाई देंगे
वे गम्भीर नहीं दिखाई देंगे।
भारतीय लोग अंतर्मुखी हैं
और जापानी हैं–बहिर्मुखी
वे दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं।
एक जापानी व्यक्ति समाज में सदा क्रियाशील रहता है।
पूरी जापानी संस्कृति की दिलचस्पी इसी बात में रहती है
कि कैसे एक सुन्दर समाज सृजित किया जाए
कैसे सम्बन्धों को मधुर बनाया जाए

कैसे प्रत्येक छोटी से छोटी चीज को कितने सुन्दर ढंग से किया जाए और कैसे प्रत्येक वस्तु को महत्व दिया जाए?

उनके मकान इतने अधिक सुन्दर और सजे हुए होते हैं,

कि एक निर्धन व्यक्ति के भी घर का अपना एक अलग-सौंदर्य होता है। वह कलापूर्ण होता है और उसका अपना अनूठापन होता है।

वह अधिक समृद्ध नहीं भी हो सकता।

लेकिन फिर भी एक विशिष्ट अर्थ में

अपने संयोजन, व्यवस्था और सौंदर्य के कारण वह समृद्ध होता है। प्रत्येक छोटी से छोटी चीज के विस्तृत विवरण में बुद्धि का

उपयोग किया जाता है–

कि किस स्थान पर खिड़कियां होनी चाहिए

उनमें किस तरह के पर्दे लगाने चाहिए–

और कैसे खिड़कियों के द्वारा चंद्रमा को आमंत्रित किया जाना चाहिए? चीजें बहुत छोटी सी हैं, लेकिन प्रत्येक अपने विस्तार में बहुत महत्वपूर्ण है। एक भारतीय के लिए कुछ भी अर्थ नहीं रखता यह सभी कुछ।

यदि तुम भारत के किसी प्राचीन मंदिर में जाओ, वह बिना खिड़कियों के होगा:

उसमें स्वच्छता नहीं होगी, ताजी हवा के आने-जाने की व्यवस्था नहीं होगी,

वहां कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं होगा,

यहां तक कि वहां गंदगी और कुरूपता मिलेगी।

वहां धूल उड़ रही है, धुएं से दम घुट रहा है, लेकिन कोई कुछ भी फिक्र नहीं करता।

मंदिरों के ठीक सामने तुम गायों को बैठे हुए पाओगे।

लोग प्रार्थना कर रहे हैं और कुत्ते भौंकते हुए लड़ रहे हैं,

और कोई भी इससे परेशान नहीं होता।

उन्हें बाहर की व्यवस्था के प्रति संवेदनशीलता ही नहीं है

उनकी बाहरी चीजों में कोई दिलचस्पी है ही नहीं।

और ठीक इसके विपरीत दूसरी पराकाष्ठा पर जापान है,

जिसकी बाहर की वस्तुओं में दिलचस्पी बहुत अधिक है।

और ज़ेन का पूरा वृक्ष चीन से जापान ले जाकर पुन: रोप दिया गया,

क्योंकि जापान की जलवायु ही इसके लिए अनुकूल थी,

वहां इस वृक्ष में हजारों रंगों के पुष्प खिले

और उसकी पूरी खिलावट हुई।

इसी तरह से यह घटना फिर घटने जा रही है।

मैं पुन: ज़ेन की ही बात कह रहा हूं।

इसे फिर वापस भारत लाना है, क्योंकि जापान में यह वृक्ष-जितना पुष्पित हो सकता था, हो चुका।

सभी पुष्प नीचे झर गए और जापान बीज का सृजन नहीं कर सकता।

जापान चूंकि अंतर्मुखी देश नहीं है, इसलिए वह बीज का सृजन नहीं कर सकता।

इसीलिए वहां प्रत्येक चीज अब एक बाह्य कर्मकाण्ड बनकर रह गई है। जापान में देन मर चुका है।

वहां अतीत में उसकी खिलावट जरूर हुई, लेकिन अब–

यदि तुम डॉंडीटी. सुजूकी तथा अन्य लोगों की ज़ेन पर लिखी

पुस्तकें पढ़ो, यदि तुम जापान जाकर ज़ेन की खोज करो,
तुम खाली हाथों वापस लौट आओगे।
जापान में ज़ेन लुप्त हो गया, अब वह यहां भारत में है।
वह देश उसकी खिलावट में सहायक बन सका,
लेकिन अब सभी फूल पृथ्वी पर गिरकर लुप्त हो गए
और वहां अब कुछ और रहा ही नहीं।
अब वहां संस्कार और कर्मकाण्ड ही रह गए हैं,
क्योंकि जापानी बहुत अधिक कर्मकाण्डी और संस्कारित हैं।
ज़ेन मठों में अब भी प्रत्येक चीज उसी तरह से चल रही है
जैसे मानो उसकी अंतरात्मा अब भी वहां हो,
लेकिन अब वहाँ आतरिक समाधि नहीं है और सिंहासन खाली है घर का मालिक जैसे कहीं और चला गया है
अब वहां परमात्मा है ही नहीं–केवल कोरे कर्मकाण्ड रह गए हैं। और चूंकि वे बहिर्मुखी लोग हैं, वे इन कर्मकाण्डों को करते रहेगे।
प्रतिदिन सुबह वे पांच बजे उठेंगे,
वहां समय की सूचना देने को घंटी बजेगी,
वे चाय-घर की ओर प्रस्थान करेंगे, वहां वे चाय लेंगे,
फिर वे ध्यान कक्ष में जायेंगे,
और वे औखें बंद कर बैठ जायेंगे।
प्रत्येक चीज का अनुसरण ठीक वैसा ही किया जाएगा
जैसे मानो ज़ेन की आत्मा अब भी वहां अस्तित्व में हो,
लेकिन वह विलुप्त हो चुकी है।
वहां अब भी ज़ेन मठ हैं, वहां हजारों भिक्षु भी हैं
लेकिन वृक्ष जितना पुष्पित हो सकता था, हो चुका,
और अब वहां बीज का सृजन नहीं हो सकता।

इसीलिए मैं यहां ज़ेन पर इतना अधिक बोल रहा हूं
क्योंकि केवल भारत ही उस बीज का फिर से सृजन कर सकता है।
पूरा विश्व एक गहन ऐक्य और एक लयबद्धता के कारण ही अस्तित्व में है।
भारत उस बीज को पुन: जन्म दे सकता है।
लेकिन अब विश्व में चारों ओर बहुत सी चीजें बदल चुकी हैं।
चीन में अब वह सम्भावना नहीं रही
क्योंकि साम्यवादी होने के कारण वह एक बहिर्मुखी चेतना का देश बन चुका है।
अब वहां आत्मा की अपेक्षा पदार्थ अधिक महत्वपूर्ण है
अब वह चेतना की नई तरंगों को ग्रहण करने के लिए
अपने द्वार बंद कर चुका है।

मैं समझता हूं यदि कोई देश ऐसा है

जो भविष्य में उसे फिर से भूमि दे सकता है

तो वह इंग्लैंड है।

तुम्हें आश्चर्य अवश्य होगा, क्योंकि तुम्हारे ख्याल में यह देश अमेरिका है। विश्व में अब सबसे अधिक संतुलित देश इंग्लैंड ही है।

पुराने दिनों में ठीक जैसे चीन था।

अब ज़ेन के बीज को इंग्लैंड ले जाकर बोना है;

वहां वह विकसित होकर एक वृक्ष तो बनेगा, लेकिन उसमें खिलावट न होगी।

इंग्लैंड की चेतना रूढ़िवादी है, हमेशा मध्य मार्ग में ही प्रवाहित होती है, वहां का मन उदार है, वे लोग कभी किसी चरम सीमा पर नहीं जाते,

मध्य में ही बने रहते हैं–

और यही चीज सहायक बनेगी।

इसी कारण मैं अधिक से अधिक ब्रिटेन के लोगों को

अपने आस-पास चारों ओर बस जाने की अनुमति दे रहा हूं।

ऐसा केवल वीसा के कारणों से नहीं है, क्योंकि एक बार जब बीज तैयार हो जाए मैं चाहूंगा कि वह इंग्लैंड ले जाया जाए।

फिर इंग्लैंड से वह अमेरिका जा सकता है,

और फिर वहां उसकी खिलावट होगी,

क्योंकि अमेरिका ठीक अभी सबसे अधिक बहिर्मुखी चेतना का देश है। मैं तुम्हें बता चुका हूं कि ज़ेन एक दुर्लभ घटना है,

क्योंकि यदि ये सभी स्थितियां पूरी हों

केवल तभी कोई चीज घट सकती है।

अब इस बोध-कथा को समझने का प्रयास करें।

ये छोटे-छोटे प्रसंग बहुत अर्थपूर्ण हैं, क्योंकि ज़ेन के लोग कहते हैं–

कि जो कुछ तुम्हारे अस्तित्व की गहराई में घटता है,

उसे अभिव्यक्त नहीं किया सकता, लेकिन उसे दिखाया जा सकता है। एक ऐसी स्थिति निर्मित की जा सकती है, जिसमें उस ओर इशारा किया जा सकता है, उस सम्बन्ध में शब्द कुछ भी बताने में समर्थ नहीं हो सकते,

लेकिन एक जीवन्त प्रसंग इसे स्पष्ट कर सकता है।

यही कारण है कि ज़ेन में इतने अधिक वृत्तान्त और बोध कथाएं हैं

यह बोध-कथाएं ही संकेत देती हैं।

अन्य कोई दूसरा ऐसी सुन्दर बोध कथाएं सृजित करने में समर्थ न हो सका। यहां सूफियों की भी कथाएं हैं, यहां हसीद की कथाएं भी हैं,

और यहां कई अन्य भी हैं, लेकिन ज़ेन कथाओं का कोई मुकाबला नहीं। ज़ेन के पास ही सही चीज पर चोट करने की निर्दोष विधि है,

और उससे वह संकेत मिलता है, जिसे इंगित किया ही नहीं जा सकता। और वह भी इतने सरल तरीके से, कि तुम उससे चूक सकते हो:

तुम्हें उसके लिए खोज करनी होगी, तुम्हें उसके लिए इधर-उधर टटोलना होगा

कि वह वृत्तान्त अपने आप में इतना सरल है,

कि तुम उससे चूक सकते हो।

वह बहुत जटिल नहीं है, वास्तव में उसके लिए बुद्धि की जरूरत ही नहीं

वस्तुत, उसके लिए हृदय के द्वार खोलना है, जिससे तुम उसे समझ सको। जरा इस छोटे से वृत्तान्त को देखें.. .जो ज़ेन के पूरे महत्व को दर्शाता है:

किसी व्यक्ति ने सद्गुरु बोकूजू से पूछा :

हमें प्रतिदिन कपड़े पहनने होते हैं और भोजन भी करना होता है

इस सभी से हम कैसे बाहर हो जाएं?

यही बात यदि उसने बुद्ध से भी पूछी होती,

तो ठीक ऐसा ही उत्तर उनसे न मिला होता।

वह उत्तर तो बीज के चित्त से आया होता।

बुद्ध ने कहा होता! यह सभी कुछ एक भ्रम और धोखा है।

और अधिक होशपूर्ण बनो,

इस संसार द्वारा सपने और भ्रम प्रक्षेपित करने वाली क्षमता को पहचानो, जो तुम देख रहे हो, वह सभी कुछ माया है।

अधिक से अधिक सचेत बनो और यह खोजने का प्रयास मत करो

कि कैसे इससे बाहर हुआ जाए?

क्योंकि कोई भी स्वप्न से बाहर कैसे हो सकता है?

कोई भी व्यक्ति जैसे ही सचेत हो जाता है, वह उससे बाहर हो जाता है। क्या तुमने कभी भी किसी व्यक्ति को सपने से बाहर आते हुए देखा है? एक सपना तो झूठा होता है, तुम उससे बाहर कैसे हो सकते हो?

पहली बात तो यह चमत्कार है कि तुम उसमें प्रविष्ट हो गए

क्योंकि वह झूठा है, वह वहां है ही नहीं और तुमने उसमें प्रवेश पा लिया, और अब पूछ रहे हो, कि उससे बाहर कैसे आएं?

जिस तरह से तुमने उसमें प्रवेश किया, उसी तरह उससे बाहर आ जाओ! तुमने यह विश्वास करते हुए कि वह असली और सत्य है, उसमें प्रवेश किया था।

यही वह तरीका है, जिससे कोई भी स्वप्न में प्रविष्ट होता है–

यह विश्वास करते हुए कि वह वास्तविक है।

इसलिए यह समझते हुए कि वह वास्तविक और सच नहीं है, अपना विश्वास छोड़ दो।

और तुम स्वप्न के बाहर आ जाते हो।

उससे बाहर आने की अन्य कोई भी न तो विधियां हैं, न कोई तरकीबें हैं और न कोई चरण हैं।

बुद्ध ने कहा होता: जरा देखो.. .तुम्हारा पूरा जीवन ही एक सपना है– और तुम उससे बाहर हो गए होते।

यदि चीन के सबसे बड़े बुद्धिमान व्यक्ति कन्फ्राशयस से,

जिसके पास बहुत संतुलित चित्त था, न तो बहिर्मुखी और न अंतर्मुखी,

यह प्रश्न पूछा गया होता, तो उसने कहा होता!

इससे बाहर आने की कोई जरूरत ही नहीं है।

इन नियमों का पालन करो, और तुम उसका आनंद लेने में समर्थ हो पाओगे। कन्फ्यूशियस ने कुछ नियम दिए होते,

और उनका अनुसरण करने को कहा होता, और कहा होता–

किसी को उससे बाहर आने की जरूरत ही नहीं है,

किसी को बस ठीक तरह से अपनी जीवन की योजना बनानी चाहिए

किसी को ठीक तरह से अपने स्वप्न जीवन की भी योजना बनानी चाहिए। कन्फ्यूशियस कहता है–यदि तुम अपने सपने में भी कुछ काम गलत करते हो तो तुम्हें उस पर विचार करना चाहिए–

कहीं न कहीं अपनी जागृत दशा में तुम सत्पथ का अनुसरण नहीं कर रहे हो। अन्यथा सपने में भी गलत की ओर तुम कैसे जा सकते थे?

कोई चीज तय करो, कुछ चीजों को संतुलित करो–

यही कारण है, उसने तीन हजार तीन सौ नियम बनाए।

लेकिन जापान में उन्होंने इसका पूरी तरह भिन्न उत्तर दिया होता:

बुद्ध के द्वारा दिया गया उत्तर, बीज से आया होता,

कन्फ्यशियस द्वारा दिया गया उत्तर वृक्ष से–

और बोकूजू से यह उत्तर खिले हुए फूल से आ रहा है।

निश्चित रूप से ये सभी उत्तर भिन्न हैं–

लेकिन सभी की जड़ें एक ही समान सत्य में हैं,

लेकिन वे एक जैसे संकेतों का प्रयोग नहीं कर रहे हैं, और कर भी नहीं सकते।

जो कुछ बीकूजू कर रहा है–वह बस फूल के ही समान है,

यही सबसे अधिक ठीक सम्भावना है।

बीकूजू ने उत्तर दिया

हम कपड़े पहनें और भोजन करें।

इतना अधिक सरल उत्तर– और इससे चूक जाने की प्रत्येक सम्भावना है। तुम सोच सकते हो: आखिर क्या कह रहा है वह?

यह तो अर्थहीन बकवास जैसी है। उस व्यक्ति ने पूछा था–

"हमें प्रतिदिन कपड़े पहनने होते हैं, हमें प्रतिदिन खाना-खाना होता है– हम सभी से बाहर कैसे निकलें?"

और बोकूजू ने उत्तर दिया–हम कपड़े पहनें और भोजन करें।

बोकूजू क्या कह रहा है, वह किस ओर इशारा कर रहा है?

यह बहुत ही सूक्ष्म है। वह कह रहा है:

हम भी यही करते हैं–हम भोजन करते हैं, हम कपड़े पहनते हैं–

लेकिन हम भोजन इतनी समग्रता से करते हैं

कि भोजन करने वाला नहीं बचता, केवल भोजन करना रह जाता है।

हम इतनी समग्रता से कपड़े पहनते हैं, कि कपड़े पहनने वाले का– अस्तित्व ही नहीं रह जाता, केवल कपड़े पहनना ही रह जाता है।

हम चलते हैं लेकिन वहां कोई चलने वाला नहीं होता, केवल चलना रह जाता है।

इसलिए यह कौन पूछ रहा है कि कैसे उससे बाहर हो जाएं?

इस बहुत बड़े अंतर को देखो।

बुद्ध ने कहा होता कि यह सभी कुछ एक सपना है,

तुम्हारा भोजन करना, तुम्हारे कपड़े पहनना, और तुम्हारा चलना–

और बोकूजू कहता है–कि तुम ही एक स्वप्न हो।

इन दोनों में अत्यधिक अंतर है।

बोकूजू कह रहा है: तुम स्वयं को इसके अन्दर मत लाओ,

बस भोजन करो, चलो और सो जाओ।

कृत्य से बाहर हो जाने की बात आखिर कौन पूछ रहा है?

अपना अहंकार छोड़, इसका कोई अस्तित्व है ही नहीं,

और जब तुम हो ही नहीं, तो तुम उससे बाहर ही कैसे हो सकते हो?

ऐसा नहीं कि चलना एक स्वप्न है, लेकिन चलने वाला एक स्वप्न है।

ऐसा नहीं कि भोजन करना एक स्वप्न है, लेकिन भोजन करने वाला एक स्वप्न है।

और तुम बहुत सूक्ष्मता से इसका निरीक्षण करो–

यदि तुम वास्तव में चल रहे हो, तो क्या वहां, तुम्हारे अन्दर कोई चलने वाला है?

चलना ही घट रहा है, यह एक प्रक्रिया है।

पैर आगे उठ रहे हैं, हाथ हिल रहे हैं, तुम श्वांस भी तेज ले रहे हो,

तुम्हारे चेहरे को स्पर्श करती हवा बह रही है, तुम इसका आनंद ले रहे हो तुम जितने अधिक तेज चलते हो, तुम उतने ही अधिक जीवन का अनुभव करते हो–प्रत्येक चीज बहुत सुन्दर है, लेकिन क्या वास्तव में वहां कोई चलने वाला है?

क्या वहां कोई अन्य व्यक्ति, तुम्हारे अन्दर बैठा हुआ है?

यदि तुम होशपूर्ण हो जाओ, तो तुम पाओगे कि केवल प्रक्रिया, करना,

अथवा कृत्य का ही अस्तित्व है।

यह अहंकार भ्रमपूर्ण है, यह केवल मन का ही एक सृजन है

तुम भोजन कर रहे हो और तुम सोचते हो कि वहां ऐसा कोई व्यक्ति– अन्दर होना ही चाहिए जो भोजन कर रहा है,

क्योंकि तर्क कहता है अपने अन्दर एक चलने वाले के बिना तुम कैसे चल सकते हो?

वहां किसी भोजन करने वाले के बिना तुम कैसे भोजन कर सकते हो? बिना वहां अन्दर किसी प्रेमी के तुम कैसे प्रेम कर सकते हो?

जो तर्क है, वह यही कहता है। लेकिन यदि तुमने प्रेम किया है,

और यदि तुम उस क्षण तक पहुंचे हो, जहां वास्तव में प्रेम ही रह जाता है। तो तुमने यह जरूर जाना होगा कि वहां अन्दर कोई प्रेमी था ही नहीं– केवल प्रेम था, एक प्रक्रिया, एक ऊर्जा थी। लेकिन अन्दर कोई भी न था। तुम ध्यान करते हो, लेकिन क्या वहां कोई ध्यान करने वाला होता है? और जब ध्यान खिलावट पर आता है, और अन्दर कोई विचार बचते ही नहीं, तो वहां कौन होता है अन्दर?

क्या वहां कोई व्यक्ति होता है जो कहता है–कि अब सभी विचार मिट गए?

यदि वह वहां होता है, तो ध्यान की खिलावट हुई ही नहीं,

कम से कम एक विचार तो अब भी वहां है।

जब ध्यान की खिलावट होती है,

वहां इसको नोट करने वाला भी कोई नहीं होता,

उसे पहचान देने वाला भी कोई नहीं होता,

कोई यह कहने वाला भी नहीं होता कि–हां यह घट गया है।

जिस क्षण तुम यह कहते हो — हां, वह घट चुका है–

वह उसके पहले ही खो जाता है।

जब वहां वास्तव में ध्यान होता है, सर्वत्र एक मौन छा जाता है,

एक असीम आनंद धड़कता रहता है,

बिना सीमाओं के पूरे अस्तित्व के साथ एक लयबद्धता हो जाती है,

लेकिन वहां इसे नोट करने वाला कोई भी नहीं होता।

वहां यह कहने वाला कोई भी नहीं होता हां, यह घटा है।

इसीलिए उपनिषद कहते हैं कि जब कोई व्यक्ति यह कहता है

मैंने 'उसका' अनुभव कर लिया अथवा उसे पा लिया, तो समझना–उसने नहीं पाया है।

इसी कारण सभी बुद्धों ने कहा है,

कि जब भी कोई व्यक्ति कुछ दावा करता है, तो उसका दावा करना ही यह प्रदर्शित करता है कि वह अंतिम शिखर पर अभी पहुंचा ही नहीं, क्योंकि अंतिम शिखर पर पहुंचकर, दावा करने वाला ही मिट जाता है। वास्तव में वह वहां कभी था ही नहीं।

भोजन करना एक स्वप्न नहीं है–भोजन करने वाला एक स्वप्न है।

बीज से फूल होने पर पूरा बल लगाकर वह बदलकर कुछ और हो जाता है। इसी वजह से पश्चिम में बहुत से लोग यह सोचते हैं

कि ज़ेन को, 'ज़ेन बुद्धिज्म' पुकारना ठीक नहीं है,

क्योंकि उत्तरों में एक बहुत बड़े अंतर का अनुभव होता है।

लेकिन ये लोग गलत हैं।

ज़ेन बुद्धिज्म पूरी तरह से शुद्ध बुद्धिज्म है।

बुद्ध से भी कहीं अधिक शुद्धतम, बौद्ध धारणाओं से भी शुद्धतम।

जो सबसे अधिक सारभूत है जो शुद्धतम ध्यान है,

चेतना की जो शुद्धतम खिलावट और सुवास है।

तुम अस्तित्व में होते हो, पर बिना किसी केंद्र के,

वहां बिना किसी के होने पर भी तुम होते हो।

तुम होते हो, पर फिर भी नहीं होते हो

यही है वह जिस पर तिलोपा बल दे रहा है:

कोई भी आत्मा नहीं, ' अनन्ता एक रिक्तता, परिपूर्ण (शून्यता)

बोकूजू क्या कह रहा है? वह कहता है–' 'हम वस्त्र पहनें, और भोजन करें। उसका उत्तर पूरा हो गया, समाप्त हो गया। "वह परिपूर्ण है। वह केवल यही कह रहा है–' 'हम भोजन करें और वस्त्र पहनें। और हमें ऐसा करने में कभी किसी समस्या का सामना नहीं करना पड़ा और न हमें कभी कोई ऐसा व्यक्ति मिला, जो इनके बाहर आ सका हो।

अन्दर कोई भी नहीं है वहां।

भोजन करना है वहां, कपड़े पहनना है वहां, अहंकार नहीं है वहां।

वह कह रहा है–ऐसा मूर्खता भरा प्रश्न पूछो ही मत।

प्रश्नकर्त्ता ने कहा– मैं आपकी बात समझा ही नहीं।

वह कुछ नियम और अनुशासन खोजने आया होगा,

कि कैसे एक धार्मिक व्यक्ति बना जाए

खाने और कपड़े पहनने जैसी कम महत्व की चीजों,

और रोज-रोज के एक जैसे ही रुटीन को कैसे छोड़ा जाए?

प्रत्येक दिन, बार-बार कोई भी वही सब कुछ किए जा रहा है उसका जी भर चुका होगा, वह ऊब गया होगा,

और प्रत्येक व्यक्ति एक दिन इसी समस्या का सामना करता है।

यदि तुम थोड़े से भी बुद्धिमान हो,

तो जब तुम्हें ऊबाहट का अनुभव होगा, तुम इसी नतीजे पर पहुंचोगे।

केवल मूर्ख और साधू-संत ही कभी नहीं ऊबते,

अन्यथा बुद्धिमान व्यक्ति तो ऊबने के लिए बाध्य हैं।

आखिर यह सब क्या चला जा रहा है?

प्रत्येक दिन तुम सोने इसीलिए जाते हो, जिससे फिर–

अगले दिन सुबह उठ सको,

और तब नाश्ता करो और फिर ऑफिस जाओ।

और यही सभी कुछ चलता चला जा रहा है।

और तुम जानते हो कि तुम यह सभी कुछ इसीलिए कर रहे हो,

जिससे सोने के बाद तुम फिर से जाग सको,

और तुम भली भांति जानते हो कि सुबह फिर से यही रुटीन, शुरू हो जाएगा।

किसी को रोबोट की भांति पूरी दिनचर्या यंत्रवत् लगने लगती है।

और यदि तुम सचेत हो जाओ,

जैसे कि भारत में लोग अतीत के प्रति सचेत हो गए हैं,

कि ऐसा सभी कुछ लाखों जन्मों से चला आ रहा है,

तुम मृत्यु आने तक पूरी तरह ऊबाहट को महसूस करने के लिए बाध्य हो। इसी वजह से तो वह पूछ रहा है: कैसे इसके बाहर हुआ जाए?

जीवन और मृत्यु का यह चक्र, हमें पीसते और क्षण- क्षण कुचलते हुए चलता ही चला जा रहा है,

ठीक ग्रामोफोन के चटके रिकार्ड की तरह,

वही पंक्ति वह बार-बार दोहराए चला जा रहा है।

ऐसा तुम्हारे साथ लाखों बार घटा है

तुम प्रेम में पड़े हो, तुमने विवाह किया है, तुमने कठोर श्रम किया है, तुमने बच्चों को जन्म दिया है, तुमने संघर्ष किया है, तुम मरे हो।

ऐसा बार-बार, फिर-फिर हमेशा होता ही रहा है।

इस तथ्य के प्रति सचेत बनने और निरंतर होते पुनर्जन्मों के कारण ही भारत इससे ऊब गया भारत की पूरी चेतना इससे इतनी अधिक थक चुकी है

कि उनका पूरा प्रयास यही हो गया–कैसे इस चक्र से बाहर हुआ जाए? इसी कारण वह व्यक्ति बोकूजू के पास पूछने आया–

इस रुटीन से बाहर आने में कृपया मेरी सहायता करें।

यह सभी कुछ बहुत अधिक हो चुका और मैं नहीं जानता–

कैसे इससे बाहर हुआ जाए?

रोज-रोज कपड़े पहनना, रोज-रोज भोजन करना– इस मृत दिनचर्या और इस लीक से कैसे हटकर, बाहर आया जाए

बोकूजू कहता है–हम वस्त्र पहनें, हम भोजन करें।

वह बहुत सी चीजें कह रहा है इसके साथ।

वह कह रहा है कि बाहर हो जाने वाला वहां कोई व्यक्ति है ही नहीं, इसलिए यदि वहां कोई व्यक्ति है ही नहीं, तो तुम कैसे ऊब सकते हो? वहां ऊबने वाला है कौन?

मैं भी प्रतिदिन सुबह उठ बैठता हूं स्नान करता हूं

भोजन करता हूं कपड़े पहनता हूं और वह प्रत्येक कार्य करता हूं

जिसे तुम भी करते हो, लेकिन मैं कभी भी ऊबता नहीं हूं।

मैं इसे शाश्वतता के अंत तक किए जा सकता हूं

और मैं क्यों नहीं ऊबता हूं?

क्योंकि मैं वहां होता ही नहीं, इसलिए कौन ऊबने जा रहा है वहां?

और यदि तुम वहां हो ही नहीं

तो यह कहने कौन जा रहा है कि यह सभी दोहराना भर है?

हर सुबह एक नई सुबह होती है, यह अतीत की पुनरावृत्ति नहीं है

हर नाश्ता नया होता है। हर क्षण नूतन और ताजगी से भरा हुआ–

सुबह घास पर पड़ी ओस की तरह होता है।

तुम ऊब का अनुभव अपनी स्मृति के कारण करते हो– जिसे तुमने अतीत में इकट्ठा किया है, और जिसे तुम साथ ढोते हुए चल रहे हो, और तुम इस नूतन क्षण को भी अतीत के चश्मे से देख रहे हो, जिस पर अतीत की धूल लगी है और वह धुंधला हो गया है।

बोकूजू इसी क्षण में जी रहा है

और इस क्षण की तुलना करने के लिए वह दूसरे क्षणों को साथ नहीं लाता है–वहां कोई व्यक्ति है ही नहीं, जो अतीत को ढो रहा हो,

और वहां व्यक्ति है ही नहीं, जो भविष्य के बारे में सोच रहा हो। वहां केवल एक जीवन शैली है, चेतना की एक नदी प्रवाहित हो रही है। जो क्षण- क्षण हमेशा ज्ञात से अज्ञात की ओर,

और परिचित से अपरिचित स्थान की ओर आगे बढ़ती जा रही है। इसलिए वहां इस बारे में चिंता करने वाला है कौन,

कि इससे बाहर होना है?

वहां कोई भी है ही नहीं।

बोकूजू कहता है : हम भोजन करें और कपड़े पहनें,

और काम पूरा हो गया। हम उससे कोई समस्या सृजित करते ही नहीं। समस्या उत्पन्न होती है मनोवैज्ञानिक स्मृति के कारण।

तुम हमेशा अपने अतीत को ले आते हो,

तुम हमेशा उसे तुलना करने के लिए निर्णय करने,

और उसकी निंदा करने के लिए ले आते हो।

यदि मैं तुम्हें कोई फूल दिखलाता हूं तुम उसे प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखते। तुम कहते हो : हां, यह एक सुन्दर गुलाब है।

उसे गुलाब कहकर पुकारने की जरूरत क्या है?

जिस क्षण तुम उसे गुलाब कहकर पुकारते हो,

तो वे सभी गुलाब, जिन्हें तुमने अतीत में जाना है, याद आ जाते हैं। जिस क्षण तुम उस फूल को गुलाब कहकर पुकारते हो,

तुम उसकी अन्य फूलों के साथ तुलना कर चुके होते हो।

जिस क्षण तुमने उसे गुलाब कहकर पुकारा,

तुमने उसे पहचान कर उसे श्रेणीबद्ध कर दिया।

जिस क्षण तुमने उसे गुलाब कहा,

और जिस क्षण तुमने उसे सुन्दर कहा,

तुम्हारी सौंदर्य की सारी धारणाएं कल्पनाएं

देखे गए सभी गुलाबों की स्मृतियाँ और सभी चीजें तुम्हारे सामने आ गईं, और इस भीड़ में सामने का गुलाब कहीं खो गया।

वह गुलाब दृश्य पटल पर रह ही नहीं गया

तुम्हारी स्मृतियों, कल्पनाओं और धारणाओं में,

वह सुन्दर खिला ताजा फूल लुप्त हो गया, और फिर तुम्हारा मन उससे भी उकता जाता है

क्योंकि वह भी दूसरे गुलाबों जैसा ही दिखाई देगा।

क्या अंतर है इसमें?

यदि तुम इस गुलाब की ओर, अतीत की स्मृति के बिना कोरी, ताजी दृष्टि से, समझ भरी स्पष्ट चेतना से विचारों के बादलों से रहित–

शून्याकाश में, हृदय के द्वार खोलकर, बिना शब्दों के अस्तित्व के,

प्रत्यक्ष रूप से सीधे ही देख सको,

यदि तुम कुछ देर के लिए यहीं और अभी इस फूल के साथ अकेले रह सको, तुम तभी उसे समझ सकोगे। जब बोकूजू कहता है:

हम कपड़े पहनें और अपना भोजन करें।

वह कह रहा है वर्तमान में प्रत्येक कार्य इतनी अधिक समग्रता से करो,

कि तुम यह अनुभव ही न कर सको कि तुम उस कार्य की पुनरावृत्ति कर रहे हो–

और क्योंकि तुम वहां हो ही नहीं, तुम अनुपस्थित हो, तो वहां है कौन, जिसे अतीत को ढोना है, और जिसे भविष्य की कल्पना करना है।

और तब एक भिन्न गुणों की उपस्थिति घटती है तुममें

जो क्षण-क्षण नूतन, ताजी और स्वाभाविक रूप से बहती हुई शिथिल होती है, जो एक क्षण से दूसरे क्षण में सरलता से सरक जाती है।

जैसे कभी भी एक सांप अपनी पुरानी केंचुल छोड़कर उससे सरकता हुआ. बाहर आ जाता है।

पुरानी खाल पीछे छूट जाती है, जिसे वह कभी पीछे लौटकर देखता ही नहीं, वह पुरानी खाल को अपने साथ लादने की कोशिश नहीं करता,

एक होशपूर्ण व्यक्ति एक क्षण से दूसरे क्षण में बस सरक जाता है

जैसे घास की पत्तियों पर पड़ी ओस की बूंदें नीचे फिसल जाती हैं,

वे अपने साथ कोई चीज लाद कर नहीं ले जातीं।

एक होशपूर्ण व्यक्ति कोई सामान ढोने वाला वाहन नहीं होता,

वह निर्भार बना घूमता है

तब उसके लिए हर चीज नई होती है और तब कोई समस्याएं निर्मित नहीं होतीं।

जो कुछ बोकूजू कह रहा है, वह यही ऐ :

अच्छा यही है कि समस्याओं का सृजन मत करो।

क्योंकि हम ऐसे किसी व्यक्ति को जानते ही नहीं, जिसने कभी भी,

कोई भी समस्या सुलझाई हो।

एक बार उत्पन्न हो जायें, फिर वे समस्याएं सुलझ ही नहीं सकतीं।

उन्हें हल करने का एक ही मार्ग है कि उन्हें उत्पन्न ही मत करो।

क्योंकि एक बार उनके सृजित करने के दौरान तुमने एक गलत कदम उठा लिया था,

अब चाहे तुम कुछ भी करो, वह उठाया गया गलत कदम तुम्हें हल करने ही नहीं देगा।

यदि तुम पूछते हो कि अहंकार कैसे गिराया जाए

तो तुमने एक समस्या निर्मित कर दी, जिसे हल नहीं किया जा सकता। यहां ऐसे हजारों शिक्षक हैं, जो तुम्हें निरंतर सिखाए चले जा रहे हैं,

कैसे विनम्र बना जाए कैसे निरहंकार हुआ जाए कैसे समस्याओं को हल किया जाए?

और कुछ भी तो नहीं होता– तुम दीन और विनम्र नहीं हो पाते,

तुम वैसे ही अहंकारी बने रहते हो,

तुम अपनी तथाकथित अहंकारशून्यता में भी, एक सूक्ष्म अहंकार लिए रहते हो।

नहीं, वे लोग जो जानते हैं, जो विद्वान हैं, वे किसी भी समस्या को हल करने में तुम्हारी कोई भी सहायता नहीं कर सकते।

वे तुमसे पूछेंगे– अहंकार है कहां?

वे तुमसे पूछेंगे– वह है कहां? वास्तव में समस्या जो भी है,

वे तुम्हें उस समस्या को हल करने में नहीं, उसे समझाने में सहायक होंगे, क्योंकि जो समस्या है वह झूठी है।

यदि प्रश्न की जड़ें ही किसी गलत चीज से विकसित हुई हैं,

यदि प्रश्न ही गलत है तो उसका उत्तर भी ठीक नहीं हो सकता।

तब दिए गए सारे उत्तर व्यर्थ होंगे, और वे तुम्हें

और अधिक झूठे और नकली प्रश्नों की ओर ले जाएंगे।

यह एक दुम्बक्र बन जाएगा–

यही कारण है कि दार्शनिक पागल बन जाते हैं।

वे यह देखते ही नहीं कि प्रश्न ही गलत है,

वे उत्तर सृजित करते हैं,

और तब वह उत्तर और अधिक प्रश्नों को जन्म देता है,

और कोई भी उत्तर कोई भी चीज हल नहीं कर पाता।

फिर तब क्या किया जाए? ज़ेन क्या कहता है इस बारे में?

ज़ेन कहता है स्वयं समस्या को ही गौर से देखो,

उत्तर भी उसी में छिपा हुआ है।

प्रश्न में जरा गहराई से झांक कर देखो,

और यदि तुमने उसे भरपूर दृष्टि से देखा, तो प्रश्न मिट जाएगा।

किसी भी प्रश्न ने कभी उत्तर दिया ही नहीं, वह बस विसर्जित हो जाता है। और जब वह मिट जाता है तो अपने पीछे अपना कोई चिह्न भी नहीं छोड़ता। वह कह रहा है समस्या आखिर है कहां?

हम भी भोजन करते हैं, हम भी रोज कपड़े पहनते हैं,

लेकिन हम केवल खाते हैं और कपड़े पहनते हैं। फिर समस्या खड़ी क्यों कर रहे हो? बोकूजू कह रहा है — जीवन जैसा भी है उसे स्वीकार करो। समस्याएं सृजित मत करो।

किसी को भोजन करना है– भोजन करे।

तुम्हें भूख लगी है, तुमने उसे सृजित नहीं किया है

उसकी तृप्ति होनी ही चाहिए उसे पूरा करो।

लेकिन कोई समस्या सृजित मत करो।

जब लोग मेरे पास आते हैं, तो प्रत्येक दिन पूरी स्थिति यही होती है,

वे अपनी समस्याएं साथ लेकर आते हैं।

लेकिन मैं अभी तक ऐसी किसी एक भी समस्या से होकर नहीं गुजरा,

क्योंकि वहां कोई समस्या है ही नहीं।

तुम ही उन्हें सृजित करते हो, और तब तुम ही उनका उत्तर और हल चाहते हो।

यहां ऐसे बहुत से लोग हैं, जो तुम्हें इनका उत्तर और हल बता देंगे:

वे छोटी-छोटी सिखावनें होंगीं।

और यहां ऐसे भी लोग हैं, जो तुम्हें अपनी समस्याओं में झांकने के लिए तुम्हें अंतदृष्टि देंगे यही सबसे बड़ी सिखावन है।

छोटी-छोटी शिक्षाएं बलपूर्वक अनुशासन की ओर ले जाती हैं,

और महान शिक्षाएं तुम्हें शिथिल और सहज स्वाभाविक बनने की अनुमति देती हैं।

बोकूजू कहता है हम भोजन करें और वस्त्र पहनें।

लेकिन वह व्यक्ति उसे समझ ही नहीं सका।

वास्तव में ऐसी सीधी सरल चीज को समझना कठिन है।

लोग जटिल चीजें समझ सकते हैं,

लेकिन वे सीधी सरल चीजें नहीं समझ सकते।

क्योंकि एक उलझी और जटिल चीज को टुकड़ों में विभाजित किया जा सकता है, उसका विश्लेषण किया जा सकता है, तर्कपूर्ण ढंग से उसे समझा जा सकता है।

लेकिन एक सीधी सरल चीज के साथ क्या किया जा सकता है?

तुम उसका विश्लेषण नहीं कर सकते, तुम काटकर उसके खण्ड नहीं कर सकते,

तुम उसका विच्छेदन नहीं कर सकते–क्योंकि वहां विच्छेदन करने को कुछ है ही नहीं।

यह इतना अधिक साधारण और सरल है। और क्योंकि वह साधारण है, इसीलिए तुम उससे चूक जाते हो।

वह व्यक्ति उसे समझ ही नहीं सका।

लेकिन फिर भी मेरे खयाल में वह व्यक्ति बहुत ईमानदार था।

क्योंकि उसने कहा: मैं इसे समझा नहीं

यहां ऐसे बहुत असाधारण लोग भी हैं, जो यह दिखाने के लिए कि वे समझ गए हैं, अपना सिर हिला देंगे।

ये लोग महान मूर्ख हैं। कोई भी इनकी सहायता नहीं कर सकता।

क्योंकि ये बहाना बनाए चले जाते हैं, कि वे समझ गए हैं।

यदि वे ऐसा कहते हैं, तो वे स्वयं को ही मूर्ख जैसे दिखाई देंगे।

वे बहाना बनाते हैं, वे इतनी साधारण सी बात भी क्यों नहीं समझ सकते? वे यह प्रदर्शित किए चले जाते हैं, कि वे समझ गए हैं,

और अब अधिक जटिलताएं उत्पन्न होंगी।

पहली बात तो यह कि वहां कोई समस्या है ही नहीं,

और दूसरी बात यह कि वे उत्तर को समझ गए हैं!

समस्या है ही नहीं, और उन्होंने समस्या के सम्बन्ध में– अब ज्ञान प्राप्त कर लिया है: वे कहते हैं–कि वे समझ गए हैं।

वे लोग और उलझते चले जाते हैं,

और उनके अन्दर केवल गलतफहमियां रह जाती हैं।

ऐसे लोग मेरे पास आते हैं और मैं उनके अन्दर यह देख सकता हूं– वे लोग एक गड़बड़झाला की स्थिति और एक गलतफहमी में पड़े हुए हैं। वे लोग कोई भी चीज नहीं समझे हैं।

वे लोग यह भी नहीं समझे हैं कि उनकी समस्याएं क्या हैं,

और उनके पास उत्तर हैं। केवल इतना ही नहीं,

वे दूसरे लोगों की समस्याएं हल करने के लिए

उनकी सहायता करना भी शुरू कर देते हैं।

यह व्यक्ति जरूर ही ईमानदार होना चाहिए।

उसने कहा : मैं समझा नहीं।

यह समझ की दिशा में उठाया गया ठीक कदम है।

यदि तुम नहीं समझे हो, तो तुम समझ सकते हो,

सम्भावना खुली हुई है।

तुम विनम्र हो, तुम कठिनाई को पहचानते हो।

तुम जानते हो कि तुम अज्ञानी हो।

यह पहचानना, कि तुम नहीं समझते हो,

यह जानने और समझ की दिशा में उठाया गया पहला कदम है: कम से कम वह इतना तो समझ ही गया।

और यह एक बड़ा कदम है।

बोकूजू ने उत्तर दिया:

यदि तुम नहीं समझे हो,

तो अपने कपड़े पहनो, और खाना खा लो।

बीकृजू बहुत करुणावान जैसा नहीं दिखाई देता, लेकिन वह है। वह कह रहा है: तुम नहीं समझ सकते,

क्योंकि मन कभी समझता नहीं।

मन बहुत बड़ा नासमझ है,

यह मन ही सभी अज्ञान का मूल है।

मन क्यों नहीं समझ सकता?

? १– ' का महत्व क्या है? 41

क्योंकि यह मन तुम्हारे अस्तित्व का एक बहुत छोटा सा खण्ड है, और खण्ड नहीं समझ सकता

केवल अखण्ड ही समझ सकता है।

सदा इस बात का स्मरण रखो:

केवल तुम्हारा सम्पूर्ण अस्तित्व ही कुछ चीज समझ सकता है, उसका कोई खण्ड या भाग नहीं समझ सकता,

न तो तुम्हारी बुद्धि समझ सकती है और न तुम्हारा हृदय,

न तुम्हारे हाथ समझ सकते हैं और न तुम्हारे पैर समझ सकते हैं– केवल तुम्हारा समग्र अस्तित्व ही उसे समझ सकता है।

समझ, समग्रता की होती है,

नासमझी या गलतफहमी खण्ड या भाग की होती है।

खण्ड सदा गलत ही समझता है,

क्योंकि खण्ड, अखण्ड होने का बहाना बनाने का प्रयास करता है, और यही है पूरी समस्या।

मन यह कहने का प्रयास करता है कि यही पूरी समझ है,

लेकिन वह तो केवल उसका एक भाग होता है।

जब तुम गहरी नींद में होते हो, तो तुम्हारा मन कहां होता है?

बिना उसके ही शरीर अपना काम किए ही जाता है।

शरीर भोजन पचाता है, उसमें मन की कोई जरूरत ही नहीं है।

तुम्हारा मस्तिष्क पूरी तरह अलग किया जा सकता है

और तुम्हारा शरीर अपना काम करना जारी रखेगा। वह भोजन पचाएगा,

वह विकसित होगा, वह मृत और व्यर्थ चीजें अपने बाहर फेंकेगा।

अब वैज्ञानिक यह अनुभव करने लगे हैं–

कि मन केवल एक विलासिता है।

शरीर के पास अपनी अलग प्रज्ञा होती है, वह मन की चिंता करता ही नहीं। क्या तुमने कभी इसका निरीक्षण किया है,

कि मन थोड़े से भी अनुभव के बिना भी, बहुत बड़े जानकार बनने का खेल, खेले ही जा रहा है

जबकि शरीर में जो कुछ भी महत्वपूर्ण है, वह उसके बिना ही चल रहा है। तुम भोजन करते हो: शरीर मन से यह पूछता नहीं कि उसे कैसे पचाया जाए जबकि यह अत्यन्त ही जटिल प्रक्रिया है।

भोजन को रक्त में रूपान्तरित करना कोई आसान काम नहीं है,

लेकिन शरीर इसे रूपान्तरित करता है, और अपना काम किए चले जाता है, यह बहुत ही जटिल प्रक्रिया है,

क्योंकि इसमें हजारों तत्व सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं,

ठीक अनुपात में शरीर उन रसों और तत्वों को छोड़ता है,

जो भोजन को पचाने के लिए आवश्यक होते हैं।

तब शरीर के लिए जो आवश्यक होता है, वह भोजन से उन तत्वों को अवशोषित कर लेता है। जो आवश्यक नहीं होते–

उन्हें मल-मूत्र और पसीने के रूप में बाहर फेंक देता है।

प्रत्येक क्षण शरीर में हजारों कोष मर रहे हैं,

शरीर उन्हें रक्तप्रवाह से बाहर फेंकता रहता है।

हारमोन्स और विटामिन्स के लिए वहां लाखों तरह की जरूरतें होती हैं, हजारों-लाखों चीजों की जरूरत पड़ती है।

और शरीर बाहर के वातावरण से उन्हें खोजे चले जाता है।

जब शरीर को अधिक ऑक्सीजन की जरूरत होती है, वह गहरी सांस लेता है। जब शरीर को उसकी जरूरत नहीं होती, वह सांस बाहर छोड़ देता है।

प्रत्येक कार्य स्वयं होता रहता है–

इस पूरी यांत्रिक प्रक्रिया में मन केवल एक छोटा सा भाग है,

और बहुत अधिक आवश्यक तथा सारभूत नहीं है।

बिना मन के पशु रह रहे हैं, बिना मन के वृक्ष जीवित है।

और बहुत सुंदर ढंग से जी रहे हैं।

लेकिन मन बहुत बड़े-बड़े झूठे दावे करता है,

वह विश्वास दिलाता है, कि वही सभी का आधार और नींव है,

वही पूरी प्रक्रिया का शिखर और चरम है,

वह झूठे दावे किए चले जाता है।

तुम केवल अपने इस मन का निरीक्षण करो और तुम यह सब कुछ देख सकोगे।

इसी झूठे दावे करने वाले बहानेबाज मन के द्वारा ही,

जो तुम्हारे अन्दर केवल एक जाली हस्ताक्षर की भांति है,

तुम बोकूजूको समझना चाहते हो।

क्या कह रहा है बोकूजू

वह कहता है : यदि तुम नहीं समझे,

तो अपने कपड़े पहनो और अपना खाना खाओ।

समझने के बारे में फिक्र करो ही मत।

तुम हम जैसे बन जाओ–

भोजन करो और कपड़े पहनो, और इसे समझने का प्रयास करो ही मत। समझने की बहुत अधिक कोशिश और गतिविधियां–

केवल गलतफहमियां ही सृजित करती हैं।

इसकी कोई आवश्यकता है ही नहीं।

साधारण और अखण्ड बनकर जीयो, और रहो।

यही है वह–जो बोकूजू कह रहा है:

भोजन करो और कपड़े पहनो और केवल होना भर रह जाओ।

समझने या न समझने के बारे में भूल ही जाओ,

उसकी जरूरत क्या है?

यदि बिना समझ के वृक्ष जीवित रह सकते हैं,

फिर तुम्हारे लिए समझने वाले मन की जरूरत क्या है?

यदि समझे बिना पूरा अस्तित्व चल रहा है, तो तुम फिक्र क्यों करते हो? इस छोटे पिद्दी से मन को अपने अन्दर लाकर, क्यों समस्याएं उत्पन्न कर रहे हो?

विश्राम करो और रहो।

बोकूजू कह रहा है कि समझ तो पूर्ण समग्रता से आती है।

तुम समग्रता से भोजन करो, समझने का प्रयास ही मत करो।

तुम समग्रता से चलो, टहलो, प्रेम करो, भोजन करो, स्नान करो और सो जाओ।

पूर्ण और समग्र बनकर रहो। चीजों को स्वयं घटने दो।

अखण्ड बने रहो।

और समझने का प्रयास ही मत करो, क्योंकि प्रयास करने की वही कोशिश, समझने का वह प्रयास ही समस्या उत्पन्न करता है।

तुम विभाजित हो जाते हो।

समस्या सृजित मत करो–बस समग्र बने रहो।

कभी इसे करने की कोशिश करो।

मैं चाहूंगा कि तुम इसे करने का प्रयास करो।

कभी तीन सप्ताह के लिए पहाड़ों में चले जाओ और वहां समग्र बनकर रहो। कुछ भी समझने का प्रयास मत करो वहां, बस समग्रता से बने रहो,

स्वाभाविक रूप से विश्राममय होकर रहो।

जब तुम्हें नींद आए सोने चले जाओ।

जब तुम्हें भूख लगे, भोजन कर लो।

यदि भूख जैसा कुछ भी न लगे, तो मत करो भोजन।

वहां शीघ्रता करने की कोई जरूरत ही नहीं है।

हर चीज समग्र रूप से केवल शरीर पर छोड़ दो।

यह मन ही समस्याओं का जनक है।

कभी यह कहता है–उपवास करो, जब कि शरीर को भोजन की जरूरत होती है।

कभी यह कहता है, और अधिक खाओ, क्योंकि भोजन बहुत स्वादिष्ट है। और जब शरीर कहता है: बस, बहुत हो चुका, रुको,

कुछ और लेने को विवश मत करो–

तो तुम उस 'पूर्ण' और समग्र की बात सुनते ही नहीं।

वह पूर्ण बहुत प्रज्ञावान है।

उस पूर्ण में तुम्हारा मन, तुम्हारा शरीर और प्रत्येक चीज शामिल है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं–मन को काट कर अलग रख दो–

वह भी अप्राकृतिक है। वह केवल एक भाग है,

मन की अपनी एक जगह जरूर है, उसकी एक आनुपातिक सहभागिता है, लेकिन उसे तानाशाह बनने की छूट नहीं देनी चाहिए।

यदि वह तानाशाह बन जाता है, तब समस्याएं खड़ी करता है।

और तब उसके समाधान खोजता है,

यह समाधान और अधिक समस्याएं उत्पन्न करते हैं,

उन्हें फिर हल करना, फिर और समस्याएं उत्पन्न होना, और यह प्रक्रिया– तब तक चलती रहती है, जब तक अंत में तुम पागलखाने नहीं पहुंच जाते। मन की मंजिल है पागलखाना।

जो लोग शीघ्रता से तेज चलते हैं, वे निश्चय ही वहां जल्दी पहुंच जाते हैं, जो लोग धीमे चलते हैं, वे लोग कुछ देर बाद पहुंचते हैं–

लेकिन ऐसा प्रत्येक व्यक्ति पंक्ति में लगा है।

मन की मंजिल पागलखाना है, क्योंकि वह पूर्ण का एक भाग बनकर–

पूर्ण होने का दावा कर रहा है।

यह कोशिश करना ही पागलपन और नासमझी है।

और सभी धर्मों ने तुममें विभाजन सृजित करने में सहायता की है।

सभी धर्मों ने मन को सहायता दी है।

कि वह अधिक से अधिक तानाशाह बने।

वे कहते हैं–शरीर को सताओ, उसे मारो,

और तुम नहीं समझ पाते कि तुम क्या कर रहे हो?

तुम शरीर को सताना और मारना शुरू कर देते हो।

मन, शरीर और आत्मा– ये सभी साथ-साथ

एक सहभागिता में एक दूसरे के साथ संयुक्त हैं।

इन्हें विभाजित मत करो, सभी विभाजन झूठे हैं, वे राजनैतिक हैं।

यदि तुम विभाजित हो जाते हो, तो मन तानाशाह बन जाता है

क्योंकि मन ही शरीर में सबसे अधिक होशियार भाग है,

वहां अन्य उस जैसा कुछ भी नहीं है।

ऐसा जीवन में भी रोज होता है:

यदि एक व्यक्ति अधिक होशियार है, तो वह लोगों का नेता बन जाएगा। यदि वह बात करने में निपुण है, यदि वह एक वक्ता है

यदि भाषा पर उसका नियंत्रण है, तो वह एक नेता बन जाएगा।

इसलिए नहीं, कि उसमें एक नेता बनने की सामर्थ्य है,

बल्कि इसलिए क्योंकि वह बात करने में कुशल है,

वह लोगों के मनों को प्रभावित करता है,

वह लोगों को फुसलाने में कुशल है, एक अच्छा सेल्समैन है और पारंगत है। यही कारण है अच्छे वक्ता ही विश्व का नेतृत्व करते हैं।

निश्चित रूप से वे लोग उसे गहरी से गहरी अव्यवस्था और गड़बड़ी में ले जाते हैं,

क्योंकि वे लोग मनुष्यों के मार्गदर्शक नहीं हैं।

उनमें बातचीत करने के सिवा अन्य कुछ भी गुण नहीं है।

इसलिए तुम्हारा संसद भवन और कुछ भी नहीं, बल्कि बातों का एक घर मात्र

लोग वहां सिर्फ बातें ही बातें करते रहते हैं और उनमें से एक,

जो, अपनी भाषा पर अच्छा अधिकार और नियंत्रण रखता है, उनका प्रमुख

बन जाता है।
यही कारण है कि तुम्हारी संसद, विधानसभाएं और पागलखाने,
एक दूसरे से बहुत भिन्न नहीं हैं– वे एक जैसे ही हैं।
पूर्ण बनने का गुण, पूरी तरह एक भिन्न बात है।
यह प्रश्न पारंगत या होशियार बनने का नहीं है,
वस्तुत: यह प्रश्न है–प्रत्येक भाग को आनुपातिक सहभागिता देने का। यह एक लयबद्धता है।
यह तुम्हारे जीवन को एक लय, एक तान और एक मधुर स्वर देना है, जिसमें प्रत्येक चीज सम्मिलित हो।
तब मन भी बहुत सुन्दर है।
तब यह तुम्हें पागलखाने की ओर न ले जाकर,
यह मन ही एक महान बोध का आलय बन जाता है,
यह मन ही बुद्धत्व बन जाता है।
तुम्हारा पूर्ण ही एक अखण्ड बन कर रहता है:
तुम अपने आप को विभाजित नहीं करते,
तुम्हारी प्रज्ञा अविभाजित बनी रहती है।
यही है वह, बोकूजू जिसकी बात कर रहा है,
और यही है वह सब कुछ, उस सभी के बारे में, जो ज़ेन है।

इसी कारण मैं कहता हूं कि ज़ेन एक दुर्लभ और अनूठी घटना है।
किसी भी अन्य धर्म में इतनी अधिक ऐसी खिलावट नहीं हुई।
क्योंकि ज़ेन ही यह समझ सका
कि समझ, समग्र या पूर्ण की होती है–
तुम भोजन करो, तुम सोने जाओ, तुम सहज, स्वाभाविक और समग्र बने रहो। तुम अपने को विभाजित करने का प्रयास मत करो,
मन, शरीर, आत्मा और पदार्थ में अपने को विभाजित मत करो।
विभाजन करने के साथ ही संघर्ष और हिंसा आती है,
विभाजन करने के साथ ही लाखों समस्याएं आती हैं,
और तब उनका वहां कोई भी समाधान नहीं है।
वस्तुत: वहां केवल एक ही समाधान है
और वह है प्रत्येक चीज को स्वाभाविक पूर्णता पर छोड़कर
फिर से समग्र और अखण्ड बनना।
मन वहां होगा जरूर
लेकिन अब उसका कार्य पूरी तरह अलग होगा।
मैं भी मन का प्रयोग करता हूं। मैं तुमसे बात कर रहा हूं इसके लिए मन आवश्यक है।
संवाद करने के लिए मन आवश्यक है,
वास्तव में यह एक संचार विधि है।
स्मृति के लिए मन आवश्यक है। यह एक कम्प्यूटर है।

लेकिन अखण्ड बने रहने के लिए शरीर में तुम्हारी समग्रता होना आवश्यक

और जब मैं कहता हूं–‘ शरीर ” तो मेरा अर्थ तुम्हारे पूर्ण से होता है–

शरीर, मन और आत्मा-प्रत्येक चीज का अपना अलग कार्य है।

यदि मैं कोई वस्तु पकड़ना चाहता हूं तो मैं अपने हाथ का प्रयोग करूंगा। यदि मैं चलना चाहता हूं तो मैं पैरों का प्रयोग करूंगा।

यदि मैं तुमसे कुछ बातचीत करना चाहता हूं तो मैं मन का प्रयोग करूंगा। बस सभी कुछ इतना ही। अन्यथा मैं पूर्ण ही बना रहूंगा।

और जब मैं अपने हाथों का उपयोग करता हूं मेरा पूर्ण मेरे हाथों का समर्थन करता है।

उनका उपयोग पूर्ण के विरुद्ध नहीं किया गया है,

बल्कि पूर्ण के सहयोग के साथ ही किया गया है।

जब मैं चलने के लिए अपने पैरों का उपयोग करता हूं

उनका प्रयोग पूर्ण द्वारा ही सहयोग देते हुए ही किया जाता है।

वास्तव में वे स्वयं के लिए नहीं, पूर्ण के लिए ही चलने का कार्य कर रहे हैं। यदि मैं तुमसे बातचीत करता हूं तुम्हें कुछ सम्प्रेषित करता हूं

तो मैं मन का पूर्ण के लिए ही प्रयोग करता हूं।

यदि मेरे पूर्ण अस्तित्व में कुछ चीज ऐसी मेरे पास है,

जिसे मैं सम्प्रेषित करना चाहता हूं तो मैं अखंड के लिए मन का प्रयोग करता

हू

मैं अपने हाथों का प्रयोग मुद्राएं बनाने के लिए करता हूं

मैं अपने नेत्रों का प्रयोग करता हूं लेकिन उन सभी का प्रयोग अखण्ड के द्वारा ही किया जा रहा है।

अखण्ड ही सर्वोच्च बना रहता है।

वह अखण्ड ही मालिक बना रहता है।

जब भाग ही मालिक बन जाते हैं, तो तुम अलग दूर हो जाते हो,

तब तुम्हारी सहभागिता, सभी के एक दूसरे के साथ की युति भंग हो जाती

बोकूजू कहता है: यदि तुम नहीं समझे, तो उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं

उस बारे में फिक्र करो ही मत।

तुम जाओ और जाकर अपने कपड़े पहनो और अपना भोजन करो।

मैं नहीं जानता कि उस व्यक्ति ने क्या किया,

लेकिन मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं

यदि तुम समझ गए–तो बहुत सुन्दर!

यदि तुम नहीं समझे–तो जाओ, जाकर अपने कपड़े पहनो और अपना भोजन करो।

क्योंकि समझ तुम्हारे पूरे अस्तित्व से केवल एक छाया की भांति आएगी जीवन को उसकी समग्रता में जीयो,

और अपने जीवन की पूर्णता से भय मत करो।

एक कायर मत बनो

और न भागकर पहाड़ों और मठों में जाने की कोशिश करो।

मैंने तुम्हें इसी संसार में, जितनी समग्रता से सम्भव हो सके, रहने के लिए ही संन्यास दिया है।

इस संसार में केवल समग्रता से रहते हुए ही तुम इसके पार चले जाओगे। अचानक तुम यह जान जाओगे, कि तुम संसार में तो हो, लेकिन उसके नहीं हो।

मैं तुम्हें संन्यास की पूरी तरह नई धारणा दे रहा हूं।

पुराना संन्यास कहता है : संसार को छोड्कर भाग जाओ। सभी का त्याग कर दो।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि जो लोग सब कुछ छोड्कर भाग गए वे कायर

और मैं तुमसे कहता हूं कि जो लोग भाग गए वे पूर्ण नहीं है, अखण्ड नहीं

मैं तुमसे कहता हूं जो संसार से पलायन कर गए वे अपंग हैं, लंगड़े हैं। यह सब कुछ तुम्हारे लिए नहीं है। तुम जीवन को उसकी समग्रता में जीओ, जितनी अधिक समग्रता से सम्भव हो सके, तुम उसे जीओ,

और तुम जितने अधिक समग्र और अखण्ड बनोगे, तुम उतने ही दिव्य हो जाओगे।

पवित्रता और दिव्यता का गुण तभी आता है, जब कोई–

बिना भय के बिना आशा और बिना किसी कामना के साहसपूर्ण जीवन जीता

कोई भी सरलता से एक क्षण से दूसरे क्षण में–

पूरी तरह नूतन और ताजा होकर आहिस्ते से सरक जाता है।

यही है वह संन्यास, जिसके बाबत मैं तुमसे कह रहा हूं।

जीवन को क्षण- क्षण समग्रता से जीना ही संन्यास है।

अपनी ओर से बिना किन्हीं शर्तों के उसे घटने की अनुमति देना ही संन्यास

और तब, यदि तुम इतने सब कुछ को घटने की अनुमति देते हो,

तो जीवन भी तुम्हें अपने पार जाने की अनुमति देता है।

घाटी में रहते हुए ही, तुम शिखर बन जाते हो,

और केवल तभी वह बहुत सुन्दर होता है।

यदि तुम शिखर पर जाते हो, तो घाटी खो जाती है,

और घाटी की अपनी अलग विशेषताएं और सौंदर्य हैं,

और मैं चाहता हूं कि तुम घाटी और शिखर–

दोनों पर एक साथ रहने वाले मनुष्य बनो।

तुम घाटी में रहते हुए ही एक शिखर बनो–

और केवल तभी तुम यह समझने में समर्थ हो सकोगे

कि ज़ेन क्या है?

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

सद्‌गुरु और शिष्ट

लीहन्ध हर समय व्यस्त नहीं रहता था।

यिन शेंग ने अवसर पाकर उससे गुहा रहस्यों को दिए जाने की मांग की: मुंह मोड़कर लहित्थू ने उसे दूर हटा दिया होता, और उससे कुछ कहा ही नहीं होता।

लेकिन यह ख्याल कर

कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में वह भी विकसित हो सकता है–

उसने कहा

मेरा ख्याल था कि तुम मेधावी और होशियार हो,

पर वास्तव में तुम अन्य सभी लोगों से भिन्न नहीं हो।

आज मैं तुम्हें बताऊंगा कि मैंने अपने सद्‌गुरु से क्या सीखा?

सद्‌गुरु की सेवा करने के तीन वर्षों बाद–

मेरा मन यह सोचने का साहस भी नहीं कर सकता था–

कि क्या ठीक है और क्या गलत?

और न मैं मुंह से लाभ या हानि के बारे में ही कुछ कहने का

साहस कर सकता था।

केवल तभी

मैंने सद्‌गुरु की कृपा दृष्टि से इतना सब कुछ प्राप्त किया।

पांच वर्षों बाद–

मेरा मन सत्य और झूठ के सम्बन्ध में फिर विचार करने लगा,

और मैं लाभ और हानि के बारे में भी मुंह से कुछ कहने लगा।

तभी पहली बार मैंने सद्‌गुरु के चेहरे पर संतुष्टि की विश्राममय

मुस्कान देखी।

सात वर्षों बाद-मेरे मन में ठीक औरगलत के बीच बिना कोई भी भेद किए जो कोई भी विचार आता था, मैं सोचता रहता था,

और जो कुछ मेरे मुंह में आता था, लाभ-हानि की फिक्र किए बिना मैं उसे तुरंत कह देता था।

औरतभी पहली बार, सद्‌गुरु ने मुझे खींचकर अपने साथ– उसी चटाई पर बिठाया, जिस पर वह बैठे हुए थे।

नौ वर्षों बाद

मेरे मन में जो कुछ भी आता था, बिना किसी प्रतिबंध या नियंत्रण के मैं वही सोचता रहता था।

बिना किसी अवरोध के,

और बिना यह जाने हुए क्या ठीक है और क्या गलत, वह लाभप्रद है अथवा हानिकारक, और वह विचार मेरा है, अथवा किसी और का, जो कुछ मेरे मुंह में आता था, मैं कह देता था।

और बिना यह जाने हुए कि सद्गुरु मेरा शिक्षक था भी या नहीं,

मेरे लिए प्रत्येक चीज एक जैसी थी।

अब तुम मेरे शिष्य बनने के लिए आए हो,

और एक साल पूरा बीतने के पहले ही

तुम हर समय असंतुष्ट और नाराज रहते हो।

संसार में सबसे महान कला है–एक शिष्य बनना।

इसकी किसी भी चीज से तुलना नहीं की जा सकती।

यह अनूठी और अतुलनीय है।

इस जैसा अन्य कोई भी रिश्ता या सम्बन्ध अस्तित्व में है ही नहीं

और न इस जैसी कोई भी चीज हो सकती है।

एक शिष्य बनना और एक सद्गुरु के साथ रहना

अज्ञात में गतिशील होना है।

तुम वहां आक्रामक नहीं हो सकते। यदि तुम आक्रामक हो,

तो वह अज्ञात कभी भी तुम्हारे सामने प्रकट न होगा।

वह आक्रामक चित्त के सामने प्रकट हो ही नहीं सकता।

उसका स्वभाव ही ऐसा नहीं है,

तुम्हें ही आक्रामक न होकर ग्रहणशील बनना होगा।

सत्य की खोज कोई सक्रिय खोज नहीं है,

वह एक गहरी निष्क्रियता है–

इसी गहरी निष्क्रिय दशा में तुम उसे प्राप्त कर सकोगे।

लेकिन यदि तुम बहुत अधिक सक्रिय होकर उसमें दिलचस्पी लेने लगे, तो तुम चूक जाओगे।

यह एक गर्भ बनने जैसा है। यह स्त्रैण है।

तुम सत्य को इस भांति प्राप्त करते हो, जैसे एक स्त्री गर्भावस्था प्राप्त करती है। इसे स्मरण रखें

तब बहुत सी चीजें समझने में आसान बन जाएंगी।

एक सद्गुरु के निकट रहना, ठीक निष्क्रिय ही बनकर रहना है,

जो कुछ सद्गुरु देता है, उसे अवशोषित कर लेना है।

अथवा किसी भी तरह यदि सद्गुरु कुछ भी नहीं पूछ रहा तुमसे–

उसी क्षण यदि तुमने कुछ पूछना शुरू कर दिया, तो तुम आक्रामक बन जाते हो।

तुम्हारी ग्रहणशीलता समाप्त हो जाती है, और तुम सक्रिय बन जाते हो। फिर निष्क्रिय, स्त्रैण चित्त, वहां और रहता ही नहीं।

पुरुष चित्त से कोई भी कभी सत्य को उपलब्ध हुआ ही नहीं–

आक्रामक और हिंसक होकर, यह असम्भव बात है।

तुम बहुत खामोशी से पहुंचते हो वहां,

वस्तुत: तुम प्रतीक्षा करते हो, और सत्य ही तुम तक आता है।

सत्य तुम्हें खोजता है, जैसे पानी पोली जमीन खोजता है,

वह नीचे की ओर बहता हुआ ऐसा स्थान खोजता है, जहां वह एक झील बन जाए।

एक सक्रिय मन, स्वयं अपने आप से बहुत भरा होता है।

एक सक्रिय मन सोचता है कि वह जानता है कि सत्य क्या है?

किसी को केवल पूछना होता है कि कम से कम प्रश्न तो जान लिया, उत्तर के लिए उसे स्वयं खोजकर उसकी तलाश करनी होती है।

लेकिन जब तुम निष्क्रिय बन जाते हो, तो प्रश्न भी ज्ञात नहीं होता। फिर कैसे पूछा जाए? क्या पूछा जाए? किसके लिए पूछा जाए?

वहां कोई प्रश्न होता ही नहीं, कोई कुछ भी नहीं कर सकता सिवाय प्रतीक्षा के।

धैर्य रखना होता है– और यह धर्म अनंत है–

क्योंकि यह प्रश्न समय का नहीं है, यह प्रश्न तुम्हारे कुछ महीनों– अथवा कुछ सालों की प्रतीक्षा का नहीं है।

यदि तुम्हारे पास कुछ ही वर्षों का धैर्य है, तो उससे काम चलने का नहीं, क्योंकि एक मन जो सोचता है– वह तीन वर्षों की ही प्रतीक्षा नहीं है, वास्तव में वह प्रतीक्षा करने के बाबत सोचता है।

वह सक्रिय बना देख रहा है कि कब तीन वर्ष पूरे हों,

जिससे वह आक्रामक बनकर उछल सके और पूछ सके,

तब वह मांग कर सकता है कि अब प्रतीक्षा की अवधि समाप्त हुई अब वह जानने के लिए अधिकृत है।

वहां ऐसा कुछ भी नहीं है।

कोई भी व्यक्ति सत्य को जानने के लिए अधिकृत नहीं है।

अचानक वह क्षण आता है, जब तुम तैयार होते हो,

और तुम्हारा धैर्य किसी समय तक का नहीं, बल्कि शाश्वत होता है,

तुम किसी चीज के लिए प्रतीक्षा नहीं करते हो, बल्कि शुद्ध प्रतीक्षा करते हो, क्योंकि प्रतीक्षा करना ही इतना अधिक सुन्दर है,

प्रतीक्षा करना अपने आप में एक ऐसी प्रार्थनापूर्ण चित्त वृत्ति है,

प्रतीक्षा करना अपने आप मैं एक ऐसा गहरा ध्यान है,

प्रतीक्षा करना अपने आप में इतनी बड़ी उपलब्धि है,

किसी भी चीज के बारे में फिर फिक्र कौन करता है,

जब प्रतीक्षा करना इतना अधिक समग्र, इतना अधिक सघन–और इतना अधिक पूर्ण हो जाता है,

तो समय मिट जाता है,

और प्रतीक्षा में शाश्वतता का गुण आ जाता है,

तभी तुम तुरंत ही उसे ग्रहण करने को तैयार होते हो।

स्मरण रहे, तुम अधिकृत नहीं हो–तुम उसे मांग नहीं सकते।

तुम पूर्ण रूप से तैयार हो

और तुम इस ओर से सजग नहीं हो कि तुम तैयार हो।

क्योंकि वही सजगता तुम्हारे तैयार होने में एक बाधा बन जाएगी,

वही सजगता यह प्रदर्शित करेगी कि वहां अहंकार है,

जो कहीं कोने में छिपा हुआ निरीक्षण कर रहा है।

और अहंकार सदैव आक्रामक होता है,

चाहे वह छिपा हुआ हो या प्रकट हो, चाहे वह स्पष्ट हो या अस्पष्ट हो। यद्यपि अचेतन के सबसे गहरे तल के कोने में छिपा अहंकार

और भी आक्रामक होता है। और जब मैं कहता हूं

कि पूरी तरह से निष्क्रिय बनना, शिष्य बनने की कला है,

तो मेरे यह कहने का अर्थ है– अहंकार को विसर्जित करो।

तब वहां कोई भी नहीं होता, जो पूछ रहा या मांग कर रहा होता है,

तब वहां शुद्धतम रूप में 'कोई नहीं' होता है–

तुम एक खाली मकान होते हो, एक गहरी शून्यता होते हो, एक शुद्धतम प्रतीक्षा होते हो।

और अचानक वह सभी कुछ जो तुम पूछ सकते थे, मांग सकते थे,

बिना मांगे हुए ही तुम्हें दे दिया जाता है।

जीसस कहते हैं: मांगो, और वह तुम्हें दिया जाएगा।

लेकिन यह कोई उच्चतम शिक्षा नहीं है।

जीसस के चारों ओर जो लोग थे, वे उन्हें वह उच्चतम शिक्षा नहीं दे सके क्योंकि वे लोग यह जानते ही नहीं थे कि शिष्य कैसे बना जाए।

यहूदियों की परम्परा में शिक्षक और छात्र होते थे,

लेकिन गुरु शिष्य का सम्बन्ध बुनियादी रूप से पूरब की चीज है।

तब शिक्षक होते थे, जो बहुत सी चीजें सिखलाते थे:

और छात्र होते थे, ईमानदार छात्र

जो बहुत कुछ सीखते थे।

लेकिन जीसस वहां शिष्य न खोज सके,

वह उन्हें उच्चतम शिक्षा न दे सके।

वह कहते हैं–मांगो, और वह तुम्हें दिया जाएगा।

दरवाजा खटखटाओ, और तुम्हारे लिए वह खोला जाएगा।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं यदि तुमने मांगा, तो तुम चूक जाओगे,

यदि तुमने दरवाजा खटखटाया, तो तुम अस्वीकृत कर दिए जाओगे। क्योंकि द्वार खटखटाना ही आक्रामकता है,

अधिक मांगना अहंकार है।

अधिक मांगने में ही तुम बहुत अधिक हो जाते हो,

और तुम्हारे लिए द्वार नहीं खोले जा सकते।

द्वार खटखटाते हुए तुम कर क्या रहे हो? तुम हिंसक हो रहे हो।

नहीं, मंदिर के द्वार पर जाकर उसे खटखटाने की अनुमति नहीं है।

तुम्हें उसके द्वार पर इतनी अधिक खामोशी से आना होगा

कि कहीं तुम्हारी पगध्वनि भी न सुनाई दे।

तुम्हें 'कुछ नहीं' की तरह आना होगा, जैसे मानो 'कोई नहीं' आया हो। तुम द्वार पर प्रतीक्षा करो

और जब द्वार खुले, तुम प्रवेश कर जाओ।

तुम किसी शीघ्रता में नहीं हो।

तुम द्वार पर बैठकर विश्राम कर सकते हो,

क्योंकि द्वार तुम्हारी अपेक्षा बेहतर जानता है कि वह कब खुलेगा,

और उसके अन्दर बैठा सद्गुरु तुम्हारी अपेक्षा यह कहीं अच्छी तरह जानता है, कि उसे कब देना चाहिए।

मंदिर के द्वार पर खटखटाना एक भद्दी बात है,

सद्गुरु से मांगना एक अशिष्टता है–

क्योंकि वह तुम्हें कोई भी चीज सिखलाने नहीं जा रहा है

वह कोई शिक्षक नहीं है।

वह अपने अंतर्तम के अस्तित्व का मूल्यवान खजाना

तुम्हारी ओर उछालने जा रहा है–

और जब तक तुम उसके लिए तैयार न हो, वह नहीं दिया जा सकता।

मोतियों को एक गंदे और नीच मनुष्य के सामने नहीं फेंका जा सकता।

सद्गुरु को प्रतीक्षा करनी होती है, जब तक कि तुम्हारे अन्दर का विद्या खाने वाला गंदा सुअर विसर्जित न हो जाए

जब तक तुम जाग न जाओ, और एक प्रामाणिक मनुष्य न बन जाओ,

और तुम्हारे अन्दर का वह आक्रामक हिंसक और नीच पशु बिदा न हो जाए। सद्गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध एक बलाल्कर न होकर,

एक बहुत गहरा प्रेम होता है।

विज्ञान और धर्म के बीच यही अंतर है।

विज्ञान है एक बलात्कार जैसा,

प्रकृति के रहस्य जानने के लिए उसके प्रति वहां एक आक्रामकता है।

विज्ञान, प्रकृति से बलात् उसके रहस्यों को जानने का एक हिंसक प्रयास है। धर्म एक प्रेम है, वह एक समझाना-बुझाना है, वह एक मौन प्रतीक्षा है। वह स्वयं अपने आपको तैयार बनाना है

जिससे किसी भी क्षण जब तुम्हारी आंतरिक तैयारी पूरी हो जाती है,

तो अकस्मात् एक लयबद्धता हो जाती है, प्रत्येक चीज एक पंक्ति में आ जाती

और प्रकृति अपना रहस्य स्वयं प्रकट कर देती है।

और यह रहस्योद्घाटन पूरी तरह भिन्न होता है।

विज्ञान, प्रकृति को थोड़े से रहस्य देने को विवश कर सकता है,

लेकिन क्या सत्य को भी? नहीं।

विज्ञान, सत्य को जानने में कभी भी समर्थ न होगा।

डाकू लुटेरे, हिंसक और आक्रमणकारी लोग अधिक से अधिक

कुछ रहस्यों को उससे छीन सकते हैं। इससे अधिक नहीं।

और यह रहस्य भी केवल परिधि के ही होंगे,

उसका सबसे अधिक आंतरिक केंद्र उनके लिए ढका ही रहेगा,

क्योंकि आंतरिक केंद्र पर पहुंचने के लिए

हिंसा का प्रयोग नहीं किया जा सकता, कोई भी प्रयास नहीं किया जा सकता वह आंतरिक केंद्र तुम्हें स्वयं आमंत्रित करेगा,

केवल तभी तुम उसमें प्रवेश कर सकते हो।

अनिमंत्रित व्यक्ति के लिए वहां जाने का कोई उपाय ही नहीं है।

एक आमंत्रित अतिथि के रूप में ही तुम उस आंतरिक तीर्थ में

प्रवेश कर सकते हो।

एक सद्गुरु और शिष्य के मध्य का सम्बन्ध

प्रेम की उच्चतम सम्भावना है–

क्योंकि यह दो शरीरों का सम्बन्ध नहीं है।

यह सम्बन्ध किसी प्रसन्नता पाने अथवा संतुष्ट होने का नहीं है,

यह सम्बन्ध न तो दो मनों का है और न दो मित्रों का,

सूक्ष्म रूप में क्या यह मानसिक लयबद्धता है? नहीं।

न तो यह सम्बन्ध शारीरिक है और न सेक्स का

न तो यह बौद्धिक सम्बन्ध है और न भावनात्मक,

यह तो दो पूर्णताओं का योग है, जो एक दूसरे में समाहित

होने के लिए एक साथ एक दूसरे के निकट आ रहे हैं।

और यदि तुम प्रश्न पूछ रहे हो, तो तुम समग्र कैसे हो सकते हो?

यदि तुम आक्रामक हो, तो तुम समग्र या पूर्ण नहीं हो सकते।

एक पूर्णता सदा मौन होती है, वहां अंतर्तम में कोई संघर्ष होता ही नहीं। यही कारण है कि उसके बिना तुम संघर्ष में–

नहीं बने रह सकते।

समग्रता शांत है, उसमें व्यग्रता नहीं है और वह एक गहरी सहभागिता में इकट्ठी हो गई है।

एक सद्गुरु के सान्निध्य में प्रतीक्षा करते हुए ही एक शिष्य–यह सीखता है कि कैसे थिर होकर उसका सहभागी बना जाए

एक अखण्ड और थिर केंद्र वास्तव में भूखे और प्यासे की भांति-केवल प्रतीक्षा करता है। शरीर के प्रत्येक रेशे और प्रत्येक कोष-कोष में प्यास की तड़प लिए हुए प्रतीक्षा और प्रतीक्षा करता है।

क्योंकि सद्गुरु ही अच्छी तरह जानता है कि कब ठीक घड़ी आ रही है। द्वार खटखटाते हुए नहीं,

यद्यपि प्रलोभन वहां रहेगा–

और जब कि सद्गुरु उपलब्ध है–

यह लालसा बहुत अदम्य और गहरी हो जाती है, कि उससे पूछ क्यों न लें? वह दे सकता है, फिर प्रतीक्षा क्यों की जाएं?

समय व्यर्थ नष्ट क्यों किया जाए?

नहीं, यह प्रश्न समय नष्ट करने का नहीं है।

वास्तव में धैर्य से प्रतीक्षा करना समय का सर्वश्रेष्ठ उपयोग है।

अन्य सभी से समय नष्ट हो सकता है, लेकिन प्रतीक्षा से नहीं,

क्योंकि प्रतीक्षा एक प्रार्थना है, प्रतीक्षा एक ध्यान है,

और प्रतीक्षा ही सब कुछ है। सब कुछ उसी के द्वारा घटता है।

और मैं इसी को महानतम कला कहता हूं। क्यों?

क्योंकि सद्गुरु और शिष्य के मध्य

जो एक महानतम रहस्य विद्यमान है, जिसे शिष्य अपनी गहराइयों में ग्रहण करते हुए जीता है और तभी सद्गुरु का सर्वोच्च प्रवाहित होता है।

गुरु और शिष्य के बीच का यह सम्बन्ध ज्ञात और अज्ञात का है, यह ससीम और असीम के मध्य का है,

यह समय और शाश्वत के मध्य का है,

यह बीज और फूल के मध्य का है,

यह वास्तविकता और सम्भावित शक्ति के मध्य का है,

और यह अतीत और भविष्य के बीच का सम्बन्ध है।

एक शिष्य केवल एक अतीत है, सद्गुरु केवल एक भविष्य है। और यहीं, इसी क्षण अपने गहन प्रेम और प्रतीक्षा में

उन दोनों का मिलन होता है।

शिष्य है समय और सद्गुरु है शाश्वतता।

शिष्य है मन, और सद्गुरु है अमन।

शिष्य उतना ही सब कुछ है, जितना वह जानता है,

और सद्गुरु वह सभी कुछ है, जो नहीं जाना जा सकता।

जब सद्गुरु और शिष्य के मध्य उस सेतु का बनना घटता है

तो वह एक चमत्कार होता है।

ज्ञात का अज्ञात के साथ, और समय का शाश्वतता के साथ।

सेतु बनना ही एक चमत्कार है।

सद्गुरु के हिस्से में–करना होता है,

क्योंकि वह जानता है कि क्या किया जाना है।

तुम्हारे हिस्से में कुछ भी न करना होता है

तुम्हारे हिस्से में–'कुछ भी नहीं करना चाहिए'–होता है,

क्योंकि तुम अपने करने से ही पूरी चीज को अव्यवस्थित कर दोगे।

तुम नहीं जानते कि तुम क्या हो–फिर तुम कोई भी चीज कैसे कर सकते हो?

एक शिष्य भली भांति यह जानते हुए

कि वह कुछ भी नहीं कर सकता, केवल प्रतीक्षा करता है।

वह ठीक दिशा भी नहीं जानता,

वह यह भी नहीं जानता कि क्या शुभ है और क्या अशुभ,

वह स्वयं को ही नहीं जानता, फिर वह कोई भी चीज कैसे कर सकता है? करना तो सद्गुरु के हिस्से में आता है।

लेकिन जब मैं कहता हूं कि 'करना' सद्गुरु के हिस्से में है,

तो मुझे गलत मत समझना।

एक सद्गुरु कभी कुछ करता ही नहीं–

यदि शिष्य प्रतीक्षा कर सकता है,

तो सद्गुरु का दिव्य अस्तित्व ही 'करना' बन जाता है।

केवल उसकी उपस्थिति ही एक कैटलेटिक एजेन्ट बन जाती है,

और बहुत सी चीजें स्वयं अपने आप घटना शुरू हो जाती हैं।

जब किसी ने महान सद्गुरु जेनेरिन से पूछा:

आप अपने शिष्यों के साथ क्या करते हैं?

उसने कहा: मैं क्या कर सकता हूं? मैं कुछ भी नहीं करता। प्रश्नकर्ता ने फिर पूछा:

लेकिन आपके चारों ओर बहुत चीजें तो घटती हैं,

आप जरूर कुछ न कुछ करते हैं।

जेनेरिन ने कहा

शांत, मौन बैठे रहो, कुछ करो ही मत,

नई ऋतु आती है, तो घास अपने आप उगने लगती है।

यही है वह, जो एक सद्गुरु कर रहा है:

शांत और मौन बैठे हुए वह कुछ भी नहीं कर रहा है।

वह ठीक क्षण और खिलावट के मौसम की प्रतीक्षा कर रहा है।

जब अकस्मात् शिष्य और गुरु का मिलन होता है,

तो वहां बसंत होगा ही।

हरियाली का मौसम आता है, और घास स्वयं अपने आप उग आती है। और यह इसी तरह से घटता है।

एक सद्गुरु अखण्ड बना, कुछ भी न करते हुए मौन बैठा रहता है,

और शिष्य, सद्गुरु द्वारा कुछ भी किए जाने की प्रतीक्षा करता है।

तब खिलावट का मौसम आता है

और जिस क्षण वे मिलते हैं, हरी घास स्वयं उग आती है।

वास्तव में सत्य की प्राप्ति एक घटना है, किसी को केवल उसे अनुमति देनी होती है।

प्रत्यक्ष रूप से करना कुछ भी नहीं है, उसे होने देने की एक को अनुमति देनी होती है।

जब तक वह घटती नहीं है,

तुम उसे जानने में समर्थ न हो सकोगे, क्योंकि तुम सब कुछ यही जानते हो, कि केवल जब तुम कुछ करते हो, तभी कोई चीज घटती है।

जब तुम कुछ भी नहीं करते, तो कुछ भी नहीं होता है।

इसलिए तुम पूरी तरह भुलावे में पड़े हो,

क्योंकि यह चीजें पूरी तरह एक भिन्न आयाम की हैं।

लेकिन, यदि तुम अपने जीवन को देखो

तो तुम देखोगे कि बहुत सी चीजें, बिना तुम्हारे किए भी अब भी घट रही हैं। जब प्रेम घटता है, तो तुम क्या करते हो?

हरी घास अपने आप उग आती है।

अचानक वहां बसंत ऋतु आ जाती है और तुम्हारे अन्दर किसी चीज की खिलावट हो उठती है।

वह खिले हुए फूल किसी और के लिए हैं–

तुम बस प्रेम में डूबे हो, और तुमने किया क्या है?

यही कारण है कि लोग प्रेम से इतने डरे हुए हैं– क्योंकि वह एक घटना है, तुम उसे नियंत्रित नहीं कर सकते।

तुम उस पर अधिकार नहीं कर सकते।

इसी वजह से लोग कहते हैं कि प्रेम अंधा होता है।

वास्तव में जबकि मामला ठीक इससे विपरीत है–

प्रेम ही केवल दृष्टि को स्पष्ट करते हुए निर्मलता देता है।

प्रेम ही केवल आंख देता है, लेकिन लोग कहते हैं–प्रेम अंधा होता है, क्योंकि वे उस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर सकते हैं।

वह उन्हें अपने अधिकार में ले लेता है, और उनका स्वयं को अपने पर कोई नियंत्रण ही नहीं रह जाता।

वे केंद्र से दूर फेंक दिए जाते हैं। वे कहते हैं–वह अंधा है,

क्योंकि वहां कोई कारण नहीं होता–वह अतर्क होता है।

वह एक तरह का पागलपन होता है वह एक तेज ज्वर जैसा होता है

वह तुम्हें घटने वाली कुछ ऐसी चीज होती है, जैसे कोई रोग हो।

वह कुछ ऐसा ही लगता है, क्योंकि तुम पर तुम्हारा कोई वश नहीं रह जाता–

जीवन तुम्हें अपने अधिकार में ले लेता है।

सत्य में भी प्रेम का ही गुण होता है।

इसी कारण जीसस कहे चले जाते हैं–प्रेम ही परमात्मा है,

अथवा 'परमात्मा है प्रेम'

क्योंकि यह गुण, समान स्रोत से आ रहा है।

प्रेम की तरह ही सत्य भी घटता है,

तुम उसके सम्बन्ध में कुछ करते ही नहीं,

यहां तक कि तुम द्वार भी नहीं खटखटाते।

लेकिन अहंकार ऐसी घटनाओं की ओर देखने से बचता है।

अहंकार केवल उन्हीं चीजों की ओर देखता है, जिन्हें तुम कर सकते हो। वह चुनाव करता है, उन चीजों को इकट्ठा करता है,

जो की जा सकती हैं

और जो चीजें स्वत: घटती हैं, वह उन्हें टालता है

और अपने अचेतन के तलघर में फेंक देता है।

अहंकार चुन-चुन कर चुनाव करने वाला है,

वह जीवन को उसकी समग्रता में नहीं देखना चाहता।

सत्य एक घटना है, अंतिम रूप से घटने वाली अनूठी घटना, वह सर्वोच्च घटना, जिसमें तुम पूर्ण अस्तित्व में घुल जाते हो, और पूरा अस्तित्व तुममें घुल जाता है।

तिलोपा के शब्दों में यह महामुद्रा है,

यह परमानंद का सर्वोच्च शिखर है,

जो चेतना की एक इकाई और समग्र चेतना के महासागर के एक बूंद और एक महासागर के मध्य घटता है,

यह परमानंद का वह सर्वोच्च शिखर अनुभव है,

जिसमें दोनों एक दूसरे में खो जाते हैं

और पहचान भी विलुप्त हो जाती है।

ऐसा ही एक सद्गुरु और शिष्य के बीच भी घटता है।

सद्गुरु में तो सागर जैसे गुण हैं

और शिष्य है अभी भी एक छोटी-सी बूंद–

ससीम, असीम से मिल रहा है,

काफी धैर्य की आवश्यकता है,

अनंत धैर्य की जरूरत है। शीघ्रता करने से कोई सहायता मिलने की नहीं। अब इस सुन्दर जेन बोध कथा को समझने का प्रयास करो।

प्रत्येक शब्द को अनुमति दो कि वह तुम्हारे अस्तित्व के

गहरे केंद्र में उतर जाए

क्योंकि यही है वह, जिसकी खातिर तुम यहां आए हो।

यदि तुम इस कथा को समझ सके, तो तुम्हारे लिए

मेरे निकट से निकटतम आना आसान होगा।

प्रत्येक समय लीहत्थू व्यस्त नहीं होता था,

यिन शेंग ने यह अवसर पाया और गुहा रहस्यों को देने की मांग की। लीहत्थू लाओत्से स्कूल का ही एक सद्गुरु था,

लाओत्से के बुद्धत्व को उपलब्ध शिष्यों में से एक।

और लीहत्थू कोई सामान्य सद्गुरु न था।

वह तुम्हारी छोटी-छोटी समस्याओं और तुम्हारे कार्यों से

कोई वास्ता नहीं रखता था।

छोटी-मोटी शिक्षाएं देने में भी, उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। लीहत्थू की दिलचस्पी थी केवल सर्वोच्च सत्य में।

उसके बहुत से शिष्य थे।

दो तरह की श्रेणियां होती हैं शिष्यों की।

पहली श्रेणी के शिष्य, सद्गुरु द्वारा चुने जाते हैं,

और दूसरी श्रेणी के शिष्य वह होते हैं जो स्वयं चुनते हैं सद्गुरु को। दोनों के गुणों में बहुत भिन्नता है।

यह मनुष्य, यिन शेंग जरूर ही दूसरी श्रेणी का शिष्य रहा होगा– और अंतर बहुत बड़ा है।

जब एक सद्गुरु तुम्हें चुनता है, तो पूरी तरह वह बात ही अलग होती है। निश्चित रूप से तुम कभी यह जान भी न पाओगे

कि सद्गुरु ने तुम्हें चुना है।

वास्तव में सद्गुरु तुम्हें इस तरह विश्वास दिलाएगा

कि तुम यह अनुभव करोगे कि तुमने ही उसे चुना है।

इस बारे में उसकी बहुत गहरी अंतर्दृष्टि होती है,

क्योंकि यदि वह तुम्हें यह जानने की अनुमति देता है,

कि उसने ही तुम्हें चुना है,

तो तुम्हारा अहंकार बाधा उत्पन्न कर सकता है,

क्योंकि अहंकार मालिक बनना चाहता है,

अहंकार उसे अपने नियंत्रण में लेना चाहता है।

प्रत्येक दिन ऐसी ही परिस्थितियों से मेरा आमना-सामना होता है मैं तुम्हें यह जानने की अनुमति नहीं देता, कि मैं तुम्हे चुन रहा हूं। मुझे तुम्हें यह स्वतंत्रता देनी होती है कि तुम ही मुझे चुनो।

लेकिन अंतर बहुत बड़ा है,

क्योंकि जब एक सद्गुरु शिष्य को चुनता है

वह परिपूर्ण समझ के साथ चुनता है।

वह तुम्हारे द्वारा ही तुम्हारी भूत और भविष्य की सारी शक्तियों– और सम्भावनाओं के साथ तुम्हें देखता है,

और भविष्य में घटने वाली सारी घटनाएं उसके सामने स्पष्ट हो जाती हैं। लेकिन जब तुम कोई सद्गुरु चुनते हो, तो लगभग हमेशा, तुम गलत ही होते हो।

क्योंकि तुम अंधेरे में टटोलते हो।

बिना यह जाने हुए कि वह कौन है, वह उसे कैसे चुन सकता है?

बिना यह जाने हुए कि सत्य क्या है, तुम कैसे एक सद्गुरु को चुन सकते हो?

तुम कैसे निर्णय कर सकते हो?

तुम जो भी निर्णय करोगे, वह गलत होने जा रहा है।

मैं यह बात पूर्णता से कह सकता हूं प्रश्न इस बात का नहीं है

कि कोई व्यक्ति गलत हो सकता है अथवा ठीक? नहीं।

तुम जो कुछ भी चुनोगे वह गलत ही होगा,

क्योंकि तुम अंधेरे में टटोल रहे हो।

तुम्हारे पास अंतर्ज्योति है ही नहीं, जिससे तुम निर्णय ले सको,

तुम्हारे पास ऐसी कोई कसौटी या मापदण्ड है ही नहीं,

तुम जान ही नहीं सकते कि कौन सी धातु सोना है अथवा नहीं?

एक निष्ठावान खोजी, सद्गुरु को चारों ओर से छा जाने की अनुमति देता है। एक ईमानदार खोजी, सद्गुरु को उसे चुनने की अनुमति देता है।

एक मूर्ख खोजी ही सद्गुरु को चुनने का प्रयास करता है,

और तब प्रारम्भ ही से परेशानी शुरू हो जाती हैं।

लीहत्थू और उसके सद्‌गुरु लाओत्थू के
पूर्ण रूप से अलग तरह के सम्बन्ध थे।
लाओत्से ने ही जीहच्छू को चुना था।
इस यिन शेंग ने लीहच्छू को चुना था,
और जब एक शिष्य चुनाव करता है, तो वह आक्रामक होता है–
क्योंकि उस चुनाव में ही आक्रामकता की शुरुआत हो जाती है।
और यदि तुम उसे चुनते हो, तो एक सद्‌गुरु तुम्हें–
अस्वीकार नहीं कर सकता,
केवल अपनी करुणा के कारण भी वह तुम्हें अस्वीकार नहीं कर सकता। " प्रत्येक समय लीहच्छू व्यस्त नहीं होता था,

यिन शेंग ने अवसर पाकर, उससे गुहा रहस्य को दिए जाने की याचना की। वह मांगना या याचना वास्तव में मांगना न था,

वह केवल छीन लेने का एक तरीका था।
वास्तव में वह एक याचक न होकर आक्रामक था।
जब भी लहित्थू व्यस्त न होता था और वह अवसर पाता था
वह गुहा रहस्यों को दिए जाने की याचना करने लगता था।
लीहत्थू ने मुंह फेर कर उसे दूर हटा दिया होता,
और उससे कुछ कहा ही न होता,
लेकिन कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में वह भी विकसित हो सकता है
इसीलिए उसने कहा
कई बार लीहच्छू ने उसे टाल दिया था, कुछ कहना आगे के लिए स्थगित कर दिया था और कहा था:
अभी ठीक क्षण आया नहीं है। तुम अभी परिपक्व नहीं हुए हो।
लेकिन यिन शेंग आग्रह ही करता रहा था

अंत में लीहच्छू को जो सत्य बात थी, वह कहनी ही पड़ी।
उसने कहा: मैं सोचता था तुम मेधावी और होशियार हो,
पर वास्तव में तुम अन्य लोगों से अलग नहीं हो।
इसमें असभ्यता क्या है?
रहस्यों की मांग नहीं की जा सकती, तुम्हें उन्हें अर्जित करना होता है। तुम्हें उनके योग्य बनना होता है।
इतना योग्य और समर्थ कि सद्‌गुरु तुम्हें स्वयं उन्हें उपहार स्वरूप दे सके। वह स्वयं तुम्हें उनमें सहभागी बनाना चाहेगा,

लेकिन तुम्हें अपने सामान्य मन से ऊपर उठना होगा
क्योंकि सामान्य मन उसमें सहभागी बनने में समर्थ न हो सकेगा।

यही है वह, जिसके बाबत जीसस कहे चले जाते हैं– मोतियों को शूकरों के सामने नहीं फेंका जा सकता,

क्योंकि वे उसे समझेंगे नहीं, वह समझ है ही नहीं उनके पास।

तुम शब्द समझ सकते हो: पर वह रहस्य, मात्र शब्द नहीं हैं।

तुम विचार समझ सकते हो, पर वह सत्य का रहस्य, मात्र विचार नहीं है।

वे कोई दर्शन शास्त्र या सिद्धान्त नहीं हैं।

वे रहस्य, सद्गुरु के गहरे अंतस. 'की ऊर्जा हैं,

वे उसके अस्तित्व की सम्पदा हैं।

यदि तुम विकसित होकर उच्च से उच्चतम तल पर उठ सको,

केवल तभी तुम सद्गुरु के निकट से निकटतम हो सकोगे,

और जब सद्गुरु को यह अनुभव होता है,

कि तुम भी उसकी चटाई पर बैठ सकते हो,

केवल तभी वे रहस्य तुम्हें दिए जा सकते हैं, उससे पहिले नहीं। यदि वह उससे पूर्व देना भी चाहे, तो भी वह दे नहीं सकता। वह उन्हें करुणावश ही देना चाहता है, लेकिन दे किसे?

वे तैयार नहीं हैं, इसलिए उन्हें देना व्यर्थ होगा।

इसी ढंग से ऐसा एक बार हुआ भी,

एक सूफी रहस्यदर्शी धुन-गुन का एक शिष्य था,

वह शिष्य भी जरूर यिन शेंग जैसा ही रहा होगा,

वह निरंतर बार-बार याचना कर उसे तंग करता रहता था।

एक दिन धुन-गुन ने उसे एक पत्थर दिया

और उससे कहा-वह उसे सब्जी मंडी ले जाकर बेचने का प्रयास करे। वह पत्थर बड़ा था और खूबसूरत था।

लेकिन सद्गुरु ने कहा–उसे बेचना हरगिज नहीं,

केवल बेचने का प्रयास करना। कई लोगों को उसे दिखाना,

और बस लौटकर सारी बातें मुझे बताना–कि सब्जी मंडी में हम उसकी कितनी कीमत प्राप्त कर सकते हैं?

वह शिष्य सब्जी मंडी गया। बहुत से लोगों ने उसे देखा और सोचा:

वह दिखावे की एक अच्छी चीज है, हमारे बच्चे उसके साथ खेल सकते हैं अथवा हम उसका प्रयोग सब्जियों को तौलने वाले बांट की तरह कर सकते

इसलिए उन लोगों ने उसे केवल कुछ छोटे से सिक्कों

अर्थात् केवल दस पैसों में खरीदना चाहा।

वह शिष्य वापस लौटकर आया और सद्गुरु से कहा:

लोगों से अलग-अलग प्रत्युत्तर मिले, वे दो पैसों से दस पैसों–तक के थे।

अधिक से अधिक हमें इसके लिए वहां दस पैसे मिल सकते हैं। सद्गुरु ने कहा: अब तुम इसे लेकर सर्राफा बाजार जाओ

और वहां लोगों से इसकी कीमत पूछो, कि वह कितना धन दे सकते हैं, लेकिन बेचना हरगिज नहीं।

वह शिष्य सर्राफा बाजार से बहुत खुश होकर लौटा,

और उसने कहा : वे लोग तो अद्भुत हैं।

वे इसके लिए एक हजार रुपये तक देने को तैयार थे।

लोगों के प्रत्युत्तर अलग- अलग थे, पांच सौ रुपये से लेकर एक–हजार तक। सद्गुरु ने कहा: अब तुम इसे लेकर जौहरी बाजार जाओ,

लेकिन बेचना मत।

वह जौहरियों के पास गया। वह विश्वास ही न कर सका।

वे लोग पचास हजार रुपये तक देने को तैयार थे।

और जब उसने बेचने से इंकार कर दिया, तो वे लोग बढ़ा-बढ़ा

कर कीमतें लगाते रहे, और एक लाख तक पहुंच गए।

लेकिन उसने कहा– मैं इसे बेचने नहीं जा रहा हूं।

उन्होंने कहा–हम लोग इसके लिए दो लाख तीन लाख तक

दे सकते हैं, अथवा तुम जो कुछ मांगो, लेकिन इसे मुझे ही दो।

उसने कहा, मैं इसे बेच नहीं सकता। मुझे केवल कीमत पूछनी थी। वह विश्वास ही न कर सका– ये लोग तो पागल थे।

उसका स्वयं यह खयाल था कि सब्जी मंडी में

जो कीमत लगाई गई थी, वह काफी थी।

वह वापस लौट कर आया। सद्गुरु ने वह पत्थर उससे लेकर कहा: हमें इसे बेचना नहीं है।

लेकिन अब तुम जानते हो, कि सब कुछ तुम्हीं पर निर्भर है, यदि तुम्हारे पास कसौटी है, समझ है

तो तुम प्रश्न पूछे चले जाओ

और तुम सब्जी बाजार में ही रहोगे,

और तुम्हारी समझ भी उसी बाजार जैसी ही होगी।

तब यदि तुम बहुमूल्य रहस्यों के बाबत पूछते हो:

तो तुम हीरों के बारे में पूछ रहे हो।

लेकिन पहले एक जौहरी बनो और तब मेरे पास आना।

तब मैं तुम्हें सीख दूंगा।

एक निश्चित गुणों वाली समझ की जरूरत है,

केवल तभी विशिष्ट सत्य तुम्हें दिए जा सकते हैं।

और रहस्य? तुम उनकी मांग नहीं कर सकते,

क्योंकि बार-बार उनके मांगने से ही, तुम यह प्रदर्शित करते हो,

कि तुम सब्जीमंडी से आ रहे हो,

तुम्हें प्रतीक्षा करनी है, तुम्हें अनंत काल तक प्रतीक्षा करनी है।

तभी तुम यह दिखला सकोगे कि तुम उसके लिए

अपना पूरा जीवन तक बलिदान करने को तैयार हो।

तभी तुम यह प्रकट करते हो, कि तुम उन रहस्यों की कितनी अधिक कीमत लगा सकते हो– तुम पूरी तरह अपने जीवन तक को बलिदान कर सकते हो।

तभी सद्गुरु पूर्ण रूप से तुम्हें अपने अस्तित्व के साथ सहभागी बनाता है। कुछ भी दिया ही नहीं जा सकता, क्योंकि ये रहस्य कोई वस्तुएं नहीं हैं। शुद्ध रूप से एक ऊर्जा ही सद्गुरु से एक दीपशिखा की भांति,

तुम पर छलांग लगाती है,

तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट होती है और पूरी तरह तुम्हारा रूपान्तरण कर देती है।

मेरा खयाल था कि तुम मेधावी और होशियार हो,

क्या वास्तव में तुम अन्य सभी लोगों जैसे असभ्य नहीं हो?

तुम्हारा यह निरंतर याचना करना, तुम्हारे असभ्य मन को प्रदर्शित करता है, तुम समझते ही नहीं कि तुम क्या मांग रहे हो।

युवा होकर भी अपना बचकानापन दिखाकर, तुम पूरी तरह असभ्य दिखाई देते हो,

तुम यह भूल गए हो कि तुम किसके लिए यहां हो?

और यह नहीं जानते कि तुम क्या मांग रहे हो?

और तब उसने अपने सदगुरु के साथ रहने की अपनी कहानी सुनाई। यह एक दुर्लभ और अनूठी कहानी है।

मैं तुम्हें बतलाऊंगा, कि मैंने अपने सद्गुरु से क्या सीखा?

उसका अपना सद्गुरु लाओत्थू था।

ताओवादी परम्परा का स्रोत अथवा उद्गम,

इस पृथ्वी पर अभी तक जितने भी महान् सद्गुरु हुए हैं, उनमें से एक।

लीहत्थू ने कहा:

सद्गुरु की सेवा करने के तीन वर्षों बाद–

मेरा मन यह सोचने का साहस नहीं कर पाता था

कि क्या ठीक है और क्या गलत?

और न मैं अपने मुंह से लाभ या हानि के बारे में ही

कुछ कहने का साहस कर सकता था।

केवल तभी

मैंने सद्गुरु की कृपा दृष्टि से इतना सब कुछ प्राप्त किया।

तीन वर्ष बीत गए। वह पूर्ण रूप से सद्गुरु की सेवा ही करता रहा।

इसके अतिरिक्त तुम अन्य कुछ भी कैसे कर सकते हो?

तुम पूर्ण रूप से सद्गुरु की सेवा ही कर सकते हो।

एक शिष्य के द्वारा और कुछ भी किया ही नहीं जा सकता।

न कोई प्रश्न, न कुछ भी पूछना और न कुछ मांगना।

एक शिष्य पूरी तरह से अपने सद्गुरु की छाया बन जाता है,

और उसकी सेवा करता है,

और सेवा के द्वारा ही, अपने विश्वास प्रेम और श्रद्धा के कारण ही उसका मन बदलना शुरू हो जाता है।

लीहत्थू कहता है, मेरा मन यह सोचने तक का साहस न कर पाता था

कि क्या ठीक है और क्या गलत?

यह लगभग असम्भव हो जाता है–इस बारे में सोचना

कि क्या ठीक है और क्या गलत।

जब तुम एक सद्गुरु के निकट रहते हो, तुम्हें सोचने की जरूरत ही नहीं। तुम पूरी तरह से उसके साथ ही चलते हो

तुम पूर्ण रूप से उसकी गतिविधियों का अनुसरण करते हो।

तुम प्रत्येक चीज उसी पर छोड़ देते हो। तुम समर्पण कर देते हो।

लीहच्छू कहता है:

मेरा मन चाहने पर भी सोचने का साहस न कर पाता था...

और न मेरा मुंह कुछ और बोलने का साहस कर पाता था–

कि क्या लाभ है और क्या है हानि? क्या अच्छा है और क्या बुरा? क्योंकि सद्गुरु के निकट रहते हुए

तुम्हारा पूरा व्यवहार बदलना शुरू हो जाता है।

पहली बार सद्गुरु के झरोखे से तुम अखण्ड को देखते हो,

जहां गलत और ठीक, सच और झूठ आपस में एक दूसरे में मिलकर, मिश्रित हो जाते हैं

जहां अंधकार और प्रकाश, फिर अलग- अलग नहीं रह जाते।

हेराक्साईटस कहता है:

परमात्मा है-रात और दिन।

गर्मी और जाड़ा

भूख और तृप्ति, दोनों एक साथ।

सद्गुरु के द्वारा ही पहली झलक तुम तक आना शुरू हो जाती है। जितना तुम उसके निकट आते हो, सद्गुरु एक झरोखा बन जाता है, उतनी ही अधिक तुम अपनी समझ को शून्य में फेंक देते हो।

तुमने पहले जो कुछ भी जाना था, वह पूरी तरह व्यर्थ और

अनुपयोगी बन जाता है।

तुम कैप जाते हो। तुम्हारी पूरी बुनियाद हिल जाती है।

तुम अपने नियंत्रण चक्र या गिअर से दूर फेंक दिए जाते हो।

तुम आगे और यह नहीं जान पाते कि क्या ठीक है और क्या गलत? तुम सद्गुरु के झरोखे के द्वारा उस अखण्ड को देखते हो–

और पाते हो कि सभी कुछ उस पूर्ण में ही समाया हुआ है।

सारे विरोधाभास उसी पूर्ण में समाए हुए हैं,

सारी असंगतियां उस पूर्ण ही में समाहित हैं,

सारी विपरीतताएं उसी पूर्ण में मिलकर एक हो गई हैं।

इसी कारण लीन्हत्थू ने कहा–कि वह और आगे यह सोचने तक का साहस न कर सका,

कि क्या ठीक है और क्या गलत?

ठीक और गलत के सारे मापदण्ड व्यर्थ हो गए।

क्या लाभ है और क्या है हानि, यह सारी धारणाएं ही

पूरी तरह भाप बनकर उड़ गईं।

केवल तभी ऐसा हुआ

और मैंने सद्गुरु की कृपादृष्टि से इतना सब कुछ प्राप्त किया। गहन श्रद्धा से सेवा करने के तीन वर्षों बाद,

जब सद्गुरु ने मेरी ओर देखा

तो पाया कि पुराना मन,

जो अच्छे और बुरे, कुरूपता और सुन्दरता ' यह ' अथवा ' वह दो में विभाजित होकर, दो विपरीतताओं, में जीता था,

अब वह और अधिक रहा ही नहीं।

केवल तभी ऐसा हुआ,

कि मैंने सद्गुरु की एक दृष्टि से इतना सब कुछ प्राप्त किया। इससे लीहच्छू का आखिर अर्थ क्या है?

क्या तीन वर्षों तक सद्गुरु ने लीहज्यू की ओर कभी देखा ही नहीं? यह असम्भव है। सद्गुरु की निरंतर सेवा करते हुए

सद्गुरु ने उसे जरूर ही लाखों बार देखा होगा।

तब एक दृष्टि से उसका आखिर क्या अर्थ है?

देखना और दृष्टि, यह पूरी तरह से भिन्न हैं।

देखना एक निष्क्रिय चीज है।

जब मैं तुम्हारी ओर देखता हूं तो मेरी आंखें एक खिड़की

की भांति कार्य करती हैं।

तुम उसमें प्रतिबिम्बित होते हो, यह दृष्टि नहीं है।

एक दृष्टि का अर्थ होता है कि आंखें खिड़कियों की भांति–कार्य नहीं करतीं, लेकिन मेरी आंखें ही तुम्हारे अन्दर मेरी ऊर्जा उड़ेलने का कार्य करना शुरू कर देती हैं।

वे निष्क्रिय नहीं हैं, वे सद्गुरु की ऊर्जा से भरी हुई हैं।

जब देखने के साथ उसमें सद्गुरु की आंतरिक ऊर्जा का भी भार होता है, तब वह दृष्टि बन जाती है।

वह बहुत बड़ी क्रियात्मक शक्ति होती है।

वह एक तीर की तरह सीधे तुम्हारे हृदय में उतर जाती है।

वह तुम्हारे सबसे अधिक गहरे केंद्र को बेध देती है।

एक अर्थ में वह एक तीर की भांति है, क्योंकि वह हृदय को बेध देती है, और दूसरे अर्थ में वह एक बीज की भांति है, क्योंकि तुम गर्भ– धारण करते हो। एक दृष्टि, वह देखना भर है,

जो तुम्हें सद्गुरु की ऊर्जा के साथ, गर्भवती बना देती है।

एक दृष्टि, मात्र देखने से पूरी तरह भिन्न है।

एक दृष्टि में सद्गुरु अपने स्वयं के अस्तित्व से,

तुम्हारे केंद्र तक की यात्रा करता है।

एक दृष्टि एक सेतु होती है।

उसके सद्गुरु ने तीन वर्षों में लीहत्थू को कई बार जरूर देखा होगा, लेकिन वह दृष्टि नहीं थी।

और तुम इस अंतर को केवल तभी जानोगे,
जब मैं तुम्हें उस दृष्टि से देखूंगा।
जब कभी मैं वह दृष्टि तुम्हें देता हूं
लेकिन मैं वह दृष्टि किसी व्यक्ति विशेष को ही देता हूं
और केवल वही उसे जान पाता है।
कोई दूसरा व्यक्ति उसे नहीं जान पाता है।
दृष्टि को अर्जित करना होता है, तुम्हें उसके लिए तैयार होना होता है। देखना तो ठीक है
लेकिन दृष्टि में एक प्रामाणिक सघन ऊर्जा होती है।
यह सद्गुरु के अस्तित्व का ही हस्तान्तरण है,
तुम्हारे अन्दर गहरे में प्रविष्ट होने का यह उसका पहला प्रयास है।

केवल तभी वैसा हुआ
कि मैंने सद्गुरु की एक दृष्टि से इतना अधिक प्राप्त किया।
मात्र देखने और एक दृष्टि के मध्य का अंतर स्मरण रहे।
देखना केवल देखना भर है, इससे अधिक और कुछ भी नहीं।
गुणात्मक रूप से एक दृष्टि नितांत भिन्न है–उसमें कुछ चीज-गतिशील है।
यह देखना ही एक वाहन बन जाता है– वह फिर और रिक्त नहीं रह जाता,

कुछ चीज और ही उसके साथ यात्रा कर रही होती है।
यदि तुम कभी किसी के प्रेम में पड़े हो, तो तुम इसे जान सकते हो कि एक दृष्टि क्या होती है?
उसी स्त्री ने तुम्हें कई बार देखा है, लेकिन वह देखना सामान्य रूप से– बस देखना भर था–जैसे प्रत्येक अन्य व्यक्ति तुम्हें देखता है।
तब अचानक एक दिन, एक खिलती हुई खुशनुमा सुबह
वह तुम्हें दृष्टिभर कर देखती है।
वह देखना पूरी तरह भिन्न होता है, वह एक निमंत्रण होता है।
वह एक उपहार होता है, वह एक पुकार होती है।
अचानक कोई चीज तुम्हारे हृदय में गहरे तक उतर जाती है।
अब वह स्त्री, वही स्त्री नहीं रह गई,
और तुम भी अब पहले जैसे ही नहीं रहे।
तुम दोनों के बीच कुछ घटना घट गई।
कोई चीज ऐसी है, जिसे सिर्फ तुम दो ही जानते हो,
कोई पूरी तरह एकदम निजी चीज।
वह सार्वजनिक नहीं है, कोई दूसरा उसके प्रति सचेत नहीं होगा,
कि तुम लोगों के बीच कुछ घट चुका है: और एक देखना एक दृष्टि बन गई है।

लेकिन यह कुछ भी नहीं है। एक प्रेम भरी दृष्टि भी,
एक सद्गुरु के तुम्हें उस तरह देखने की तुलना में कुछ भी नहीं है,

जब वह एक देखना न होकर एक दृष्टि होती है।

क्योंकि जब दो प्रेमी एक दूसरे को प्रेम भरी दृष्टि से निहारते हैं,

तो वे एक ही धरातल पर खड़े होते हैं,

वह दृष्टि पूरी तरह भरी- भरी नहीं हो सकती,

वह एक ही धरातल पर बहती हुई एक सरिता की भांति होती है।

और जब सद्गुरु तुम्हारी ओर देखता है, तो उसकी दृष्टि,

एक भयानक जलप्रपात की भांति होती है, क्योंकि धरातल भिन्न हैं।

यह कुछ ऐसा होता है, जैसे नियाग्रा जलप्रपात तुम पर गिर रहा हो।

तुम पूरी तरह धुल पुछकर, फिर वैसे ही नहीं बने रहोगे।

तुम फिर वैसे ही नहीं बने रह सकते–वहां से फिर पीछे लौटना होता ही नहीं।

एक बार सद्गुरु ने तुम्हें दृष्टि भर कर देख लिया,

तो तुम्हारे अस्तित्व का सबसे आंतरिक केंद्र, एक भिन्न प्रकार के– भ्रमर गुंजार से भर उठता है, तुम एक अलग सुर-ताल में जीने लगते हो,

वास्तव में तुम फिर वही नहीं रह जाते,

उस दृष्टि के द्वारा पुराना विसर्जित हो जाता है,

और एक नूतन व्यक्ति, अस्तित्व में आता है।

लौह; इसी के बाबत कहता है–

तीन वर्ष तक निरंतर सद्गुरु की सेवा करते हुए

मैं प्रतीक्षा और बस प्रतीक्षा ही करता ही रहा, मांगा कुछ भी नहीं,

और एक दिन अचानक मुझे सद्गुरु की दृष्टि मिली।

पांच वर्ष बाद मेरा मन फिर से ठीक और गलत के बारे में सोचने लगा, और मेरा मुख, हानि लाभ की बात फिर से करने लगा।

और पहली बार सद्गुरु का चेहरा विश्राममय हुआ, और वे मुस्कराए।

इस बोध-कथा के मर्मस्थल तक पहुंचने का प्रयास करें: यह तुम्हारी ही कहानी है।

यह कोई ऐसी घटना नहीं है, जो कभी अतीत में घटी थी,

यह वह घटना है, जो अब भविष्य में घटने जा रही है।

सभी लेन बोध कथाएं तुम्हारे ही भविष्य की कथाएं हैं।

इसलिए यह सोचना ही मत, कि वे अतीत में घटी घटनाएं हैं।

जेन, कभी भी अतीत में होता ही नहीं, वह सदा भविष्य ही में होता है। और तुम्हें उसे वर्तमान में लाना है।

हुआ क्या? सद्गुरु की सेवा करने के तीन वर्ष बाद–

वह यह सोचने का भी साहस नहीं कर पाता था कि क्या ठीक है और क्या गलत?

यह कहने का भी साहस न कर पाता था कि क्या अच्छा है और क्या बुरा? वह क्या हानिप्रद है और क्या है लाभदायक?

तब उस दृष्टि के मिलने के बाद हुआ क्या?

.. .मेरा मन फिर से ठीक और गलत के बारे में सोचने लगा,

और मेरा मुख फिर से हानि और लाभ के बारे में कहने लगा।

हुआ क्या?

पहले तुम सोचते हो कि कोई चीज ठीक है और कोई चीज गलत है,

क्योंकि समाज ने तुम्हें अपने अनुशासन और आदतों के ढांचे में इस तरह से ढाल लिया है, कि वह विचार, तुम्हारा अपना विचार नहीं होता।

वह तुम्हारे अन्दर बैठा समाज ऐसा सोचता है।

समाज ने तुम्हारे मन को अनुशासन और आदतों के ढांचे में आबद्ध कर दिया

वह तुम्हारे अन्दर गहरे में प्रविष्ट हो गया है, और वह वहीं से तुम्हें नियंत्रित करता है।

अब वैज्ञानिक कहते हैं कि देर-सबेर हम मन के सबसे गहरे भाग में– एलेक्ट्रोड लगाने में समर्थ हो सकेंगे,

और उन एलेक्ट्रोड के द्वारा ही मनुष्य को नियंत्रित करना सम्भव हो सकेगा। सरकार किसी भी व्यक्ति को नियंत्रित करने में सफल हो सकेगी,

और तुम जान भी नहीं पाओगे, कि कोई अन्य व्यक्ति

तुम्हें नियंत्रित कर रहा है।

तुम्हें अनुभव होगा कि तुम ही उन कार्यों को कर रहे हो।

केवल एक स्विच दबाना होगा, और तुम्हें तुरंत शांत किया जा सकेगा।

तुम्हें क्रोधित किया जा सकेगा, केवल एक दूसरी मुंडी घुमानी होगी।

डेलगाडो ने एक बहुत प्रसिद्ध प्रयोग किया।

उसने बैल के मस्तिष्क में एक बहुत छोटा-सा एलेक्ट्रोड लगा दिया।

तब उसने उसका सार्वजनिक प्रदर्शन किया।

उसके हाथ में एक छोटा सा यंत्र था, ठीक रिमोट कंट्रोल जैसा,

उसके कई बटनों में से एक बटन उसने दबाया,

और सांड भयानक रूप से अर्राता हुआ उसकी ओर बढ़ा,

और देखने वाले प्रत्येक व्यक्ति की यही दिलचस्पी थी कि सांड कहीं

डेलगाडो को जान से न मार दे?

और ठीक उस समय जब कि सांड, डेलगाडो पर झपटने ही वाला था, उसने दूसरा बटन दबा दिया।

अचानक सांड एक पत्थर की मूर्ति की भांति, रुककर वहीं जड़ हो गया। उसके अन्दर का एलेक्ट्रोड बेतार से नियंत्रित हो रहा था।

केवल एक बटन दबाकर सांड को उत्तेजित और क्रोधित बनाया जा सकता

था, और केवल दूसरा बटन दबाकर उसे रोका जा सकता था।

यह एक बहुत-बहुत नई खोज है,

लेकिन समाज इसे प्रागैतिहासिक समय से ही, कुछ भिन्न और सूक्ष्म रूप में करता आ रहा है।

समाज तुम्हारे मनों में कोई एलेक्ट्रोड नहीं लगाता,

यद्यपि शीघ्र ही वह ऐसा करने भी लगेगा,

क्योंकि यह बहुत सस्ता और आसान होगा,

और तब मनुष्य की स्वतंत्रता की यहां कोई सम्भावना ही नहीं रह जाएगी। डेलगाडो ने यह बहुत खतरनाक खोजों में से एक खोज की है,

जो एटम बम, हाइड्रोजन बम और आणविक शक्ति से भी अधिक खतरनाक

क्योंकि बम आदि तो तुम्हारे शरीरों को मार सकते हैं,

लेकिन डेलगाडो तुम्हारी आत्मा को ही नहीं, तुम्हारी स्वतंत्रता की सम्भावना को भी मार सकता है।

और तुम यह जानने में समर्थ भी न हो सकोगे

कि तुम ऐसा किसी अन्य व्यक्ति के निर्देशों के अनुसार कर रहे हो,

तुम सोचोगे कि तुम्हीं ऐसा कर रहे हो।

ठीक ऐसा ही समाज द्वारा भी, बहुत सूक्ष्म और आदिम रूप से किया जा रहा

समाज तुम्हें सिखाता है कि क्या ठीक है और क्या गलत?

बहुत बचपन के शुरू से ही वह तुम्हारे मन को,

क्या ठीक है और क्या गलत, यह मानने को विवश करता है,

और तब निरंतर उसे दोहराते हुए तुम्हें सम्मोहित किया जाता है,

निरंतर दोहराते रहने से वह प्रगाढ़ होता जाता है।

जब भी तुम कुछ ठीक करते हो, तुम्हारी प्रशंसा की जाती है। और जब तुम कुछ गलत करते हो, तुम्हें बुरा कहते हुए तुम्हारी निंदा की जाती है।

जब तुम, ठीक करते हो, तो एक विधायक प्रोत्साहन मिलता है, तुम्हारी प्रशंसा करते हुए तुम्हें पुरस्कार दिए जाते हैं।

जब तुम कोई काम गलत करते हो,

नकारात्मक रूप से तुम्हारी टांग घसीटी जाती है,

तुम्हें निंदित करते हुए तुम्हें दण्ड दिया जाता है।

इसी तरह से समाज तुम्हारे अन्दर एलेक्ट्रोड फिट कर देता है,

और तब तुम्हें नियंत्रित करता है।

यदि तुम्हारे समाज ने तुम्हें एक शाकाहारी बनने के लिए अनुशासनबद्ध किया है, तो तुम मांस नहीं खा सकते।

ऐसा नहीं कि तुम मांस खा नहीं सकते,

लेकिन समाज द्वारा थोपे गए अनुशासन और आदतों का ढांचा,

जो एक एलेक्ट्रोड की भांति मन में पैबस्त कर दिया गया था,

वह तुम्हें नियंत्रित करता है,

और मांस को देखते ही, तुम उल्टियां करना शुरू कर दोगे।

यह ऐसा कुछ भी नहीं है, जो तुम कर रहे हो,

यह तुमसे करवाया जा रहा है–समाज के द्वारा

और प्रत्येक समाज के पास अपनी तरह के अनुशासनों का एक ढांचा होता है, यही कारण है कि दूसरे समाज में रहना बहुत कठिन है

विदेशी-देश में रहना बहुत कठिन हो जाता है।

तुम्हारी आदतों और अनुशासन का ढांचा भिन्न है।
और उनकी कंडीशनिंग अथवा ढांचा भिन्न है
और सभी नैतिकताएं और नियम और कुछ भी नहीं हैं,
केवल 'कनडीशनिंग' हैं।

इसलिए जब एक व्यक्ति सर्वोच्च सत्य और स्वतंत्रता की ओर बढ़ना शुरू करता है।
तो सबसे पहले समाज द्वारा थोपी हुई यह कनडीशनिंग गिरती है।
यही लीहत्थू के साथ हुआ।
तीन वर्ष तक सद्गुरु के निकट रहते हुए उन्हें देखते-उनके साथ जीते हुए और उनकी सेवा करते हुए उसने जाना कि सभी ठीक और गलत केवल समाज की कंडीशनिंग हैं, वह गिर गईं।
तब तुम्हारी अपनी अंतस. चेतना जागृत होती है, तुम्हें भले-बुरे का बोध होता है। अभी अपने अन्दर जो तुम भले-बुरे का ज्ञान लिए हुए घूम रहे हो,
वह नकली है, उधार का है।
तब तुम्हारे अन्दर अपना विवेक उत्पन्न होता है,
तब तुम्हारे पास अपनी अंतर्दृष्टि होती है, जो ठीक और गलत का निर्णय करसकती है।
जो कुछ हुआ, वह यही था।

पांच वर्ष बाद
मेरा मन फिर से सोचने लगा कि क्या ठीक है और क्या गलत,
और मेरा मुख फिर से कहने लगा कि क्या लाभ है और क्या हानि?
और पहली बार सद्गुरु के चेहरे पर संतोष की मुस्कान दिखाई दी।
ऐसा नहीं कि सद्गुरु निरंतर उदास रहता था,
इन आठ वर्षों में उसका गम्भीर बने रहना कठिन है।
नहीं, लाओत्से जैसा सद्गुरु हमेशा हंसता ही रहता था।
वह गम्भीर व्यक्ति था ही नहीं। गम्भीरता तो एक बीमारी है।
एक बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति हमेशा खेलपूर्ण रहता है,
उसका पूरा जीवन और कुछ भी नहीं केवल एक खेल ही होता है।
फिर वह गम्भीर हो कैसे सकता है?
हुआ क्या?
क्या इन आठ वर्षों में, लाओत्से कभी हंसा या मुस्कराया नहीं?
नहीं, ऐसी बात नहीं है। वह कई बार जरूर हंसा होगा,
वह कई बार जरूर मुस्कराया होगा।
लेकिन लीहच्छू के लिए उसके अन्दर गहरे अस्तित्व में,
उस दिन कुछ घट गया
तब पहली बार सद्गुरु के चेहरे पर संतोष भरी मुस्कान दिखाई दी।
एक सद्गुरु को निरंतर शिष्य का पीछा करना होता है,

उसे बहुत कठोर होना होता है,

करुणावश ही उसे निरंतर कार्य करना होता है,

लेकिन बाहर के चेहरे के बारे में नहीं, उसके अन्दर के चेहरे के बारे में। इन आठ वर्षों तक लाओत्से, लीहत्थू के आंतरिक अस्तित्व का अनुसरण, उसके आत्म अनुशासन को जगाने के लिए बहुत कठोरता से, सख्त चेहरे के साथ जरूर करता रहा होगा।

तब यह देखकर कि लीहच्छू के अन्दर स्वयं भले-बुरे का ज्ञान उत्पन्न हो गया, वह पहली बार जरूर मुस्कराया होगा।

वह मुस्कान बाहरी चेहरे की नहीं उसका सम्बन्ध उसके अन्दर के साथ था।

तब पहली बार लीहच्छू ने अनुभव किया होगा

कि सद्गुरु की मुस्कान उस पर फुहारों की तरह बरस रही है।

वह अनुभव कर सका होगा कि अब सद्गुरु उसके बारे में निश्चित और विश्राममय हो सकते हैं।

अब उन्हें और कठोर न होना होगा, उनका कार्य अब इतना कठिन नहीं रह गया है।

तभी वह मुस्कराए हैं।

एक बार तुम्हारे अन्दर स्वयं भले-बुरे का ज्ञान उत्पन्न हो जाए

फिर सद्गुरु के लिए तुम्हारे प्रति उतना कठोर होने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

उसे कठोर इसलिए होना होता है, क्योंकि तुम्हारे पास

भले-बुरे का ज्ञान नकली है।

उसका पहला काम यही है कि वह उस उधार ज्ञान को नष्ट करे।

क्योंकि तुम्हारे अन्दर उत्पन्न भले-बुरे के ज्ञान को अभी उसे एकीकृत करना है, उसे कठोर होना ही होता है।

जब वह बोध तुम्हारे अन्दर एकीकृत हो जाता है,

और तुम स्वयं अपने अस्तित्व के केंद्र पर पहुंच जाते हो,

सद्गुरु तभी विश्राम लेकर मुस्करा सकता है।

अब आधा काम पूरा हुआ। अब सद्गुरु की ओर से तुम्हारे लिए वहां किसी बाह्य अनुशासन की कोई आवश्यकता नहीं है।

तुम्हारे पास अब स्वयं ही भले-बुरे का अपना बोध है,

अब तुम्हारे पास अपने अन्दर स्वयं का प्रकाश है,

जो तुम्हें स्पष्ट करेगा कि क्या गलत है और क्या ठीक है?

अब तुम अपने आप आगे बढ़ सकते हो।

सद्गुरु के मुस्काने का यही अर्थ है–उसे अनुभव किया जाता है।

जब वास्तव में तुम स्वयं भले-बुरे का ज्ञान अर्जित करते हो,

तो तुम सद्गुरु की मुस्कानों को अपने अन्दर फुहारों के रूप में बरसने का अनुभव करोगे।

वे तुम्हारे अस्तित्व के हर कोने में तुम्हें चारों ओर से घेर लेगी।

यही कारण है कि सद्गुरु, तुम्हारे अन्दर अंतर्बोध के जन्म होने का उत्सव मनाता है।

सात वर्षों बाद, मेरे मन में ठीक और गलत, अच्छे या बुरे के बीच बिना कोई भी भेद किए जो कुछ भी आता था, मैं वही सोचता था, लाभ और हानि के बीच बिना कोई अंतर किए हुए जो कुछ मेरे मुंह में आता था, मैं वही कहता था।

और तब पहली बार सद्गुरु ने खींचकर अपने साथ मुझे अपनी ही चटाई पर बिठाया।

यह पूर्ण विश्राम की स्थिति है।

भले-बुरे का आंतरिक बोध होना भी आवश्यक है,

क्योंकि तुम अभी भी पूरी तरह से विकसित नहीं हो।

बाहर से भले-बुरे के ज्ञान की तभी जरूरत होती है,

क्योंकि अभी तुम्हारे पास वह आंतरिक बोध नहीं है।

अंतस. चेतना इसलिए जरूरी है

क्योंकि तुम अभी भी पूरी तरह से विकसित नहीं हुए हो।

लेकिन जब पूरी तरह विकसित हो जाते हो तुम,

जिसके बारे में तिलोपा कहता है–सहज और स्वाभाविक।

तब तुम्हारे द्वारा कोई भी नुकसान अथवा किसी की कोई हानि नहीं हो सकती।

तुम सामान्यतया फिर और बचते ही नहीं,

तुम कोई हानि कर ही नहीं सकते।

इसलिए फिर भले-बुरे के आंतरिक बोध की भी जरूरत नहीं रह जाती

और वह भी विसर्जित हो जाता है।

अब तुम एक छोटे बच्चे की भांति निर्दोष हो जाते हो,

पूर्णत: शुद्ध और पवित्र।

तुम उन्हीं घटनाओं के बाबत कहते हो, जो तुम्हारे साथ होती हैं

जो चीजें तुम्हें घटती हैं, तुम उन्हीं के बारे में सोचते हो।

तुम्हारे मन में विचार बादलों से तैरते रहते हैं,

लेकिन तुम्हारी उनमें जरा भी दिलचस्पी नहीं होती।

तुम मुंह से वे बातें भी कह देते हो, जिनसे तुम्हारा

कोई मतलब या लेना-देना नहीं होता है।

यह स्थिति एक छोटे बच्चे के समान अथवा एक पागल जैसी है, पूरी तरह से विश्रामपूर्ण।

जैसे मानो वहां तुम्हें नियंत्रित करने वाला कोई है ही नहीं।

और जब नियंत्रण पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तो अहंकार मिट जाता है– क्योंकि अहंकार और कुछ भी न होकर नियंत्रक होता है। जब कोई नियंत्रण ही नहीं है कि तुम हो कौन?

तो तुम ठीक उस नदी की भांति हो जो सागर की ओर बही चली जा रही है, अथवा तुम आकाश में उड़ते हुए बादल की भांति हो।

फिर तुम और वहां रहते ही नहीं, तुम्हारे मनुष्य होने का रूप, नाम, अहंकार सभी कुछ विसर्जित हो जाता है।

अब तुम सहज और सरल हो जाते हो।

सात वर्षों के बाद, जो कुछ मेरे मन में आता था, मैं वही सोचता था।

तुम कोई काम कर ही नहीं सकते, क्योंकि वहां करने वाला कोई है ही नहीं। यदि विचार आते हैं, तो वे आते हैं,

यदि वे नहीं आते हैं, तो ठीक, यदि वे आते हैं, तब भी ठीक।

मुंह से कोई बात निकलती है, तो वहां नियंत्रण करने वाला कोई है ही नहीं, इसीलिए वह कुछ कहता है।

कभी वह कुछ भी नहीं कहता, बोलता ही नहीं।

कभी-कभी कोई अन्य व्यक्ति कुछ पूछता है और कोई भी उत्तर नहीं पाता, ऐसा व्यक्ति मौन ही रहेगा।

कभी-कभी वहां पूछने को कोई भी व्यक्ति होता भी नहीं,

और यह शख्स हंसता है और उत्तर देता है, क्योंकि वह आ रहा है।

यह व्यक्ति एक पायल की तरह व्यवहार करता है।

भारत में एक सम्प्रदाय है, एक विशिष्ट सम्प्रदाय, जिसे बाउल कहते हैं? बाउल शब्द का अर्थ ही है– पागल।

वे लोग निरंतर इसी तीसरी स्थिति में रहते हैं।

जो कुछ अपने आप होता है, वे वही करते हैं : न अच्छा, न बुरा,

उनका अपना कोई चुनाव होता ही नहीं।

वे हवा की भांति डोलते हुए चलते हैं।

और वे लोग विश्व के सुन्दरतम और उल्लेखनीय मनुष्यों में अनूठे हैं।

वे नाचते हैं और गाते हैं, और कभी-कभी जब वहां कोई भी नहीं होता– तोn

सुनसान रास्ते पर, वे अब भी गीत गा रहे होते हैं,

ठीक एक पुष्प की भांति, जो सुनसान रास्ते में खिलने के लिए ही आया है, जहां कोई व्यक्ति कभी आता-जाता ही नहीं।

लेकिन फूल के पास सुगंध तो बिखराने के लिए ही होती है,

और वह अपनी सुवास चारों और फैलाता चला जाता है।

वे लोग सामान्यतया सहज और सरल होते हैं।

और पहली बार–

सद्गुरु ने मुझे खींच कर अपने साथ अपनी ही चटाई पर बिठाया।

अब शिष्य विसर्जित हो गया, मिट गया, क्योंकि अब अहंकार न रहा।

अब गुरु और शिष्य दोनों एक हो गए।

अब कोई भेद रहा ही नहीं। सद्गुरु ने पहली बार लौह; को खींचकर अपने साथ उसी चटाई पर बिठाया, जिस पर वह बैठा था।

यह केवल प्रतीकात्मक है। लेकिन अन्दर गहरे में–यह बहुत-बहुत महत्वपूर्ण है।

अब सद्गुरु ने उसे अपनी ओर खींचा,

यह देखते हुए कि अब वहां न कोई अहंकार रहा और न कोई बाधा रही। जब शिष्य मिट जाता है, तो सद्गुरु भी विलुप्त हो जाता है,

वास्तव में सद्गुरु तो वहां पहले शुरू से ही था ही नहीं।
शिष्य के अहंकार के कारण ही वह वहां उसे दिखाई देता था,
कि वह उसका सद्गुरु है।
वह केवल इसी कारण सद्गुरु था, क्योंकि शिष्य अज्ञानी था।
अब वहां न कोई शिष्य रहा, और न कोई सद्गुरु।
दोनों ही मिट गए।
सद्गुरु ने उसे अपनी चटाई पर ही खींच लिया,
अन्दर ही अन्दर सूक्ष्म रूप में सद्गुरु ने उसे अपनी ओर खींचा, और वे एक हो गए।
यह है–महामुद्रा।
यह है–सर्वोच्च शिखर का परमानंद,
जो एक सद्गुरु और शिष्य के मध्य जब वे मिलते हैं, तब घटता है।
संभोग के सर्वोच्च शिखर के अनुभव द्वारा,

तुम्हें इसकी बहुत धुंधली, पीली-पीली सी टिमटिमाती हुई झलक मिल सकती है।
लेकिन किसी अन्य चीज का इसके समानांतर होना कठिन है।
इसी वजह से मैं कह रहा हूं–संभोग के सर्वोच्च परमानंद के द्वारा भी कुछ– कुछ ऐसा ही अनुभव होता है।
यह कुछ ऐसा है, जैसे एक बूंद की तुलना सागर से की जाए–ठीक उसी तरह।
संभोग के सर्वोच्च शिखर का अनुभव एक बूंद की भांति है,
और जब एक आध्यात्मिक सर्वोच्च शिखर-अनुभव,
एक सद्गुरु और शिष्य के मध्य घटता है
वह अनुभव सागर जैसा असीम और विशाल होता है।

नौ वर्षों बाद
मेरे मन में जो कुछ भी आता था, बिना किसी नियंत्रण के
मैं वैसा ही सोचता रहता था।
बिना यह जाने हुए कि क्या ठीक है और क्या गलत?
वह लाभप्रद है अथवा हानिकारक, और वह विचार मेरा अपना है– अथवा किसी अन्य का?
जो कुछ मेरे मुंह में आता था, मैं कह देता था,
और बिना यह जाने हुए कि सद्गुरु मेरा शिक्षक था भी अथवा नहीं।
मेरे लिए हर चीज एक जैसी थी।
पहले तो अच्छे और बुरे का भेद मिटा,
तब लाभ और हानि का भी भाव मिटा,
और फिर यह विचार-कौन व्यक्ति कौन है?
'तेरा' और ' मेरा 'मैं' और' तू यह भी विसर्जित हो गए।

मार्टिन बूबर ने एक सुन्दर पुस्तक लिखी है– मैं और तू
यहूदी-रहस्यवाद भी इसी बिंदु तक आता है

तब वह वहीं तक आकर रुक जाता है।

उच्चतम धरातलों और बिंदुओं में, यह स्थिति ऐसी है

जहां शिष्य और सद्गुरु, खोजी और अखण्ड होते हैं।

'वे 'मैं' और 'तू' के मध्य प्रत्यक्ष संवाद के द्वारा ही, इस बिंदु तक आते हैं, लेकिन वे वहां मौजूद रहते हैं।

पूरब का रहस्यवाद अंतिम छलांग भी लगाता है– मैं और तू भी मिट जाता है।

संवाद भी मिट जाता है। वहां रह जाता है केवल मौन।

हर चीज एक जैसी ही थी।

अब लीहत्थू इससे भी बेखबर हो गया था कि लाओंत्थू–उसका सद्गुरु है अथवा नहीं?

वह इससे भी बेखबर हो गया था कि वह एक शिष्य भी है अथवा नहीं। ऐसे क्षणों में, जेन इतिहास में बहुत सी अविश्वसनीय घटनाएं घटी हैं।

सदगुरु कई वर्षों में कई बार शिष्य पर चोट करता है

कभी वह उसे ठोकर मारकर दरवाजे के बाहर फेंक देता है।

जेन सद्गुरु बहुत कठोर होते हैं,

और तभी शिष्य बुद्धत्व को उपलब्ध होता है।

सद्गुरु के साथ रहते हुए बीस अथवा तीस वर्षों के कठोर श्रम और अनुशासन के बाद। और ऐसा भी होता है– कि एक दिन शिष्य आता है और सद्गुरु को तमाचा मार देता है।

ऐसा कहीं भी इससे पूर्व कभी हुआ ही नहीं,

और आश्चर्य की बात यह, कि सद्गुरु हंसता है, पेट फाड़ देने-वाले ठहाकों के साथ वह कहता है–

"बिस्कूल ठीक। तुमने बहुत अच्छा काम किया।"

एक बार ऐसा हुआ कि एक शिष्य एक यात्रा पर जा रहा था,

तभी सद्गुरु ने उसे बुलाकर, उसके सिर पर डंडे से तगड़ा प्रहार किया और उसे तमाचा भी मारा।

शिष्य ने कहा: यह तो बहुत अधिक है। मैंने कोई भी ऐसा काम किया ही नहीं।

मैंने एक शब्द तक का भी उच्चारण नहीं किया।

मैंने आपके कमरे में प्रवेश किया और आपने मुझे मारना शुरू कर दिया। क्या यह बहुत अधिक नहीं है?

सद्गुरु ने कहा:

तू सफर पर जा रहा है, और मैं देख सकता हूं

कि जिस क्षण तू वापस लौटेगा, तू बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएगा, और यह अंतिम अवसर है मेरे लिए कि मैं तुझ पर चोट कर सकूं।

लीहत्थू ने यिन शेंग से कहा–

अब तुम मेरे शिष्य बनने यहां आए हो,

और एक साल बीतने के पहले ही

तुम हर वक्त असंतुष्ट और नाराज रहते हो।

लीहज्यू को उस बिंदु तक आने में सात वर्ष लगे थे

जब सद्गुरु ने उसे खींचकर अपनी चटाई पर बिठाया था,

और अपने अस्तित्व के सबसे अधिक गुह्यतम रहस्यों को प्रकट कर,
अपना हृदय खोल दिया था।
और यह शिष्य जो केवल एक वर्ष से यहां है,
वह आक्रामक और कुपित होकर इसलिए बुरा मान रहा है
क्योंकि लीहत्थू उसके प्रश्नों के उत्तर नहीं देता,
और उसे वे गुहा रहस्य नहीं देता, जिनकी लालसा से वह यहां आया है। इस शाश्वतता के अनंत विस्तार में एक वर्ष होता ही क्या है?
कुछ भी तो नहीं। लेकिन तुम्हारी शीघ्रता, उस समय को–बहुत बहुत लम्बा बना देती है।
लीहत्थू को गुजरे हुए पच्चीस शताब्दियां बीत गईं।
यदि वह आज वापस लौट कर आए तो वह यह विश्वास
करने में समर्थ ही न हो सकेगा
कि अब मनुष्यों के लिए एक वर्ष प्रतीक्षा करना भी
लगभग असम्भव हो गया है।
मैं ऐसे लोगों से मिला हूं जो कहते हैं:
हम यहां केवल तीन दिनों के लिए आए हैं।
मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं जिन्होंने केवल एक बार ही ध्यान किया है, और वे मेरे पास आकर कहते हैं–
अभी तक कुछ भी नहीं हुआ।

मनुष्य अधिक से अधिक मूर्ख और असभ्य बन गया है।
तुम छोटी-छोटी चीजें तो आसानी से प्राप्त कर सकते हो,
वेमौसमी फूलों की तरह हैं: तुम जमीन में बीज रखो
और तीन हफ्तों में वे अंकुरित हो उठेंगे।
लेकिन मौसम समाप्त होने पर, वे भी मिट जाएंगे।
वे क्षणभंगुर हैं, थोड़े से ही समय तक हैं।
तुम इसी क्षण तुरंत तैयार कॉफी ले सकते हो,
लेकिन इसी क्षण तुम ध्यान को नहीं पा सकते।
विशेष रूप से पश्चिमी मन के लिए समय बहुत महत्वपूर्ण है,
बहुत भारी है उनके लिए प्रतीक्षा करना।
पश्चिम के मन में समय का बहुत मूल्य है।
पूरब की इन बोध कथाओं को सुनते हुए तुम उनका मजा ले सकते हो, लेकिन तुम्हें अपने मन में घूमने वाले समय के बारे में भी सजग होना चाहिए।
पश्चिम में प्रत्येक कार्य इतनी अधिक शीघ्रता में किया जाता है,
कि तुम किसी भी चीज का आनंद नहीं ले सकते।
तुम एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हो, हमेशा जाते ही रहते हो,
तेज से तेज गति के वाहनों से यात्रा करते हो।

तुम जितना अधिक तेज चलते हो,

उतना ही कम महत्व तुम अपनी यात्रा करने को देते हो,

क्योंकि तुम एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाते हो

और इसके मध्य में जो बहुत कुछ है, तुम उसे खो देते हो।

एक बैलगाड़ी से यात्रा करने का अपना सौंदर्य और आनंद अनूठा है।

जेट प्लेन से यात्रा करना बेवकूफी है,

क्योंकि वह यात्रा है ही नहीं। वह एक व्यापारिक भागदौड़ हो सकती है। व्यापार के लिए वह ठीक है, तुम्हारा समय बचता है।

लेकिन यात्रा करने के लिए तुम्हें बहुत धीमे- धीमे गतिशील होना चाहिए। पैदल घूमने जैसा और कुछ है ही नहीं,

तब तुम उसके प्रत्येक क्षण का आनंद लेते हो–

तुम हर गुजरते हुए वृक्ष को देखते हो,

तुम लाखों चीजों के साथ एक हो जाते हो

और इस अनुभव के द्वारा तुम समृद्ध होते हो।

क्योंकि मनों पर समय हावी है, इसलिए गति ही केवल लक्ष्य बन गई है।

तुम यह भी नहीं जानते, कि तुम कहां जा रहे हो?

लेकिन तुम खुश हो, क्योंकि तुम तेज जा रहे हो।

तुमने दिशा खो दी है, लेकिन गति तुम्हारे हाथ में है।

यह मन सर्वोच्च सत्य को खोजने में समर्थ न हो सकेगा।

यह चीज किसी मौसमी फूल की भांति नहीं है:

यह तो सर्वोच्च और अंतिम है, यह तो एक अक्षय वट की भांति है। इसके लिए भूमि तैयार करनी है, इसके लिए जड़ों को तुम्हारे अन्दर ले जाकर जमाना है,

इसके लिए अनंत धैर्य और प्रतीक्षा करने की आवश्यकता है। यदि तुम केवल प्रतीक्षा और प्रतीक्षा कर सकते हो

तो शेष सभी के लिए मैं तुमसे वायदा कर सकता हूं

कि वह तुम्हारे पास आएगा।

तुम मेरे साथ केवल शुद्धतम रूप से प्रतीक्षा करो,

और प्रत्येक चीज उसका अनुसरण करेगी।

लेकिन शीघ्रता मत करो

और न रहस्यों को देने की याचना करो–

जब तुम तैयार होगे, वे तुम्हें दे दिए जाएंगे।

वास्तव में यह कहना भी कि वे तुम्हें दे दिए जाएंगे, ठीक नहीं है, जब तुम तैयार हो जाओगे,

अकस्मात् तुम पाओगे, कि वे हमेशा से तुम्हारे ही साथ थे। जब तुम तैयार होते हो, तुम अकस्मात् उन्हें पा लेते हो।

और जो कुछ तुम प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हो,

वह पहले ही से तुम्हारे पास है।

तुम हमेशा उसे अपने साथ ही रखते थे,
वह स्थिति पहले ही से थी।
सद्गुरु तो केवल एक कैटेलेटिक एजेन्ट है,
जो स्वयं कुछ नहीं करता, पर उसकी उपस्थिति आवश्यक है। वह शांत, मौन, कुछ भी न करते हुए भी खामोश बैठा रहता है।
हरियाली का मौसम आता है
तो घास स्वयं उग आती है।
आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

शून्यता और भिसु की नाक

सूत्र:

सीको ने अपने एक भिक्षु से कहा:

क्या तुम शून्यता को झपटकर पकड़ सकते हो?

भिक्षु ने कहा: मैं प्रयास करूंगा,

और उसने अपनी हथेलियों को प्यालानुमा बनाकर हवा में

उसे मुट्ठियों में पकड़ने का प्रयास किया।

सीको ने कहा: ऐसा करना ठीक नहीं है,

तुमने वहां कोई भी चीज नहीं पाई।

भिक्षु ने कहा : आप ही ठीक हैं, प्यारे सदगुरु, पर कृपया हमें इससे बेहतर उपाय करके बतालाइए।

तब सीको ने भिक्षु की नाक पकड़कर

उसे तेजी से झटका देकर अपनी ओर खींचा।

'आउच' की ध्वनि के साथ भिक्षु चीखते हुए बोला–आपने मुझ पर चोट की?

सीको ने कहा: शून्यता को पकड़ने का यही एक रास्ता है।

मनुष्य स्वयं अपने आप से ही इतना अधिक भरा हुआ है

और इसके लिए वह कुछ भी नहीं करता है।

मनुष्य को एक पोले बाँस की तरह होना चाहिए

जिससे अस्तित्व उसके द्वारा होकर गुजर सके।

मनुष्य को एक बहुत से छेदों वाले मुलायम स्पंज की भांति होना चाहिए जिससे उसके अस्तित्व के सारे खिड़की और दरवाजे खुले रहें,

और अस्तित्व एक सिरे से उसमें प्रवेश कर दूसरे छोर से,

बिना किसी अवरोध के गुजर सके,

और वास्तव में अन्दर खोजने पर भी कोई न मिले।

हवाएं चलती हैं–वे एक खिड़की से अन्दर आती हैं

और उसके अस्तित्व की दूसरी खिड़की से बाहर निकल जाती हैं। उन्हें अन्दर कोई भी नहीं मिलता

यह शून्यता ही सर्वोच्च परमानंद है।

लेकिन तुम तो बिना छेदों की एक कठोर और ठोस चट्टान हो,

अथवा कठोर स्टील रॉड की भांति हो, जिसके द्वारा कुछ भी नहीं गुज सकता।

तुम प्रत्येक चीज के आने में अवरोध बनते हो,

तुम उसे अन्दर आने की अनुमति ही नहीं देते।

तुम चारों ओर सभी दिशाओं से संघर्ष ही किए चले जाते हो,

जैसे मानो तुम अस्तित्व के साथ एक महान युद्ध लड़ रहे हो।

वहां युद्ध जैसा कुछ भी नहीं हो रहा है, तुम पूरी तरह से अपने को ही बेवकूफ बना रहे हो।

वहां तुम्हें मिटाने के लिए कोई भी तो नहीं है,

पूर्ण अस्तित्व तुम्हारी सहायता कर रहा है

यह पूरी पृथ्वी, जिस पर तुम खड़े हुए हो,

यह पूरा आकाश, जिसमें तुम श्वांस लेते हो, जीवित रहते हो,

तुम्हें सहारा दे रहा है।

वास्तव में तुम नहीं हो, केवल अखण्ड ही है।

जब कोई इसे समझता है,

तो धीमे-धीमे वह अपने अन्दर की कठोरता छोड़ने लगता है,

फिर उसकी कोई जरूरत ही नहीं रह जाती।

वहां किसी से कोई शत्रुता है ही नहीं,

पूर्ण अस्तित्व तुम्हारे प्रति मित्रतापूर्ण है।

वह तुमसे प्रेम करता है, आशाएं करता है,

अन्यथा तुम यहां होते ही क्यों?

यह पूरा अस्तित्व ही तुम्हें आगे लाता है,

जैसे यह पृथ्वी एक वृक्ष को उत्पन्न कर ऊंचा उठाती है।

तुम्हारे ऊपर सभी आशीर्वादों की वर्षा करते हुए सभी सम्भव समारोहों में पूरा अस्तित्व भाग लेना चाहता है।

इसीलिए जब तुम खिलते हो, 'वह पूर्ण' तुम्हारे द्वारा ही खिलेगा,

जब तुम गीत गाते हो, वह पूर्ण तुम्हारे द्वारा ही गाएगा,

जब तुम नृत्य करते हो, 'वह पूर्ण' तुम्हारे साथ ही नृत्य करेगा।

तुम उससे पृथक नहीं हो।

अलग होने की भावना भय उत्पन्न करती है,

और यह भय ही तुम्हें बिना छिद्र के कठोर बनाता है।

असुरक्षा का यह भाव कि जैसे मानो पूरा अस्तित्व ही तुम्हें नष्ट करने जा रहा

तुम्हारा यह खयाल, कि तुम यहां एक बाहरी व्यक्ति हो, एक अजनबी हो, और तुम्हें इंच-इंच भूमि पर लड़ते हुए अपनी राह बनानी है,

तुम्हें अपनी मंजिल की ओर बढ़ते हुए स्टील रॉड की भांति सख्त बना देती है।

फिर निश्चित रूप से तब बहुत सी चीजें तुम्हारे जीवन से पूरी तरह लुप्त हो जाती हैं।

तुम दुखों में जीते हो, तुम व्यग्र होकर जीते हो।

तुम असह्य पीड़ा में जीते हो, लेकिन तुम्हारा इस तरह जीना,

तुम्हारी अपनी ही स्वेच्छा से है।

छिद्रयुक्त और बांस की पोंगरी बनकर बहते रही। संघर्ष करने की तो कोई जरूरत है ही नहीं

वस्तुत: जरूरत है, उस पूर्ण के साथ एक होने की।

मनुष्य के सामने यहां दो तरह से व्यवहार करने के

विकल्प खुले हुए हैं:

एक है–एक योद्धा की भांति व्यवहार करना और दूसरा है–प्रेमी की तरह व्यवहार करने का।

यह तुम्हारा अपना चुनाव है–तुम चुन सकते हो।

लेकिन स्मरण रहे.. .इसके कुछ निश्चित परिणाम, पीछा करते हुए आएंगे ही। यदि तुम योद्धा का मार्ग चुनते हो,

और तुम अपने चारों ओर की प्रत्येक चीज से योद्धा बनकर,

संघर्ष करते हो, तो तुम हमेशा दुखी रहोगे।

इससे तुम अपने चारों ओर एक नर्क निर्मित करते हो।

संघर्ष करने के पूरे व्यवहार से, नर्क निर्मित हो जाता है।

अथवा तुम एक प्रेमी और सहभागी बन सकते हो,

तब यह पूर्ण अस्तित्व तुम्हारा ही घर है, तुम यहां अजनबी नहीं हो। तुम अपने घर ही में हो। वहां कोई संघर्ष है ही नहीं।

तुम पूरी तरह नदी की धारा के साथ बहते हो।

तब तुम परमानंद में रहोगे

तब प्रत्येक क्षण अति सुन्दर और आनंददायक होगा,

एक खिलावट होगी उसमें।

तुम्हारे अतिरिक्त, नर्क कहीं और नहीं है,

और न तुम्हारे सिवा कहीं कोई स्वर्ग है।

यह तुम्हारे व्यवहार पर निर्भर करता है,

कि तुम इस पूरे अस्तित्व को किस दृष्टि से देखते हो।

धर्म एक प्रेमी का मार्ग है:

और विज्ञान एक योद्धा का मार्ग है।

विज्ञान, कामना का मार्ग है, जैसे मानो तुम्हें यहां जीतना है,

प्रकृति पर विजय प्राप्त करनी है, प्रकृति के रहस्यों को खोलना है,

जैसे मानो तुम यहां अस्तित्व पर अपनी कामनापूर्ति के लिए

दबाव डालकर उसे अपने अधिकार में लेना चाहते हो।

यह न केवल मूर्खता है, बल्कि यह व्यर्थ भी है।

मूर्खता इसलिए क्योंकि वह तुम्हारे चारों ओर एक नर्क निर्मित करेगी।

और व्यर्थ इसलिए क्योंकि अंत में तुम कम से कम जीवंत, और अधिक से अधिक मृत बनते जाओगे,

और तुम आनंदित होने की सभी सम्भावनाएं खो दोगे।

और अंत में तुम्हें वापस लौटना ही होगा,

क्योंकि एक बार तुम कामना के पथ पर आगे तो बढ़ सकते हो,

लेकिन उसके द्वारा तुम्हें केवल निराशा और अवसाद ही मिलेगा

तुम अधिक से अधिक हारते जाओगे, तुम्हें अधिक से अधिक अपने शक्तिहीन होने का अनुभव होगा,

और अपने चारों ओर तुम अधिक से अधिक शत्रुता का अनुभव करोगे।

तुम्हें प्रतिरोधों के कारण अनिच्छा से वापस लौटना ही होगा।

अंतिम रूप से कोई भी व्यक्ति संघर्षमय व्यवहार के कारण, चैन से नहीं रह सकता,

क्योंकि संघर्षमय व्यवहार के साथ विश्राम मिलना सम्भव ही नहीं है।

तुम विश्राममय हो ही नहीं सकते।

धर्म का मार्ग, प्रेम का मार्ग है।

प्रारम्भ ही से तुम किसी से भी संघर्ष नहीं कर रहे हो।

पूर्ण अस्तित्व तुम्हारे लिए है, और तुम्हारा भी अस्तित्व पूर्ण के लिए है। और वहां दोनों के मध्य एक आंतरिक लयबद्धता है।

यहां किसी भी दूसरे व्यक्ति को जीतना नहीं है। यह असम्भव है।

क्योंकि एक भाग, दूसरे भाग को कैसे जीत सकता है?

और एक भाग, कैसे अखण्ड को जीत सकता है?

यह सभी व्यर्थ के विचार हैं

जो तुम्हारे लिए कुछ और नहीं, केवल भयंकर स्वप्न ही निर्मित कर सकते

जरा इस पूरी स्थिति की ओर देखो तो.. .तुम उस अखण्ड से ही जन्मते हो और उसी में विसर्जित हो जाते हो,

और इसके मध्य ही प्रत्येक क्षण तुम उसके एक भाग ही होते हो।

तुम उसी में सांस लेते हो और उसी में जीते हो,

और वह तुम्हारे द्वारा ही सांस लेता है, और तुम्हारे द्वारा ही जीता है।

उसका जीवन और तुम्हारा जीवन दो चीजें नहीं हैं-और तुम सागर में ठीक लहरों के समान हो।

एक बार तुम इसे समझ जाओ, तो ध्यान करना सम्भव हो जाए।

एक बार तुम इसे समझ जाओ, तो तुम विश्रामपूर्ण हो जाओ।

तुमने अपनी सुरक्षा के लिए अपने चारों ओर जो एक कवच निर्मित कर रखा है, तुम उसको फेंक दो।

अब तुम भयभीत नहीं हो।

जब भय मिट जाता है, तो प्रेम उत्पन्न होता है

प्रेम की इसी दशा में शून्यता घटती है।

अथवा यदि तुम शून्यता को घटने की अनुमति दो

तो उसमें प्रेम की खिलावट होगी।

प्रेम है–शून्यता का एक पुष्प, परिपूर्ण शून्यता–

शून्यता एक स्थिति है

वह दोनों तरह से कार्य कर सकती है।

इसलिए यहां दो तरह के धर्म हैं।

एक वह जो तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे चारों ओर एक शून्यता निर्मित करते हैं, जिससे खिलावट सम्भव हो सके:

तुमने एक स्थिति निर्मित कर दी,

अब स्वत: अपने आप ही पुष्प खिल उठता है।

कोई भी अवरोध न पाकर बीज अचानक पुष्प बन खिल उठता है।

तुम्हारे अस्तित्व में एक छलांग लगती है, एक विस्फोट होता है।

बुद्धिज्म और जेन इसी पथ का अनुसरण करते हैं–

वे तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे चारों ओर एक शून्यता सृजित करते हैं।

यहां एक दूसरी तरह का मार्ग भी है, दूसरी तरह का धर्म जो तुम्हारे अन्दर प्रेम और भक्ति उत्पन्न करता है

मीरा और चैतन्य प्रेम करते हैं, और वे इस सम्पूर्ण सृष्टि को–

इतना गहरा प्रेम करते हैं, कि वे अपने प्रेमी को हर कहीं पाते हैं,

बूटे-बूटे और प्रत्येक पत्थर पर उन्हें अपने प्रेमी के ही हस्ताक्षर दिखाई देते हैं। वह उन्हें प्रत्येक स्थान, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति में दिखाई देता

वे नाचते हैं, क्योंकि वहां सिवाय उत्सव आनंद मनाने के और कुछ है ही नहीं।

और हर चीज पहले ही से तैयार है–

केवल तुम्हारे हिस्से में समारोह प्रारम्भ करना ही है।

अन्य किसी चीज की कोई कमी ही नहीं है।

एक भक्त और प्रेमी पूर्ण रूप से उत्सव, आनंद ही मनाता है।

और प्रेम के इसी आनंद समारोह में

अहंकार विसर्जित हो जाता है और शून्यता उसका अनुसरण करती है।

या तो तुम बुद्ध, तिलोपा, सीको और अन्य बुद्धों की तरह शून्यता सृजित करो, अथवा तुम मीरा, चैतन्य और जीसस की भांति प्रेम उत्पन्न करो।

एक को उत्पन्न करो और दूसरा उसका अनुसरण करता है,

क्योंकि वे अलग-अलग नहीं रह सकते,

उनका कोई पृथक अस्तित्व है ही नहीं।

प्रेम, शून्यता का ही एक चेहरा है,

शून्यता और कुछ भी नहीं, बल्कि प्रेम का ही दूसरा पहलू है।

वे दोनों साथ-साथ आते हैं।

यदि तुम एक को लाते हो, एक को आमंत्रित करते हो,

दूसरा छाया की भांति स्वत: पहले का अनुसरण करता है,

यह तुम्हीं पर निर्भर है।

यदि तुम ध्यान के मार्ग का अनुसरण करना चाहते हो, तो शून्य बनो।

फिर प्रेम की फिक्र ही मत करो–वह स्वयं अपने आप आएगा।

अथवा यदि तुम ध्यान करने को बहुत कठिन पाते हो, तब प्रेम करो, तब एक प्रेमी बनो

और ध्यान और शून्यता उसका अनुसरण करेंगे।

ऐसा इसलिए भी होना चाहिए क्योंकि यहां मनुष्य के दो तरह के चित्त हैं:

स्त्रैण चित्त और पुरुष चित्त।

स्त्रैण चित्त आसानी से प्रेम कर सकता है

लेकिन उसके लिए शून्य बनना कठिन है।

और जब मैं स्त्रैण चित्त या मन की बात कहता हूं

तो मेरा अर्थ स्त्रियों से ही नहीं है,

क्योंकि बहुत सी स्त्रियों के पास पुरुष चित्त होता है,

और बहुत से पुरुषों के पास स्त्रैण-चित्त होता है।

इसलिए वे समान मूल्य के नहीं होते।

जब मैं कहता हूं स्त्रैण चित्त, तो मेरा अर्थ स्त्री के शरीर से नहीं होता– तुम्हारे पास एक स्त्री का शरीर हो सकता है, लेकिन स्त्रैण चित्त नहीं, स्त्रैण मन वह मन होता है जो प्रेम को सरलता से अनुभव करता है, वही सब कुछ होता है उसके लिए।

स्त्रैण चित्त की मेरी यही परिभाषा है:

कोई भी, जो सरलता और स्वाभाविक रूप से प्रेम का अनुभव करता है, और जो बिना किसी प्रयास के प्रेम में बह सकता है।

पुरुष चित्त वह होता है, जिसमें किसी से प्रेम करना, एक प्रयास होता है वह प्रेम कर सकता है, लेकिन उसे प्रेम करना होता है।

प्रेम उसका पूरा अस्तित्व नहीं बन सकता–वह अनेक चीजों में से केवल एक वस्तु भर होता है, यहां तक कि अधिक महत्वपूर्ण भी नहीं होता।

वह अपने प्रेम का विज्ञान के लिए बलिदान कर सकता है।

वह अपने प्रेम का अपने देश के लिए बलिदान कर सकता है।

वह अपने प्रेम का किसी साधारण सम्बन्ध के लिए अपने व्यापार के लिए धन के लिए अथवा राजनीति के लिए बलिदान कर सकता है।

एक पुरुष चित्त के लिए प्रेम ऐसी कोई गहरी चीज नहीं होती,

वह उसके लिए वैसी प्रयासरहित नहीं होती, जैसी वह स्त्रैण चित्त के लिए होती है।

उसके लिए ध्यान करना सरल होता है,

वह सरलता से अन्दर से खाली और शून्य हो सकता है।

इसलिए यही मेरी परिभाषा है:

यदि तुम सरलता से खाली और शून्य हो सकते हो, तब वैसा ही करो। यदि तुम्हें यह कठिन लगता है, तो दुखी और निराश भी नहीं होना है, तो तुम हमेशा प्रेम को ही सरल पाओगे।

मुझे अभी तक ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिला,

जो दोनों को ही कठिन पाता हो।

इसलिए यहां प्रत्येक व्यक्ति के लिए आशा है।

यदि ध्यान कठिन है, तो प्रेम आसान होगा, उसे होना ही चाहिए।

यदि प्रेम सरल है, तो ध्यान करना कठिन होगा।

यदि प्रेम कठिन है, तो ध्यान आसान होगा।

इसलिए केवल इसका अनुभव तुम स्वयं कर सकते हो।

और इसका सम्बन्ध तुम्हारे शरीर के साथ नहीं है,

न इसका सम्बन्ध तुम्हारे शारीरिक ढांचे ओर तुम्हारे हारमोन्स के साथ है। नहीं, यह तुम्हारे आंतरिक अस्तित्व का एक गुण है।

एक बार तुम इसे खोज लो, तो चीजें बहुत-बहुत आसान हो जाती हैं क्योंकि तब तुम गलत रास्ते पर कोशिश नहीं करते हो।

तुम गलत मार्गों पर कई जन्मों तक प्रयास कर सकते हो,

लेकिन तुम्हें कोई भी चीज प्राप्त न होगी।

और यदि ठीक मार्ग पर प्रयास करते हो तुम,

तो पहला उठाया गया कदम ही अंतिम भी बन सकता है,

क्योंकि तुम पूर्ण रूप से, स्वाभाविक रूप से उसमें बहते हो,

प्रयास करने जैसी कुछ चीज होती ही नहीं,

तुम बिना किसी प्रयास के उसके साथ बहते हो।

जेन है पुरुष चित्त के लिए।

मैं शीघ्र ही सूफियों के बारे में चर्चा करते हुए इसे संतुलित कर दूंगा क्योंकि सूफियों का मार्ग स्त्रैण चित्त वालों के लिए है।

यह दो पराकाष्ठाएं हैं–जेन और सूफीइज्म।

सूफी लोग प्रेमी हैं, महान प्रेमी,

वास्तव में मनुष्य चेतना के पूरे इतिहास में,

सूफियों जैसे साहसी प्रेमी आज तक हुए ही नहीं,

क्योंकि वे ही अकेले ऐसे हैं

जिन्होंने परमात्मा को अपनी प्रेमिका के रूप में ही परिवर्तित कर लिया। परमात्मा स्त्री है, और वे उसके प्रेमी हैं।

मैं शीघ्र ही इसकी चर्चा कर इसे संतुलित बना दूंगा।

जेन का आग्रह शून्यता पर है,

यही कारण है कि बौद्ध धर्म में, परमात्मा की कोई धारणा ही नहीं है।

उसकी कोई जरूरत भी नहीं है।

पश्चिम के लोग इसे नहीं समझ सकते, कि कोई धर्म-परमात्मा की धारणा के बिना कैसे जीवित रह सकता है?

बौद्ध धर्म में किसी परमात्मा की कोई धारणा नहीं है,

वहां उसकी जरूरत भी नहीं है,

क्योंकि बौद्ध धर्म का आग्रह है, पूरी तरह से खाली या शून्य होने का

तब प्रत्येक चीज उसका अनुसरण करती है,

लेकिन कौन उसकी फिक्र करता है?

एक बार तुम अन्दर से खाली हो जाओ, तो चीजें स्वयं उसका अनुसरण करेंगी।

एक धर्म बिना परमात्मा के जीवित है। यह बहुत बड़ा चमत्कार है।

पश्चिम में जो लोग धर्म और धर्म के दार्शनिक पक्ष के बारे में लिखते हैं, हमेशा इसी उलझन में रहते हैं, कि धर्म को कैसे परिभाषित किया जाए? वे लोग हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाइयत को आसानी से–परिभाषित कर सकते हैं, लेकिन बौद्ध धर्म कठिनाई उत्पन्न करता है।

वे परमात्मा को सभी धर्मों का केंद्र बनाकर परिभाषित कर सकते हैं,

लेकिन तब बौद्ध धर्म एक समस्या बन जाता है।

वे प्रार्थना को धर्म के सारतत्व के रूप में परिभाषित कर सकते हैं,

लेकिन बौद्ध धर्म फिर समस्या खड़ी कर देता है,

क्योंकि वहां न कोई परमात्मा है, न कोई प्रार्थना है, न मंत्र है

और कुछ भी नहीं है, तुम्हें केवल अन्दर से खाली या शून्य होना है।

परमात्मा की धारणा तुम्हें शून्य होने की अनुमति नहीं देगी,

प्रार्थना एक बाधा बन जाएगी,

मंत्रपाठ भी तुम्हें अन्दर से शून्य न होने देगा।

पूर्ण रूप से खाली या शून्य हो जाने से प्रत्येक चीज घटती है।

शून्यता ही बौद्ध धर्म के रहस्य की कुंजी है।

तुम बस इस तरह से बने रहो, जैसे तुम हो ही नहीं।

इस शून्यता के बारे में मैं तुम्हें थोड़ा और स्पष्ट कर दूं

तभी तुम्हारे लिए इस जेन प्रसंग में प्रवेश कर पाना सम्भव होगा।

भौतिक विज्ञानी, पदार्थ का सारतत्व, उसका आधार,

तीन सौ वर्षों से जानने के लिए कार्य कर रहे हैं,

और वे जितनी गहराई में पहुंचे, वे उतनी ही अधिक उलझन में पड़ गए। क्योंकि गहराई में वे पदार्थ को कम से कम सूक्ष्म सारतत्व को,

जितना अधिक टटोलते हुए उसकी खोज करते गए

और जब वे वास्तव में पदार्थ के स्रोत से टकराए

तो वे पूरी तरह विश्वास ही न कर सके।

क्योंकि वह उनकी सभी धारणाओं के विरुद्ध था।

वह कोई पदार्थ किसी रूप में था ही नहीं, वह शुद्ध ऊर्जा थी।

ऊर्जा, अपदार्थगत होती है। उसका कोई भार नहीं होता है।

तुम उसे देख नहीं सकते। तुम केवल उसके प्रभाव को देख सकते हो। तुम कभी भी उसे प्रत्यक्ष नहीं देख सकते।

सन् 1930 में एडिंगटन ने कहा कि हम केवल पदार्थ की खोज कर रहे थे लेकिन अब पदार्थ के सम्बन्ध में सभी नई अंतर्दृष्टियों से

यह प्रदर्शित होता है कि वहां पदार्थ जैसा कुछ है ही नहीं,

वह अधिक से अधिक एक विचार जैसा,

और एक वस्तु जैसा कम से कम दिखाई देता है।

अकस्मात् तभी बुद्ध की अंतर्दृष्टि फिर से बहुत-बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि बुद्ध ने मनुष्य के पदार्थगत शरीर और उसकी सामग्री के बारे में ठीक ऐसा ही देखा था।

भौतिक विज्ञानी तो पदार्थ का वस्तुगत तरीके से उसका विश्लेषण करने का प्रयास कर रहे हैं

वे यह खोजने की कोशिश कर रहे हैं, कि उसके अन्दर आखिर है क्या? और खोज करने पर उन्होंने उसके अन्दर कुछ भी नहीं पाया।

परिपूर्ण शून्यता थी वहां।

और बुद्ध ने भी अपनी अंतर्यात्रा में यही खोजा था।

वह यह खोजने का प्रयास कर रहे थे कि आखिर अन्दर है क्या? मनुष्य की चेतना का सारतत्व क्या है?

लेकिन जितने वे गहरे उतरते गए उतने ही अधिक वे

अधिक से अधिक शून्यता में खोते गए।

और जब वे अचानक केंद्र पर पहुंचे

तो पाया–वहां कुछ भी नहीं है।

सब कुछ मिट गया था वहां। पूरा घर खाली या रिक्त था।

प्रत्येक चीज का अस्तित्व इसी शून्यता के चारों ओर था।

यह शून्यता ही तुम्हारी आत्मा है।

इसलिए बुद्ध को एक नया शब्द गढ़ना पड़ा, जो इससे पूर्व कभी भी न था। नए आविष्कार के बाद तुम्हें अपनी भाषा भी बदलनी पड़ती है। नए शब्द गढ़ने पड़ते हैं,

क्योंकि तुमने नए सत्यों को उद्‌घाटित किया है

और पुराने शब्दों में वह सार नहीं हो सकता।

बुद्ध को एक नया शब्द गढ़ना पड़ा।

भारत में लोग सदैव से आत्मा की सत्यता में विश्वास करते रहे हैं लेकिन बुद्ध ने खोज की कि वहां आत्मा जैसी चीज है ही नहीं। उन्हें एक नया शब्द गढ़ना पड़ा–'अनसा।'

'अनता' का अर्थ है–कोई आत्मा नहीं।

तुम्हारे अन्दर सबसे अधिक गहराई में केवल मात्र शून्यता है

एक अनात्मा की स्थिति। तुम हो ही नहीं वहां,

केवल तुम्हें लगता है कि तुम हो।

मैं तुम्हारे लिए इसे एक अलग तरह से भी स्पष्ट करना चाहता हूं

क्योंकि इसे समझना सबसे अधिक कठिन चीजों में से एक है।

यदि तुमने इसे बुद्धि से समझ भी लिया,

तो भी तुम्हारे लिए इस पर विश्वास करना लगभग असम्भव होगा।

तुम हो ही नहीं? ऐसा इसलिए मान लिया गया है, क्योंकि तुम्हारा होना प्रतीत होता है।

जिससे तुम हमेशा मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ सकते हो।

बुद्ध से यह बार-बार पूछा जाता था!

यदि आप हैं ही नहीं, तब फिर कौन उपदेश दे रहा है?

यदि आप हैं ही नहीं, तो फिर किसे भूख लगती है?

और कौन नगर में भिक्षाटन के लिए जाता है?

यदि आप हैं ही नहीं, तो फिर मेरे सामने कौन खड़ा है?

तभी चीन के सम्राट बू ने बोधिधर्म से पूछा:

यदि आप कहते हैं कि आप हैं ही नहीं, और यहां कुछ भी नहीं है,

और यदि आपके आंतरिक अस्तित्व का सार-तत्व शून्यता है,

तो फिर वह कौन सज्जन हैं, जो मेरे सामने खड़े मुझ से बात कर रहे हैं? बोधिधर्म ने अपने कंधे उचकाते हुए उत्तर दिया: 'मैं नहीं जानता।'

कोई भी नहीं जानता, और बुद्ध कहते हैं कि कोई जान भी नहीं सकता, क्योंकि यह कोई वस्तु या पदार्थ नहीं है जिसका तुम सामना कर सकते हो, यह वस्तुगत है ही नहीं, तुम्हारा इससे आमना-सामना हो ही नहीं सकता। इसे बुद्ध 'उपलब्धि' कहते हैं

जब तुम यह समझ जाते हो कि सबसे अधिक अन्दर की शून्यता को नहीं जाना जा सकता, यह न जानने योग्य है

तभी तुम बोध को उपलब्ध व्यक्ति हो जाते हो।

यह फिर भी कठिन है समझना, इसलिए मैं इसे फिर स्पष्ट करना चाहता हूं तुम एक फिल्म देखने जाते हो। वहां कोई चीज बहुत मनोरंजक होने जा रही है।

पर सामने का पर्दा अभी खाली है। तब प्रोजेक्टर काम करना शुरू करता है। पर्दा विलुप्त हो जाता है

क्योंकि प्रक्षेपित चित्र उसे पूरी तरह से ढक देते हैं।

और यह प्रक्षेपित तस्वीरें आखिर हैं क्या?

यह और कुछ भी नहीं, बल्कि प्रकाश और छाया का एक खेल है।

तुम देखते हो, कि कोई व्यक्ति पर्दे पर तुम्हारी ओर भाला फेंक रहा है

भाला तेजी से आगे बढ़ता है। लेकिन वास्तव में हो क्या रहा है?

उसका आगे की ओर बढ़ना केवल एक आकृति है,

ऐसा केवल दिखाई दे रहा है, यह वास्तव में हो नहीं रहा है।

ऐसा हो भी नहीं सकता। चलचित्र वास्तव में चलचित्र हैं ही नहीं,

क्योंकि उनमें कोई गति नहीं है, सभी चित्र थिर हैं।

लेकिन एक फरेब या चाल द्वारा आकृति सृजित की जाती है।

वह चाल यह है कि भाले के बहुत से स्थिर चित्र लिए जाते हैं,

पर्दे पर उसकी विभिन्न स्थितियों के चित्र इतनी अधिक तेजी से

दिखाए जाते हैं कि तुम दो चित्रों के मध्य का अंतराल नहीं देख पाते हो। और तुम्हें ऐसी अनुभूति होती है कि भाला आगे बढ़ रहा है।

मैं अपना हाथ ऊपर उठाता हूं। तुम मेरे हाथ की विभिन्न स्थितियों की सौ तस्वीरें खींचते हो, और तब उन्हें इतनी तेजी से पर्दे पर दिखलाते हो, कि आखें दो चित्रों के बीच का अंतराल नहीं पकड़ सकतीं।

तब तुम हाथ को ऊपर उठता हुआ देखोगे।

सौ स्थिर चित्र अथवा लाखों स्थिर चित्र प्रक्षेपित करते हुए ही गतिशीलता निर्मित की जाती है।

और यदि फिल्म त्रि-आयामी है, जिसमें लम्बाई-चौड़ाई के साथ गहराई भी

और कोई व्यक्ति एक भाला फेंक रहा है

तो तुम्हें उसके अपनी ओर आने का इतना अधिक निश्चय हो जाता है

कि तुम भाले से बचने के लिए दाएं या बाएं झुक सकते हो।

जब त्रि-आयामी चलचित्र पहली बार अस्तित्व में आए

तो उन्होंने लोगों को डरा दिया।

अपनी ओर दौड़ते हुए घोड़े को आते देख तुम डर गए

और उससे टकराने से बचने के लिए तुम दाएं या बाएं झुक गए।

वह गतिशीतला नकली है, ऐसा वहां हो नहीं रहा है,

यह केवल थिर चित्रों का तेजी से प्रदर्शित किया जाना है।

और इसका नकलीपन तब तक स्पष्ट नहीं होता,

जब तक तुम फिल्म को बहुत धीमी गति से प्रक्षेपित होता हुआ न देख लो।

एक भिन्न अर्थ में ठीक ऐसा ही जीवन में भी हो रहा है।

तुम्हारे मन के पर्दे पर विचार इतनी अधिक तेजी से प्रक्षेपित होते हैं, कि तुम दो विचारों के मध्य के अंतराल को नहीं देख सकते।

मन का स्कीन पूरी तरह विचारों से ढका हुआ है

अरि वे इतनी तेजी से भाग रहे हैं

कि तुम प्रत्येक विचार को अलग से नहीं देख सकते।

इसी स्थिति के बारे में तिलोपा कहता है,

विचार बादलों की भांति हैं, जिनका न कोई मूल है और न कोई घर।

एक विचार का दूसरे विचार से संबंधित नहीं है,

एक विचार एक वैयक्तिक इकाई है।

ठीक धूल के कणों की भांति, जो हैं अलग-अलग

लेकिन वे इतनी तेजी से हवा के साथ गतिशील होते हैं

कि तुम उनके बीच का अंतर नहीं देख सकते।

तुम्हें अनुभव होता है कि वे इकट्ठे हैं, उनके बीच एक निश्चित साहचर्य है। यह साहचर्य दिखाई देना एक झूठा या नकली विचार है

लेकिन इस साहचर्य के कारण अहंकार निर्मित होता है।

बुद्ध कहते हैं:

तेजी से चलते विचार एक भ्रम उत्पन्न करते हैं,

जैसे मानों उनका वहां कोई केंद्र है

जैसे मानो वे एक चीज से संबंधित हैं।

वे एक दूसरे से संबंधित हैं नहीं, वे बिना जड़ों के–बादलों की भांति हैं जब तुम ध्यान करते हो, तुम समझोगे कि प्रत्येक विचार

किसी दूसरे विचार से संबंधित न होकर, एक अलग वैयक्तिक विचार है। दो विचारों के मध्य तुम्हारे अस्तित्व की शून्यता है।

वे आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन उनके आने-जाने की गति इतनी अधिक तीव्र होती है। कि तुम उनके मध्य के अंतराल नहीं देख पाते

और अहंकार उत्पन्न हो जाता है।

और तब तुम्हें यह अनुभव होना शुरू हो जाता है

कि तुम्हारे अन्दर जैसे वहां कोई भी केंद्र में मौजूद है

जिससे प्रत्येक चीज, विचार और कार्य संबंधित हैं।

लेकिन बुद्ध कहते हैं–तुम्हारे अन्दर वहां कोई भी नहीं है।

जब तुम अपने अन्दर गहराई में उतरते हो, तब तुम इस सत्य को समझोगे: यह कोई दार्शनिक सिद्धांत नहीं है।

तर्कों के द्वारा बुद्ध को सरलता से हराया जा सकता था,

उन्हें इस देश से बाहर फेंक दिया गया होता

क्योंकि भारत के लोग बहुत बड़े तर्क शास्त्री और तार्किक थे।

पांच हजार वर्षों में इसके अतिरिक्त उन्होंने और कुछ किया ही नहीं था,
लेकिन तर्क, और तर्क के द्वारा तो बुद्ध को हराया जा सकता था।
क्योंकि पूरी चीज ही असंगत दिखाई देती है।
बुद्ध कह रहे थे कि वहां कार्य तो हो रहा है, पर उसको करने वाला कोई भी नहीं है,
वहां विचार तो हैं, पर वहां कोई भी विचारक नहीं है।
वहां भूख है, वहां तृप्ति है,
वहां बीमारी है, वहां स्वास्थ्य है
लेकिन वहां कोई ऐसा केंद्र नहीं है, जिसके वे सभी अधिकार में हों।
वे शून्याकाश में घूमने वाले केवल बादलों की भांति हैं
जिनका आपस में एक दूसरे से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।
बुद्ध को अनुभव के द्वारा कोई भी नहीं हरा सकता था
लेकिन तर्क के द्वारा उन्हें हराना बहुत सरल था।
बुद्ध बहुत शीघ्र यह जान गए कि तर्क के द्वारा उन्हें बहुत सरलता से
पराजित किया जा सकता है। इसलिए आखिर किया क्या जाए?

भारत में उन दिनों महान विद्वान् महान पंडित, महान तर्क शास्त्री और तर्क द्वारा सिर के बाल झाड़ देने वाले बहुत ही कुशल विद्वान मौजूद थे।

इसलिए बुद्ध ने घोषणा की:
मैं न कोई दार्शनिक हूं और न सिद्धांत शास्त्री हूं
और न आपको देने के लिए मेरे पास कोई सिद्धांत और उपदेश हैं।
जो कुछ मैं कह रहा हूं यह मेरे बुद्धिगत निष्कर्ष नहीं है,
यदि कोई भी व्यक्ति इन्हें समझना चाहता है
तो उसे मेरे निकट आकर कुछ समय रहना होगा,
और जो कुछ मैं कहूं उसे करना होगा।
और यदि वह ध्यान में मेरे साथ शांत होकर रहता है
तो एक वर्ष बाद मैं उससे तर्क करने को तैयार हूं पर इससे पहले नहीं।

और ऐसा ही हुआ। जैसी कि उनकी शर्त थी, उनके पास महान विद्वान आए। सारिपुत्त आया। वह बहुत प्रसिद्ध विद्वान था,

और उसके पास स्वयं अपने ही पांच सौ शिष्य थे,
वह अपने समय का महान विद्वान था,
वह सभी वेदों और उपनिषदों का ज्ञान जानता था
वह सदियों की प्रज्ञा और पांडित्य का जानकार था
और उसकी मेधा शक्ति भी बहुत तीक्षण थी।
सारिपुत्त आया और बुद्ध ने उससे कहा:
तुम आ गए हो, यह अच्छी बात है।
लेकिन एक वर्ष तक तुम्हें मौन रहना होगा,

क्योंकि मेरी तुम्हें कुछ भी सिखाने की कोई योजना नहीं है इसलिए वहां किसी तर्क की कोई सम्भावना ही नहीं है

मेरे पास अपने अस्तित्व में ही कुछ ऐसा है जिसमें,

मैं तुम्हें अपना सहभागी बनाना चाहता हूं

लेकिन मेरे पास न कोई सिद्धांत है और न कोई योजना,

इसलिए यदि तुम चाहो, तो यहां रह सकते हो।

तब दूसरा महान विद्वान मौलंकपुत आया

और बुद्ध ने उससे भी यही कहा:

तुम एक वर्ष तक मेरी बगल में, बिना कोई प्रश्न किए–

बस शांत बैठे रहो।

एक वर्ष तक तुम्हें अपने मन को उठाकर एक ओर रख देना होगा और विचारों के अंतराल में गहरे जाना होगा।

एक वर्ष, ठीक एक वर्ष बाद

तुम्हारे जो भी प्रश्न होंगे, मैं उनके उत्तर दूंगा।

वहां सारिपुत्त भी बैठा हुआ था। सुनकर वह हंसने लगा।

मौलंकपुत ने पूछा : "आखिर मामला क्या है? तुम क्यों हंस रहे हो?" सारिपुत ने कहा: इस व्यक्ति द्वारा तुम मूर्ख मत बनो,

यदि तुम्हारे पास कुछ भी पूछने को है, तो तुरंत पूछ लो,

क्योंकि एक वर्ष बाद तो तुम कुछ भी पूछ ही नहीं सकोगे। मेरे साथ भी यही हुआ।

एक वर्ष तक ध्यान में शांत बैठने से, सारे प्रश्न मिट गए।

एक वर्ष तक शांत बैठकर ध्यान करते हुए

वह तर्कयुक्त मन ही बिदा हो गया,

और वह तर्क करने वाला ही न बचा।

एक वर्ष तक, इस व्यक्ति के निकट बैठने से कोई भी शून्य बन जाता है,

और तब यह महाशय हंसते हैं, और तब यह अपना खेल खेलते हुए–पूछते है अब तुम प्रश्न करो, तुम्हें क्या पूछना है?

कहां चले गए तुम्हारे सारे सिद्धांत, विश्वास और तर्क?

और अन्दर कुछ भी नहीं उठता।

इसलिए मौलकपुत्त यदि तुम्हें कुछ पूछना है– तो ठीक अभी, इसी क्षण पूछ लो, अन्यथा कभी नहीं पूछ पाओगे।

बुद्ध ने मौलंकपुत से कहा: मैं अपना वायदा पूरा करूंगा।

यदि तुम यहां एक वर्ष बने रहे, फिर तुम्हारे जो भी प्रश्न होंगे,

मैं उनका उत्तर दूंगा।

मौलंकपुत्त वहीं रुक गया। एक वर्ष बीत गया।

एक वर्ष गुजरने की बात वह पूरी तरह भूल ही गया,

लेकिन वर्ष पूरा होने का दिन, बुद्ध को भली भांति याद था,

ठीक एक वर्ष बाद उस दिन उन्होंने मौलंकपुत्त से कहा:

मौलंकपुत अब तुम खड़े हो जाओ। जो तुम पूछना चाहते हो–पूछो

मौलंकपुत वहां मौन खड़ा रहा। उसके दोनों नेत्र मुंदे हुए थे।

और तब उसने कहा

पूछने को वहां कुछ है ही नहीं, और न वहां कोई पूछने वाला ही बचा है मैं तो पूरी तरह मिट गया हूं।

बुद्धिज्म एक अनुभव है

और जेन है बुद्ध की सभी सिखावनों का शुद्धतम

और प्रामाणिक सार तत्व।

और वह केंद्र जिसके चारों ओर पूरा अनुभव गतिशील है,

वह है–शून्यता।

कैसे बना जाए खाली अथवा शून्य?

इसके लिए ही हैं सारे ध्यान प्रयोग।

कैसे इतना शांत और मौन बना जाए

जिससे तुम स्वयं अपने आप को न देख सको–

क्योंकि वह भी एक अवरोध है।

यह अनुभव करना–मैं हूं यह भी बाधा है–इसे भी चले जाना है।

एक को पूरी तरह महत्वहीन बन जाना है, पूरी तरह मिट जाना है।

वह कोरा कागज जैसा बन जाता है,

वह गर्मियों के आकाश जैसा हो जाता है,

जिसमें कहीं कोई बादल नहीं होते, केवल गहराई होती है

अनंत नीलिमा का ऐसा विस्तार होता है, जिसका न कहीं प्रारम्भ और न कहीं अंत होता है।

इसी को बुद्ध 'अनत्ता' कहकर पुकारते हैं,

अनात्मा और अनस्तित्व का सबसे अधिक आंतरिक केंद्र।

बुद्ध कहते हैं– तुम चलो, लेकिन वहां कोई चलने वाला न हो,

तुम भोजन करो, लेकिन वहां कोई भोजन करने वाला न हो,

तुम जन्मे हो, लेकिन वहां ऐसा कोई भी नहीं है, जिसका जन्म हुआ हो। तुम बीमार पड़ोगे, और तुम वृद्ध भी होगे

लेकिन वहां ऐसा कोई भी नहीं है, जो रुग्ण होता है, जो वृद्ध होता है। और तुम मर जाओगे, लेकिन वहां ऐसा कोई भी नहीं है जो मरता है।

और यही है वह शाश्वत जीवन।

जब तुम्हारा जन्म ही नहीं हुआ, फिर तुम कैसे मर सकते हो?

जब तुम वहां हो ही नहीं, तो कैसे तुम बीमार या स्वस्थ हो सकते हो? चीजें घटती हैं, और यदि तुम उनके गहरे साक्षी बन जाओ,

तो धीमे-धीमे तुम जानोगे कि वे स्वत-अपने आप ही घटती हैं।

तुम्हारे साथ उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

वे किसी भी तरह से तुमसे संबंधित होकर नहीं घट रही हैं।

सभी से असंबंधित गृहविहीन और आधार रहित हो जाना–यही है पूर्ण बुद्धत्व।

यह जानते हुए कि सभी चीजें सपनों की तरह घटती हैं

कोई भी जो इस तरह अथवा उस तरह फिक्र नहीं करता,

कोई भी, जो न तो प्रसन्न होता है और न दुखी, और जो पूरी तरह से होता ही नहीं।

बुद्ध कहते है' तुम कभी भी प्रसन्न हो ही नहीं सकते, क्योंकि

तुम्हारा बहुत अधिक जोर इसी बात पर पै कि तुम हो,

और इसी में तुम्हारी अप्रसन्नता छिप जाती है।

तुम कभी भी मुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि तुम्हीं बंधन हो।

मुक्ति तुम्हारे लिए नहीं है, तुम्हें अपने से ही मुक्त हीना है।

यह सबसे अधिक गहनतम केंद्र है, जिसे कभी भी स्पर्श तक नहीं किया गया।

महावीर कहते हैं तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे।

बुद्ध कहते हैं तुम ही एक मात्र बाधा हो।

महावीर कहते हैं तुम मोक्ष में, चेतना की सर्वोच्च स्थिति में रहोगे–परम आनंदित, शाश्वत रूप से आनंदपूर्ण।

बुद्ध कहते हैं जब तक, 'तुम' नहीं मरते, तुम इस स्थिति को कभी–उपलब्ध नहीं हो सकते।

तुम ही एकमात्र अवरोध हो,

तुम्हारा होना ही एकमात्र बाधा है, केवल वही रुकावट है।

जब तुम नहीं होते हो, वही है 'वह' स्थिति।

वह स्थिति तुम्हारी नहीं है।

तुम दावा नहीं कर सकते, क्योंकि वास्तव में तुम हो।

उस स्थिति को होने की तुम अनुमति नहीं देते।

वह यहीं, इस क्षण भी, पहले से तुम्हारे ही अन्दर है,

लेकिन तुम उसे कार्य करने की अनुमति नहीं देते।

तुम उसे नियंत्रित और व्यवस्थित करने की कोशिश करते हो।

अहंकार ही वह सबसे बड़ा, व्यवस्थापक और नियंत्रण कर्त्ता है।

और सभी बुद्धों का पूरा प्रयास यही है

कि इस नियंत्रण को कैसे गिराया जाए?

एक बार यह नियंत्रण हट जाए तो नियंत्रण करने वाला भी मिट जाता है।

तुम्हारे साथ मैं इन बहुत से ध्यान प्रयोगों के द्वारा

यही करने का प्रयास कर रहा हूं।

प्रयास यही है कि कैसे इस नियंत्रण को हटाया जाए

कैसे उस बहुत बड़े नियंत्रणकर्त्ता और व्यवस्थापक को मिटाया जाए।

तुम सूफी दरवेश नृत्य में गोल-गोल घूमते हो,

शुरू में तुम वहां होते हो।

शीघ्र ही तुम्हें चक्कर आने लगते हैं, और वमन होने जैसा लगने लगता है,

लेकिन यह बीमारी शारीरिक नहीं है,

बहुत गहरे में यह आध्यात्मिक है।

जब मन का नियंत्रण गिरने का समय आता है,

उसी क्षण तुम्हारा जी घबड़ाने लगता है।

जब यह क्षण निकट होता है, तुम्हें वमन करने जैसा अनुभव होने लगता है। यह वमन है संकेत-मन के नियंत्रण को खो देने का।

तुम्हें चक्कर आने लगते हैं, तुम्हें अनुभव होता है, जैसे तुम गिर पड़ोगे। यह केवल शरीरगत चीजें नहीं हैं।

अन्दर गहरे में अहंकार यह अनुभव कर रहा है, जैसे मानो,

उसे रास्ते से अलग फेंका जा रहा हो। चक्कर अहंकार को आ रहे हैं। वह यह अनुभव कर रहा है कि यदि यह गोल-गोल घूमना

यदि थोड़ी देर तक और जारी रहता है, तो वह वहां खड़े रहने में समर्थ न हो सकेगा।

तुम्हें उल्टी करने जैसा अनुभव होने लगता है।

वास्तव में यह उल्टी केवल शारीरिक नहीं है,

इसका केवल एक भाग शारीरिक है।

जो गहरा भाग है वह वमन द्वारा अहंकार को बाहर फेंक रहा है।

यदि तुम्हें परेशानी का अनुभव बना ही रहता है,

तो वहां शरीरगत उल्टी भी होगी,

लेकिन इस बारे में यदि तुमने फिक्र नहीं की

तो शीघ्र शरीरगत उल्टी का भाव विसर्जित हो जाएगा,

और तब असली उल्टी घटित होगी:

एक दिन अचानक, अहंकार का वमन हो जाता है।

अकस्मात् तुम्हें अन्दर की एक कुरूप चीज से छुटकारा मिल जाता है, अचानक तुम्हारी बीमारी बाहर फेंक दी जाती है,

और तुम अहंकार से मुक्त हो जाते हो।

ऐसा बिना आशा के अचानक घटता है।

जब ऐसा पहली बार घटता है, तुम उसका विश्वास ही नहीं कर पाते, तुम्हें यह विश्वास हो ही नहीं पाता, कि तुम बिना अहंकार के हो। तुम्हारे अन्दर अब कोई भी नहीं है, और तुम हो,

और तुम वहां बिना किसी की उपस्थिति के भी

इतने अधिक पूर्ण, इतने अधिक समृद्ध और अत्यधिक आनंदित होते हो।

अहंकार को, केंद्र से बाहर फेंक देना है,

क्योंकि यह तुम्हारे मन में जन्म-जन्मों से अपनी जड़ें गहरी जमा चुका है यह तुम्हारे पूरे अस्तित्व पर अवैध अधिकार किए बैठा है?

इसने तुम्हारी शून्यता को अचेतन की पृष्ठभूमि में धकेल दिया है

और सिंहासन पर अवैध कब्जा कर लिया है।

अब अहंकार सम्राट बन बैठा है

और प्रत्येक चीज को नियंत्रित किए चले जाता है।

यह बोध कथा, यह छोटा-सा प्रसंग, तुम्हें बहुत सी चीजें बतलाएगा, कि कैसे अहंकार को केंद्र से दूर फेंका जा सकता है।

सद्गुरु सीको ने अपने एक शिष्य भिक्षु से कहा:

क्या तुम शून्यता को झपट कर पकड़ सकते हो?

भिक्षु ने कहा: मैं प्रयास करूंगा।

और उसने हवा में अपनी हथेलियों को प्यालानुमा बनाकर

उसे मुट्ठियों में पकड़ने का प्रयास किया।

सद्गुरु एक चाल खेल रहा है।

उसने पूछा-क्या तुम शून्यता को झपटकर पकड़ सकते हो?

इस प्रश्न में ही एक चाल है।

और यदि शिष्य जरा भी समझदार होता,

तो उसने कोई प्रयास किया ही न होता।

शून्यता को पकड़ने का प्रयास ही एक मूर्खता है।

तुम किसी भी वस्तु को पकड़ सकते हो,

लेकिन तुम 'कुछ नहीं' को नहीं पकड़ सकते।

तुम 'कुछ नहीं' को पकड़ोगे कैसे?

वह शिष्य अभी भी अनुभव करता है कि जैसे शून्यता कोई वस्तु है: वह अभी भी यह अनुभव करता है कि शून्यता, शून्य नहीं है–वह एक नाम और लेबिल है किसी वस्तु का, जिसे पकड़ा जा सकता है।

यदि उसके पास थोड़ी सी भी समझ होती, बहुत थोड़ी सी भी, तो शून्यता को पकड़ने की अपेक्षा उसने कुछ और किया होता।

यह उसकी परीक्षा थी।

वहां ऐसी भी कहानियां है, जहां सद्गुरु शिष्य से पूछता है: क्या तुम शून्यता को पकड़ सकते हो?

और शिष्य सद्गुरु की नाक पकड़ लेता है

और उसे झटके से अपनी ओर खींचता है–

ऐसा करना पूरी तरह ठीक हुआ होता।

क्योंकि प्रश्न ही असंगत या मूर्खतापूर्ण है।

तुम चाहे जितना भी प्रयास करो

बिस्कूल शुरू से ही वह असफल होने जा रहा है।

इसमें कुछ भी सहायक न होगा।

यह ही जेन कुआन है।

एक जेन-सद्गुरु तुम्हें एक असंगत समस्या देता है,

जिसे हल किया ही नहीं जा सकता।

उसका कोई उत्तर होता ही नहीं।

मैंने कहीं अमेरिका की एक खिलौनों की दुकान के बारे में सुना है।

वहां एक पिता अपने बच्चे के लिए एक पहेली वाला खिलौना खरीद रहा था। उसने उसे कई तरह से सैट करने की कोशिश की, वह कोशिश पर कोशिश करता रहा,

लेकिन हमेशा कुछ न कुछ गलत हो जाता था।

वह पहेली हल ही नहीं हो रही थी।

इसलिए उसने दुकान के मैनेजर से पूछा:

यदि मैं ही इस खिलौने की पहेली का सिर और पूंछ न पा सका

तो क्या आपका ख्याल है कि एक छोटा बच्चा इसे हल करने में समर्थ हो सकेगा?

मैनेजर ने कहा: इसे कोई भी सैट नहीं कर सकता।

यह खिलौना बच्चे को आधुनिक जीवन का स्वाद देने के लिए ही बनाया गया है।

यह हल करने के लिए है ही नहीं, इसे कोई भी सैट या फिक्स नहीं कर सकता,

उसके भाग, अलग-अलग सभी कठिनाई में डालने के लिए ही बनाए गए

है।

यह केवल आधुनिक जीवन का स्वाद देने के लिए था।

तुम जो कुछ भी करो, उससे कुछ भी सहायता नहीं मिलती,

अंत में तुम्हें निराश ही होना पड़ेगा।

यह करो अथवा वह, वहां इसके लाखों विकल्प हैं,

लेकिन सभी नकली हैं, क्योंकि वे शुरू से ही असफलता देते हैं।

वह पहेली कोई पहेली थी ही नहीं, बल्कि एक असंगत चीज थी।

पहेली तो वह होती है, जिसे बुद्धि से हल किया जा सके।

और असंगत या मूर्खतापूर्ण चीज वह होती है, जिसकी हल होने की प्रकृति ही न हो,

जिसको हल किया ही नहीं जा सकता।

एक कुआन एक असंगत पहेली ही होती है।

सद्गुरु कहता है क्या तुम शून्यता को पकड़ सकते हो?

अब बिकुल प्रारम्भ ही से, वह किसी भी समाधान से उसे रोकता है।

प्रश्न के उन शब्दों में ही, उसने बहुत बड़ी असंगतता सृजित कर दी है। तुम 'कुछ नहीं' को कैसे पकड़ सकते हो?

तुम निश्चित रूप से किसी वस्तु को तो पकड़ सकते हो।

लेकिन 'कुछ नहीं' को? शून्यता को?

बिकुल प्रारम्भ ही से तुम्हारे सभी प्रयासों को बरबाद होना ही है।

और यही है वह पूरी घटना:

सद्गुरु शिष्य को सचेत होने में सहायता करने का प्रयास कर रहा है,

लेकिन अहंकार उस समस्या को तुरंत चुनौती के रूप में ले लेता है,

और उसे हल करने का प्रयास करना शुरू कर देता है।

यही कारण है कि बहुत से लोग, वर्ग पहेली, अथवा 'इसे' और 'उसे' हल करने की कोशिश करते हैं।

उन्हें अखबारों में देखते ही, उनके अहंकार को चुनौती मिलती है,

उन्हें उसे हल करना है, अन्यथा वही बात उनके दिमाग में घूमती रहती है। वे इतने अधिक बुद्धिमान हैं, यह पहेली, एक पहेली कैसे बनी रह सकती

उन्हें उसे हल करना ही है, वही उनके मन में निरंतर घूमता रहता है।

लाखों लोग, इन मूर्खतापूर्ण चीजों को हल करने के लिए लाखों घंटों का समय बरबाद करते हैं

क्योंकि अहंकार उसे चुनौती के रूप में लेता है।

जब सद्गुरु ने कहा: क्या तुम शून्यता को पकड़ सकते हो?

वह उसके अहंकार को उत्तेजित कर रहा है,

और मनुष्य के जीवन में अहंकार सबसे अधिक छूता भरी चीज है।

तुम उसे किसी भी चीज से उत्तेजित कर सकते हों–किसी भी चीज से। समाचार-पत्र में यह विज्ञापन देखकर,

क्या आपके पास दो कारों को पार्क करने का गैरेज है, अथवा एक ही कार का गैरेज?

अहंकार तुरंत ही परेशान हो उठता है,

क्योंकि दूसरे लोगों के पास दो कारों को पार्क करने वाला गैरेज है,

और तुम्हारे पास केवल एक का। तुम्हारा जीवन व्यर्थ बर्बाद हो गया।

तुम कुछ नहीं लेकर जी रहे हो। तेजी से भागो। धन उधार लो।

करो, कुछ भी करो। ऐसा करने के रास्ते में यदि अन्दर अल्सर या घाव भी हो जाए फिर भी ठीक है।

कैंसर होना भी बरदाश्त किया जा सकता है,

लेकिन कोई भी कार का एक गैरेज बरदाश्त नहीं कर सकता।

भले ही आत्महत्या करो, लेकिन तुम्हें दो कारों वाला गैरेज चाहिए ही। अहंकार सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण चीज है,

और पूरा बाजार, उसके सेल्समैन और विज्ञापन कर्त्ता

तुम्हारे अहंकार पर ही निर्भर हैं।

वे तुम्हारे अहंकार को उत्तेजित कर तुम्हारा शोषण करते हैं।

और तब तक उन्हें रोक पाना कठिन है, जब तक तुम अपना अहंकार न गिरा दो।

वे लोग ऐसा ही किए चले जाएंगे।

एक बड़ी कार अहंकार की रक्षा का प्रतीक बन जाती है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक बार अमेरिका गया।

उसने अपने शहर में कभी भी फिएट कार से बड़ी कार नहीं देखी थी।

जब उसने इतनी बड़ी-बड़ी कारें देखीं, तो वह बहुत उलझन में पड़ गया: उन्हें क्या कह कर पुकारा जाए? क्योंकि वे कारें नहीं थीं,

ओर वे बसें भी नहीं थीं : और इतनी बड़ी कार में केवल व्यक्ति

एक कुत्ते के साथ बैठा हुआ था। आखिर मामला क्या है?

उसने बड़े-बड़े मकान देखे-आखिर उन्हें क्या कहकर उनका उल्लेख किया जाए?

उसके कस्बे में तो दोमंजिले मकान को एक अटारी या महल कहा जाता है। और तब उसने सौ मंजिला बिल्डिंग देखी। उसका मन भयभीत हो उठा। तुम उसे घर नहीं कह सकते, तुम उसे महल भी नहीं कह सकते–

उसके लिए सामान्यत: किसी शब्द का अस्तित्व ही नहीं है।

और तब उसने नियाग्रा प्रपात देखा।

उसने अपनी आखें बंद कर लीं और मन ही मन कहा:

ऐसा लगता है–मैं कोई सपना देख रहा हूं।

उसने अभी तक छोटे-छोटे झरने देखे थे। उसके कस्बे में भी एक छोटा सा झरना था,

लेकिन वह केवल बरसात के दिनों में ही झरता था, आखिर यह है क्या? और वह इतना अधिक परेशान हो उठा, कि उसके लिए असम्भव हो गया, कि वह इतने अधिक विशाल और भयंकर रूप से बड़ी चीजों की प्रशंसा कर सके

और वह अपने गाइड से कुछ भी कह पाने में समर्थ न हो पा रहा था,

इसलिए उसे अपराध बोध होने लगा–उसे प्रशंसा में कुछ तो कहना ही चाहिए।

तब वे लोग एक छोटी सी नदी पार करके आगे बड़े

इसलिए मुल्ला नसरुद्दीन ने विचार किया, यही कहने का ठीक अवसर है। और वह बोला–इसे देखकर ऐसा लगता है कि किसी कार के रेडिएटर से पानी लीक कर रहा है।

चीजें, बड़ी और अधिक बड़ी, और उससे भी बड़ी होती चली जाती हैं– केवल तुम्हारे अहंकार के ही कारण। उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। उन लोगों के लिए उनके होने की कोई अनिवार्यता नहीं है।

इस मूर्ख अहंकार के कारण ही जीवन अधिक से अधिक जटिल होता जाता है।

और एक बार वह यह चुनौती स्वीकार कर लेता है,

बिना यह समझे हुए कि वह सम्भव या असम्भव है, तर्कपूर्ण अथवा अतर्कपूर्ण है,

वह हमेशा उसे लेने को पहले ही से तैयार रहता है.।

सद्गुरु सीको ने कहा:

क्या तुम शून्यता को झपटकर पकड़ सकते हो?

भिक्षु ने उत्तर दिया–मैं प्रयास करूंगा।

यह उत्तर अहंकार का है–मैं प्रयास करूंगा।

वह सभी तरह की चुनौतियां स्वीकार करता है,

और एक कुआन, सबसे बड़ी चुनौती है।

वह इस तरह की बनाई ही गई है, कि तुम उसे हल नहीं कर सकते।

उसे हल करने के प्रयास में, तुम्हें इसके प्रति सचेत रहना होगा,

कि तुम्हारा उसे हल करने का अत्यधिक प्रयास ही मूर्खतापूर्ण है।

उसे हल करने के प्रयास में तुम्हें सचेत होना होगा

कि तुमने जो चुनौती स्वीकार की थी, वह गलत थी

तुम्हारे अन्दर वह एक, जो यह कहता है–मैं कोशिश करूंगा-मैं उसे पूरा करूंगा, वह शक्तिहीन है।

एक शिष्य को एक कुआन उसे उसकी शक्तिहीनता का अनुभव–करने के लिए ही दी जाती है–

तुम उसे हल नहीं कर सकते–वह असहायता का अनुभव कराने के लिए ही दी जाती है।

क्योंकि अहंकार केवल असहाय स्थिति में ही विकसित हो सकता है,

अन्यथा नहीं।

अहंकार केवल तभी मिट सकता है, जब वह पूरी तरह असफल हो जाए जब वहां सफलता की जरा सी भी सम्भावना उसके लिए न रह जाए– केवल तभी वह मिट सकता है, अन्यथा वह आशा किए चले जाता है,

कि वह कुछ और उपाय करेगा, अन्य कुछ और करके देखेगा–

और वह इस, अथवा उस विकल्प को भी आजमा कर देखेगा।

शून्यता को पकड़ने के लिए वहां कोई न कोई सम्भावना जरूर होनी ही चाहिए मैं प्रयास करूंगा।

यह कहने से पूर्व-मैं प्रयास करूंगा, हमेशा निरीक्षण करने की बात का स्मरण रहे।

अहंकार को आने की अनुमति ही मत दो।

केवल निरीक्षण करो। बुद्धिमान बनो, अहंकारी नहीं।

बुद्धिमानी अच्छी चीज है। अहंकारी बनकर तुम वास्तव में बुद्धि के

कार्य करने में बाधा खड़ी करते हो।

यह इतनी सरल सी चीज थी,

शिष्य को चाहिए था कि उसी वक्त कहीं गुरु को ठोकर मारकर

उससे कहता-आप मुझसे क्या व्यर्थ की बात करने को कह रहे हैं?

लेकिन लोग सभी तरह की व्यर्थ की चीजों को हल करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि अहंकार कहता है: उस बारे में कुछ रास्ता जरूर होना ही चाहिए। अहंकार कहता है : यदि समस्या है, तो उसका समाधान भी होना चाहिए। आखिर जरूरत क्या है? तुम एक समस्या सृजित कर सकते हो,

लेकिन प्रकृति में उसका समाधान भी हो, इसकी आवश्यकता क्या है।

और जैसा कि मैंने देखा है, दर्शनशास्त्र की निन्यानवे प्रतिशत समस्याएं ही मूर्खतापूर्ण हैं।

उनका समाधान किया ही नहीं जा सकता,

लेकिन महान मस्तिष्क उन्हें हल करने की उलझन में फंसे हैं।

उदाहरण के लिए जैसे एक सामान्य समस्या है: इस संसार को किसने बनाया?

यह समस्या ही मूर्खतापूर्ण है, लेकिन महान धर्मशास्त्री, विद्वान और धार्मिक लोग इसी के लिए अपना पूरा जीवन व्यर्थ बरबाद कर देते हैं।

हजारों वर्षों से बहुत से लोग इसी सम्बन्ध में चिंतित रहे हैं,

कि यह संसार किसने बनाया?

और इसे हल नहीं किया जा सकता, यह एक 'कुआन' है।

यह प्रश्न ही व्यर्थ है, क्योंकि पूरे प्रश्न की प्रकृति ही कुछ इस तरह की है, कि तुम चाहे कुछ भी करो,

वह फिर उछल कर अपने पैरों पर खड़ा हो जाएगा।

उसका अंत नहीं किया जा सकता।

उदाहरण के लिए यदि तुम कहते हो:

'अ' ने यह संसार बनाया

तो तुरंत ही यह प्रश्न उठता है:

'अ' को किसने बनाया?

तुम कहते हो–'ब' ने बनाया 'अ' को।

तब फिर प्रश्न उठ खड़ा होता है:

'ब' को किसने बनाया? और यह सिलसिला चलता चला जाता है,

और अंत में तुम इस पूरी चीज से थक जाते हो,

तब तुम्हें यह कहना ही पड़ेगा:

इस 'ज्ञ' को किसी ने भी नहीं बनाया।

फिर 'ज्ञ' तक जाते ही क्यों हो? पहले ही क्यों नहीं कहते

कि इस संसार को किसी ने भी नहीं बनाया। 'अ' से 'ज्ञ' तक जाने से लाभ क्या?

जब तुम्हें यह मानना ही है कि परमात्मा को किसी ने नहीं बनाया,

तो यह क्यों कहते हो कि परमात्मा ने संसार को बनाया?

यदि बिना सृजित किए परमात्मा हो सकता है,

तो यह अस्तित्व या संसार क्यों नहीं हो सकता? इसका कोई कारण दिखाई ही नहीं देता।

लेकिन लोग हैं, कि वे प्रयास किए जा रहे हैं, और वे सोचते हैं

कि वे बहुत गम्भीर धार्मिक कार्य कर रहे हैं।

यह धार्मिक चिंतन भी नहीं है,

और वास्तव में कोई भी चिंतन धार्मिक होता ही नहीं।

न सोचना अथवा निर्विचार ही धार्मिक होता है।

क्या तुम शून्यता को पकड़ सकते हो? कैसी व्यर्थ की बात है।

शून्यता है कुछ भी नहीं, फिर तुम उसे कैसे पकड़ सकते हो?

उसकी न कोई सरहदें हैं और न सीमाएं हैं,

उसे पकड़ना सम्भव है ही नहीं, लेकिन अहंकार कहता है : मैं प्रयास करूंगा।

भिक्षु ने कहा–मैं प्रयास करूंगा।

और उसने हाथों को ऊपर हवा में उठाकर मुट्ठी बांधी

उसने न केवल किया ही, यह कहा भी–मैंने प्रयास किया।

उसने हाथों को ऊपर उठाकर हवा में मुट्ठी बांधी।

तुम सोच सकते हो कि तुमने उसकी अपेक्षा यह बेहतर ढंग से किया होता पर पर तुम करोगे क्या? तुम जो कुछ भी करोगे, वह वैसा ही होगा।

बिना यह जाने हुए कि तुम करोगे क्या, मैं कहता हूं–वह वैसा ही होगा। तुम इधर उछलो अथवा उधर, और उसे पकड़ने का प्रयास करो–

तुम पूर्ण रूप से एक पागल ही दिखाई दोगे।

…और उसने हाथों को हवा में उठाकर उसे मुट्ठियों में बांधा। सीको ने कहा–ऐसा करना ठीक नहीं है

तुम वहां कोई भी चीज न पाओगे।

यहां कुछ बात समझने जैसी है–

यदि तुम्हारे हाथ खुले हुए हैं, तो खालीपन या शून्यता वहां है: यदि तुम्हारे हाथ खुले हुए नहीं हैं और तुमने मुट्ठी बांध ली है, तो खालीपन या शून्यता मिंट गई।

मुट्ठी के अन्दर कोई स्थान रहा ही नहीं:

खुले हुए हाथों में वहां पूरा आकाश और शून्यता थी

लेकिन वह थी खुले हाथों में।

इसका अर्थ बहुत सूक्ष्म है, लेकिन अत्यंत सुन्दर है–

यदि तुम उसे पकड़ने का प्रयास करोगे, तो उससे चूक जाओगे। यदि तुम प्रयास नहीं करते हो, तो वह पहले ही से वहां है। यदि तुम प्रयास नहीं करते हो, तो तुम्हारे खुले हाथों में पूरे आकाश का अस्तित्व है

उससे जरा भी कम नहीं।

यदि तुम आकाश को पकड़ने का प्रयास करते हो

तो हर चीज विलुप्त हो जाती है।

तुम्हारी बंधी मुट्ठी में वहां है क्या?

थोड़ी-सी बासी हवा हो सकती है–

और इससे भी यही प्रदर्शित होता है कि मुट्ठी पूरी तरह ठीक से बंधी नहीं

यही कारण है कि जब मुट्ठी ठीक से पूरी तरह बंद होती है,

तो उसमें से पूरा आकाश विलुप्त हो जाता है।

अंतिम सत्य अर्थात् शून्यता वहां पहले ही से है:

उसे पाने का प्रयास करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

उसका प्रयास करने में ही तुम चूक जाओगे और भटक कर उसे खो दोगे।

महान जेन सद्गुरु लिन ची के पास एक व्यक्ति आया,

और उसने कहा : मैं बहुत परेशान हूं। मैं स्वयं बुद्ध जैसा ही बनना चाहता हूं। मुझे क्या करना होगा?

लिन ची ने अपने डंडे से उस पर प्रहार किया और वह व्यक्ति बाहर भागा, लिनची ने डंडा लेकर बाहर तक उसका पीछा किया और न केवल उसे आश्रम की सीमा तक, उसने और आगे तक उसका पीछा किया।

एक व्यक्ति जो वहीं खड़ा हुआ था, उसने कहा:

"यह तो बहुत अधिक कठोरता है। उस बेचारे व्यक्ति ने कोई गलत चीज तो नहीं पूछी थी, वह एक शुद्ध धार्मिक प्रश्न ही तो पूछ रहा था,

और वह बहुत निष्ठावान दिखाई देता था–

आपको उसकी आंखों और चेहरे को तो देखना चाहिए था।

वह वास्तव में एक लम्बा सफर तय करके आपके पास आया था,

और वह एक सामान्य, ईमानदार और धार्मिक प्रश्न ही तो पूछ रहा था,

कि कैसे बुद्ध बना जाए। और आपने जो कुछ भी कठोरता उस गरीब के प्रति दिखलाई, वह अन्यायपूर्ण दिखाई देती है।"

लिन ची ने कहा: मैंने उसको बाहर इसलिए खदेड़ा,

क्योंकि वह व्यर्थ की बात पूछ रहा था, वह पहले ही से बुद्ध है

यदि वह प्रयास करेगा, तो चूक जाएगा।

और यदि वह यह समझ सकता है कि मैंने क्यों उस पर चोट की

और उसे क्यों खदेड़ कर बाहर का रास्ता दिखलाया,

तो उसे सारे प्रयास छोड़ देने चाहिए–

वहां कुछ पाने के लिए है ही नहीं, उसे केवल वही बनना है, जो वह स्वयं

यही तिलोपा कहता है–विश्राममय और सहज बनो।

और तब पाओगे कि अन्दर वहां पहले ही से बुद्ध विराजमान है।

किसी को भी बुद्ध बनना नहीं है, वह हमेशा एक बुद्ध बना जन्म ही लेता है। बुद्धत्व तुम्हारा आंतरिक स्वभाव है, तुम्हें उसके बारे में–

पूछना ही नहीं चाहिए: और न उसके लिए कोई प्रयास ही करना चाहिए। वह बेचारा खोजी, यह सोचते हुए कि लिन थी तो पागल था,

मैंने उससे एक साधारण सा प्रश्न ही तो पूछा था, और उसने मुझ पर चोट की और फिर खदेड़ कर आश्रम के बाहर निकाल दिया,

वह तो पूरी तरह पागल है–वह एक दूसरे सद्गुरु के पास गया,

जो लिन ची का विरोधी था।

उन दोनों के मठ एक ही पहाड़ की चोटी पर पास-पास थे।

उसने महसूस किया-यह व्यक्ति तो ठीक होगा, क्योंकि वह-लिन ची का विरोधी है, और अब मैं समझ सकता हूं

कि वह क्यों उसका विरोध करता है, वह उसके पास गया।

उस दूसरे सद्गुरु के निकट जाकर भी

उसने उससे वही प्रश्न पूछा। सद्गुरु ने कहा:

क्या तुम पहले भी कभी किसी सद्गुरु के पास गए हो?

उसने कहा: हां, मैं गया तो था, लेकिन वहां जाना ही गलत हुआ।

मैं लिन ची के पास गया था और उन्होंने डंडे से मुझे पर तगड़ा प्रहार किया और मुझे आश्रम के बाहर खदेड़ दिया।

अचानक वह सद्गुरु इतना अधिक कुरूर और भयानक हो उठा,

जैसे मानो वह उसे मार ही डालेगा।

उसने अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली और कहा :

"क्या तू सोचता है कि मैं अज्ञानी हूं?

यदि लिन ची, वह सब कुछ कर सकता है, तो मैं तो तुझे पूरी तरह मार ही दूंगा।

और वह व्यक्ति तेजी से भाग खड़ा हुआ।

उसने रास्ते में एक व्यक्ति से पूछा : आखिर मुझे अब क्या करना चाहिए? उस आदमी ने उत्तर दिया: तुम वापस लिन ची के पास जाओ,

वह कहीं अधिक करुणामय है। उसने वैसा ही किया।

जब वह वापस लौटा तो लिन ची ने पूछा : तू फिर यहां वापस क्यों आ गया?

उसने कहा: दूसरा सद्गुरु तो बहुत खतरनाक है, आपसे भी कहीं अधिक खतरनाक।

उसने तो मुझे जान से ही मार दिया होता। वह तो एक भयानक पागल लगता

लिन ची ने कहा : हम दोनों एक दूसरे की सहायता करते हैं।

यह एक साजिश है।

अब तुम यहां रहो लेकिन कभी यह मत पूछना कि बुद्ध कैसे बना जाए? क्योंकि वह तुम पहले ही से हो। किसी को उसे बस जीना होता है।

तुम एक बुद्ध की भांति ही रहो और जरा भी फिक्र मत करो,

और न कुछ बनने का प्रयास करो।

और वह व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया।

संभवत: यह सबसे अधिक महानतम सिखावन है: तुम उसे जीयो,

और तुम उसका रहस्य पा लोगे।

और यही मैं तुमसे भी करने के लिए कहता हूं।

तुम उसे जीयो, और तुम उसका रहस्य पा लोगे।

तुम्हें कुछ होने या घटने की फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं है

तुम वह पहले ही से हो।

और बुद्धत्व कभी भी 'कुछ बनना' नहीं होता, वह तुम्हारा ही अस्तित्व है। तुम कभी भी बुद्ध बन नहीं सकते। तुम बुद्ध कैसे बन सकते हो?

या तो तुम हो अथवा तुम नहीं हो।

तुम बन कैसे सकते हो?

एक साधारण पत्थर, हीरा कैसे बन सकता है?

वह या तो हीरा है, अथवा नहीं है, बनना सम्भव नहीं है।

इसलिए तुम ही तय करो: या तो तुम हो, अथवा तुम नहीं हो।

यदि तुम वह नहीं हो, तो उसके बारे में प्रत्येक चीज भूल ही जाओ।

और यदि तुम हो, तो उसके बारे में सोचने की कुछ जरूरत ही नहीं है। प्रत्येक स्थिति में तुम पूर्ण रूप से वही रहोगे, तुम जैसे भी और जो कुछ भी हो

और तुम्हारे उस होने में ही प्रत्येक चीज स्वयं पकड़ में आ जाती है– तुम स्वयं को भी बिना प्रयास के लपक सकते हो।

सीको ने कहा: ऐसा करना जरा भी ठीक नहीं है।

तुमने वहां कोई भी चीज नहीं पाई।

भिक्ष ने कहा: आप ठीक कहते हैं, सद्गुरु!

लेकिन आप हमें इससे बेहतर उपाय प्रदर्शित करते हुए बतलाएं।

वहां कोई भी रास्ता है ही नहीं, न उससे अच्छा और न उससे बुरा।

किसी उपाय या रास्ते का कोई अस्तित्व है ही नहीं,

क्योंकि उपाय करने का अर्थ है कि कुछ ऐसा है, जो बनना है,

रास्ते का अर्थ है कि कोई फासला है, जिसे यात्रा करके पूरा करना है।

उपाय या रास्ते का अर्थ है कि तुम और लक्ष्य अलग-अलग हो।

रास्ते का होना सम्भव है, यदि मैं तुम तक आने के लिए यात्रा कर रहा हूं। रास्ता तभी सम्भव है यदि तुम यात्रा करते हुए मेरे पास आ रहे हो।

लेकिन कोई भी उपाय करना कैसे सम्भव है, यदि मैं स्वयं होने का प्रयास कर रहा हूं।

वहां बीच में कोई फासला है ही नहीं।

यदि तुम स्वयं अपने तक ही पहुंचने की कोशिश कर रहे हो, तो रास्ता कैसे सम्भव है?

वहां कोई स्थान या दूरी ही नहीं है।

तुम पहले ही से स्वयं में हो, रास्ते का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

यही कारण है कि जेन इसे 'पथ रहित पथ' अथवा 'द्वार हीन द्वार' कहते हैं। वहां कोई भी द्वार नहीं है और यही द्वार है।

'पथरहित पथ' का कहीं कोई अस्तित्व ही नहीं है,

और इसे समझ लेना ही मार्ग है।

जेन का प्रयास है कि तुम्हें तुरंत तुम्हारी ही शून्यता में फेंक दिया जाए

उसे टालने की वहां कोई जरूरत ही नहीं है।

भिक्षु ने कहा–आप ठीक कहते हैं सद्गुरु!

कृपया मुझे इस से बेहतर उपाय करके बतलाइए।

वह अभी भी उसी जाल में फंसा है। उसका अहंकार ही पूछ रहा है: तब क्या कोई दूसरा अन्य उपाय सम्भव है?

हो सकता है कुछ अन्य उपाय सम्भव है?

हो सकता है कुछ अन्य कार्य किया जा सकता हो,

और आप उस शून्यता को पकड़ सकते हैं?

तुरन्त ही सीको ने भिक्षु की नाक पकड़ ली और उसे झटका देकर अपनी ओर खींचा।

जेन सद्गुरु इतने अक्खड़ क्यों होते हैं?

और केवल जेन सद्गुरु ही इतने कठोर और निर्दय क्यों होते हैं?

क्योंकि उनमें एक सच्ची करुणा भी होती है,

और तुम्हें स्वयं तुम्हारे अन्दर केंद्र पर केवल इसी तरह फेंका जा सकता है। और वहां कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं। तुम्हें एक बिजली के झटके की जरूरत होती है। तुम्हें आघात पहुंचाने वाले इलाज की जरूरत है।

धक्का या आघात पहुंचाने वाला इलाज ही क्यों?

क्योंकि केवल आघात, समय के एक छोटे क्षण के लिए

तुम्हारी विचार प्रक्रिया को रोक देता है अन्यथा ऐसा नहीं हो पाता।

केवल एक आघात या धक्के से ही तुम सजग और सचेत हो जाते हो,

और तुम्हारी मूर्च्छा टूटती है,

अन्यथा तुम तो नींद में चलने वाले व्यक्ति की भांति हो।

जब तक तुम्हें कोई सख्त चोट न पहुंचाए तुम्हारी नींद नहीं टूट सकती।

तुरंत ही सीको ने उस भिक्षु की नाक पकड़ ली

और उसे झटका देकर अपनी ओर खींचा।

'आउच' की ध्वनि के साथ भिलु चीखते हुए बोला : आपने तो मुझ पर आघात किया?

इस 'आउच' शब्द में ही पूरा रहस्य है।

कोई व्यक्ति तुम्हारी नाक को एक झटके से खींचता है तो तुम्हारे अन्दर होता क्या है?

पहली बात तो यह कि ऐसी कभी भी आशा नहीं कर रहा था वह।

भिक्षु तो किसी बुद्धिगत उत्तर सुनने की आशा कर रहा था,

और वस्तुत. सारा काम एक साथ हो गया।

सद्गुरु उस पर समग्रता से झपटा,

जैसे एक बिल्ली झपट कर चूहे को पकड़ लेती है।

एक घटना समग्रता से घटी।

बिल्ली का केवल सिर नहीं, बल्कि पूरी बिल्ली ही झपटी,

और चूहा भी उसने पूरा पकड़ा, अकेला उसका सिर नहीं।

अप्रत्याशित रूप से यह घटना समग्रता से हुई।

और अप्रत्याशित रूप से होना ही पूरी कुंजी है

क्योंकि यदि मन वह आशा कर सकता है, तो कोई आघात होगा ही नहीं। यदि मन आशा कर सकता है, तब वह पहले ही से मृत है।

इसलिए यदि तुम सीको के पास जाओ, तो भली भांति स्मरण रखना,

वह फिर वैसा ही नहीं करेगा,

क्योंकि अब तुम उससे यह आशा कर सकते हो।

वह कुछ चीज पूरी तरह अप्रत्याशित रूप से और ही करेगा।

क्योंकि जेन सद्गुरु डंडे से प्रहार करते हैं, लोगों को खिड़की के बाहर फेंक देते हैं, उन पर कूद पड़ते हैं, अथवा कुछ भी कर सकते है

जेन के इतिहास में कभी-कभी ऐसी घटनाएं घटती रही हैं,

इससे लोग पहले ही से तैयार होकर आते हैं,

आयाम सीमित हैं, आप क्या कर सकते हैं? आप डंडे से प्रहार कर सकते हैं, आप खिड़की से बाहर फेंक सकते हैं, आप उस व्यक्ति पर छलांग लगा सकते हैं।

केवल थोड़े से ही विकल्प हैं वहां।

इसलिए लोग इन सभी के लिए पहले से तैयार होकर आएंगे।

लेकिन तुम सद्गुरु को धोखा नहीं दे सकते– वह इनमें से कोई भी काम करेगा ही नहीं:

वह पूर्ण रूप से शांत और मौन बैठा रहेगा-और वह अप्रत्याशित होगा। अप्रत्याशित रूप से होना ही कुंजी है, क्योंकि एक अप्रत्याशित क्षण में ही मन कार्य नहीं कर सकता। यही है उस 'आउच' ध्वनि का अर्थ।

मन पूरी तरह से रुक गया।

'आउच' की यह ध्वनि मन से नहीं आई,

यह तुम्हारी समग्रता से आती है।

यह अहंकार के द्वारा नियंत्रित नहीं होती,

क्योंकि अहंकार के पास उसे नियंत्रित करने का समय होता ही नहीं।

यह सब इतना अकस्मात् हुआ

सद्गुरु तुम्हारे ऊपर इतने आकस्मिक रूप से झपटा

कि वहां पहले ही से तैयार होने अथवा कुछ करने का समय था ही नहीं। यह 'आउच' तुम्हारे पूरे शरीर, मन और आत्मा से आता है।

यह तुम्हारे अन्दर की अतल गहराइयों की शून्यता से आता है,

जिसमें समग्रता की सुवास होती है।

और वहां कोई नियंत्रण करने वाला नहीं है,

किसी भी व्यक्ति ने कुछ किया नहीं है–वह घटा है।

और जब भी कोई चीज घटती है, और करने वाला कोई भी नहीं होता

वह शून्यता तभी पकड़ में आती है,

और उस तरह से तुम शून्यता से घिर जाते हो।

यह वही शून्यता है। यह 'आउच' की ध्वनि तुम्हारी आंतरिक शून्यता से आ रही है।

उसका करने वाला कोई भी नहीं है।

उसे उस शिष्य ने निर्मित नहीं किया है, वह प्रामाणिकता से घटी है

और उसके घटने में, उस 'आउच' के आने में, मन ने कुछ भी कार्य नहीं किया है।

वह मन से होकर गुजरी जरूर है, लेकिन वह ध्वनि मन से नहीं आई है। और वह मन के द्वारा इतनी अधिक तेज रफ्तार से गुजरी है...

वास्तव में झटके से खींचने पर तुम्हारी नाक को चोट लगी,

यह जो 'आउच' घटता है, यह सभी ध्वनि की सीमाओं को तोड़ देता है।

तुम जाकर शरीर विज्ञानियों से पूछो : यह ध्वनि से भी अधिक तेज गति से

भागती है, उसमें समग्र ऊर्जा होती है और यह सुन्दर इसलिए है–क्योंकि यह व्यक्ति अपने अस्तित्व की सहजता और स्वाभाविकता को पूरी तरह भूल गया था।

वह वापस उसी अंतर्निहित सहजता में फेंक दिया गया।

वह मन से दूर, अपने अंतस की उस गहनतम घाटी की शून्यता में फेंक दिया गया

जहां से यह 'आउच' की ध्वनि आती है।

जो करने से नहीं, अप्रत्याशित रूप से घटती है।

वह इसी शून्यता से घटती है, और तुम्हें पकड़ लेती है,

तुम्हें चारों ओर से घेर लेती है।

'आउच' भिक्षु चीखा : आपने मुझे चोटिल कर दिया।

और तुरंत प्रतिध्वनि वापस लौटती है: आपने मुझ पर चोट की?

यह स्थिति केवल एक क्षण भर रही, एक क्षण भी नहीं,

उसके भी बहुत छोटे से भाग तक ही, एक झलक की तरह,

बिजली की एक कौंध की तरह।

और तुरंत ही मन ने फिर से नियंत्रण संभाल लिया:

और कहा: आपने मुझ पर चोट की?

जरा इन तीन शब्दों को ध्यान से देखो–आपने, मुझ पर चोट की?

यही है हम सभी का पूरा जीवन: 'तुमने' और 'मुझे' और 'चोट'।

तुरंत ही पूरा मन वापस आ गया–

अपने उन सभी मूल तत्वों के साथ 'तुम' 'मैं' और 'चोट'।

सीको ने कहा: शून्य को पकड़ने का यही है वह रास्ता।

उसने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट कर दिया

उसने कोई व्याख्या कर उसे स्पष्ट नहीं किया, वह उसने पहले ही दे दी थी। उसने न केवल उस ओर इशारा किया,

उसने एक स्थिति निर्मित की, जिसमें वह घटा।

एक सद्गुरु होता ही इसीलिए है,

एक ऐसी स्थिति सृजित करने के लिए जिसमें तुम्हें कुछ घटने लगे,

एक ऐसी स्थिति निर्मित करने के लिए जिसमें तुम मन की यांत्रिकता के प्रति, और अपने आंतरिक अनस्तित्व के प्रति सचेत बन सको।

तब तुम धीमे-धीमे अपने मन से अपनी आंतरिक सहजता की ओर गतिशील हो सकते हो।

तुम विश्राममय और स्वाभाविक बन सकते हो।

तुम्हें यह समझना होगा कि प्रत्येक चीज, बिना मन के जो नियंत्रित करने की कोशिश करता है, कार्य कर सकती है और बहुत सुन्दरता से कार्य कर सकती है।

कठिनाई शुरू तभी होती है जब तुम उसे अपने हाथों में लेने की कोशिश करते हो,

जब तुम उसे नियंत्रित करने की कोशिश करते हो,

जब तुम चाहते हो कि मन तुम्हारे शरीर रूपी घोड़े का सवार बन जाए

मुसीबत तभी शुरू होती है।

अन्यथा प्रत्येक चीज स्वत: हो रही है, और इतनी सुन्दरता से हो रही है, कि उसमें सुधार करने की अथवा उसे विकसित करने की कोई जरूरत ही नहीं है।

सद्गुरु ने उसे अपने आंतरिक अस्तित्व की एक झलक दी,

क्योंकि 'आउच' की ध्वनि उसके केंद्र से आई थी,

वह न शरीर से आई थी और न मन से वह समग्रता से आई थी,

और उस क्षण में उसने एक कर्ता की भांति नहीं, एक सहज अस्तित्व के रूप में कार्य किया।

इस तरह से कार्य करना तुम्हारा पूरा जीवन बन सकता है-

यही है वह चीज जिसे धर्म की जरूरत है।

एक धार्मिक जीवन होता है–सहज स्वाभाविक मनुष्य का कार्य करना। यहां प्रत्येक क्षण स्थितियां सृजित होती हैं।

तुम कार्य तो करो, लेकिन कर्त्ता की भांति नहीं। जो करो सहजता से करो। कोई व्यक्ति मुस्कराता है, तुम करोगे क्या?

तुम एक कर्ता बनकर मुस्करा सकते हो, तुम उसे व्यवस्थित कर सकते हो। तुम इसलिए मुस्करा सकते हो, क्योंकि यदि तुम न मुस्कराए

तो वह एक असभ्यता होगी

तुम्हें इसलिए मुस्कराना है, क्योंकि जिस समाज में तुम रहते हो,

उसी समाज में यह व्यक्ति बहुत महत्वपूर्ण है,

वह तुम्हें देखकर मुस्कराया, इसलिए तुम्हें भी मुस्कराना होगा,

भले ही यह बहुत बड़ी चापलूसी समझा जाए।

यह एक व्यापारिक सौदा अथवा एक सामाजिक शिष्टाचार हो सकता है, अथवा यह अचेतन की एक सामान्य आदत हो सकती है।

जब कोई व्यक्ति मुस्कराता है, तो प्रतिक्रिया स्वरूप तुम भी मुस्कराते हो। यह बटन दबाकर लाई गई नकली मुस्कान है,

तुम्हारा अस्तित्व इससे पूरी तरह अप्रभावित रहता है।

वास्तव में उस मुस्कान में तुम किसी तरह उपस्थित नहीं रहते हो,

वह केवल होंठों पर चित्रित की गई या ओढ़ी हुई मुस्कान होती है।

वह होंठों का केवल एक व्यायाम होता है, उसमें कुछ भी नहीं होता,

वह खोखली होती है। तुम उसकी व्यवस्था करते हो।

एक बार ऐसा हुआ कि मैं जिस घर में रुका था

उस घर के मालिक की मृत्यु हो चुकी थी, और उसकी कोई पत्नी भी न थी, इसलिए उसकी बहिन व्यवस्था में सहायता करने के लिए आई हुई थी। चूंकि मैं वहां ठहरा हुआ था, इसलिए जो कुछ वहां हो रहा था,

उसका पूरी तरह से निरीक्षण कर रहा था मैं।

उसकी बहिन जब दरवाजे पर किसी को आते हुए देखती थी,

वह तुरंत ही रोना और विलाप करना शुरू कर देती थी,

और मृत व्यक्ति के बारे में बहुत सी बातें करना शुरू कर देती थी...

कि वह कितना प्यारा और सुन्दर था

और उसके चले जाने से उसके पूरे जीवन में सिर्फ उदासी रहेगी,

वह एक रोशनी की तरह था, उसके बुझ जाने से हर चीज अंधेरी हो गई। और वह किसी भी व्यक्ति के आने पर तुरंत ही सब कुछ चीजें

वैसे ही यांत्रिक रूप से फिर करने लगती थी।

एक दिन उसने मुझसे खुलकर कहा–आप बाहर बगीचे में अधिक बैठा करें, यदि कोई व्यक्ति दरवाजे पर आता दिखाई दे, तो मुझे खटखटा कर बता दिया करें।

और जब आने वाला व्यक्ति चला जाता था, तो वह पूरी तरह सामान्य हो जाती थी।

जब वह रोती हुई विलाप करती थी तो उसके गालों पर आसू बहने लगते थे, लेकिन जैसे ही वह व्यक्ति घर के बाहर पीठ फेरता था,

उसके आंसू गिरना बंद हो जाते थे, और वह पूरी तरह ठीक हो जाती थी, वह पहले की ही भांति हंसते-मुस्कराते बातें करती हुई सारे कार्य करने लगती थी।

मैं उसे देखकर बहुत हैरान हो जाता था।

मैंने उससे पूछा–तुम यह सब कुछ कैसे कर लेती हो?

तुम्हें तो एक कुशल अभिनेत्री होना चाहिए था।

तुम साधारण रूप से अपनी परिपूर्णता से जब अभिनय करती हो,

तो तुम्हारी आंखों से आंसू भी बहने लगते हैं।

व्यवस्थित करना, नियंत्रित करना...

तुम न केवल किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर को नियंत्रित कर रहे हो,

तुम अपने भी शरीर को नियंत्रित कर रहे हो–

और ऐसा निरंतर चलता चला जा रहा है।

सारी सहजता और स्वाभाविकता खो गई है, तुम एक यांत्रिक मनुष्य बन गए

हो

इसी तरह से जीवन कुरूप और अपंग बन जाता है

इसी तरह से एक नर्क निर्मित हो जाता है।

तब तुम्हारा प्रेम भी झूठा है, तुम्हारी घृणा भी नकली है

तुम्हारी मुस्कान भी झूठी है, तुम्हारे आंसू भी दिखावटी हैं।

ऐसे झूठे और नकली जीवन को जीते हुए तुम सोचते हो आध्यात्मिक आनंद

की बात

ऐसे झूठे और नकली जीवन को जीते हुए तुम सोचते हो

सत्य को उपलब्ध होने की बात,

ऐसे झूठे और नकली जीवन को जीते हुए तुम सोचते ही मुक्ति और मोक्ष,

एक नकली और झूठे व्यक्ति के लिए कहां कोई भी मोक्ष नहीं है।

इस झूठ को तुरंत छोड़ो

सहज और सरल बनो।

यहां खोने को कुछ भी नहीं है

और पाने के लिए सब कुछ है।

शुरू-शुरू में कभी-कभी तुम्हें यह थोड़ा सा भद्दा लग सकता है

क्योंकि सामाजिक शिष्टाचार के कारण ही तुम्हें मुस्कराना पड़ा,

जब कि सहज और स्वाभाविक दशा में वहां कोई मुस्कान थी ही नहीं। लेकिन केवल शुरू-शुरू में ही ऐसा लगेगा।

शीघ्र ही तुम्हारी प्रामाणिकता को दूसरे लोग महसूस करेंगे,

और तुम्हारी प्रामाणिकता शीघ्र ही तुम्हें कुछ देने लगेगी।

वह इतना अधिक देती है, कि जब एक सच्ची मुस्कान–

तुम्हारे होंठों पर आती है, तो वह 'आउच' की भांति उतनी ही पूर्ण और समग्र होती है।

तुम्हारा पूरा अस्तित्व मुस्कराता है।

तुम्हारा पूरा अस्तित्व ही एक मुस्कान बन जाता है

तुम्हारी मुस्कान तुम्हारे चारों ओर फैलकर जैसे चेतना को तरंगित कर देती है। प्रत्येक व्यक्ति जो तुम्हारे निकट होता है एक पावनता और शुचिता का अनुभव करेगा, एक स्नान करने के बाद मिलने वाली शुचिता और ताजगी जैसी, और तुम अत्यधिक आनंद को घटते हुए महसूस करोगे।

एक प्रामाणिक सहजता से किए साधारण से कृत्य से

तुम तुरंत ही इस संसार से दूसरे संसार में यात्रा करते हुए पहुंच जाते हो। प्रेम-अथवा वह क्रोध भी हो...

और मैं तुमसे कहता हूं कि यदि विधायक भावनाएं भी नकली हैं, तो वे कुरूप हैं और नकारात्मक भावनाएं यदि प्रामाणिक हैं, तो वे सुन्दर हैं।

जब तुम्हारा पूरा अस्तित्व क्रोध का ही अनुभव करे,

जब तुम्हारे शरीर का रेशा-रेशा उसके साथ कांपने लगे,

तो क्रोध भी सुन्दर होता है।

तुम एक छोटे बच्चे को क्रोधित होते देखो–

और तब तुम उसके सौंदर्य का अनुभव करोगे।

उसका पूरा अस्तित्व उसी में डूब जाता है। उसका चेहरा लाल हो जाता है, वह दीप्तिवान हो उठता है।

इतना छोटा सा बच्चा, इतना शक्तिशाली दिखाई देने लगता है

जैसे वह पूरे संसार को नष्ट कर सकता है।

एक बार क्रोधित होने पर बच्चे को भी क्या कुछ घटता है?

कुछ ही क्षणों, कुछ ही मिनटों के बाद हर चीज बदल जाती है,

और वह खुश हो उठता है। वह फिर घर में चारों ओर दौड़ने और नाचने लगता है।

ऐसा तुम्हारे साथ क्यों नहीं होता?

तुम एक नकलीपन से दूसरे नकलीपन की ओर गतिशील हो जाते हो।

वास्तव में क्रोध बहुत देर तक रहने वाली घटना नहीं है,

अपने स्वभाव के अनुसार वह एक क्षणिक भावावेश है,

यदि क्रोध सच्चा और प्रामाणिक है, तो वह कुछ क्षणों तक रहता है,

और जब वह समाप्त होता है, वह प्रामाणिक और सुन्दर होता है।

वह किसी को भी नुकसान नहीं पहुंचाता।

एक सच्ची सहज चीज किसी को नुकसान पहुंचा भी नहीं सकती।

केवल नकलीपन और झूठ ही नुकसान पहुंचाता है।

एक मनुष्य में कौन सहजता से क्रोध में बने रह सकता है?

कुछ ही क्षणों के बाद ज्वार, भाटा बनकर उतर जाता है

और ठीक दूसरी अति पर जाकर पूरी तरह से विश्राममय हो जाता है।

वह अत्यधिक प्रेमपूर्ण बन जाता है

इस क्रोध ने उसके प्रेम को नष्ट नहीं किया।

कोई भी प्रामाणिक क्रोध कभी प्रेम को नष्ट नहीं करता,

इसके विपरीत वह उसे बार-बार सृजित करता है,

उसे नवीनता और ताजगी देता है।

यदि एक पति और पत्नी कभी भी एक दूसरे पर क्रोध नहीं करते तो यह निश्चित है कि उनके मध्य प्रेम है ही नहीं।

यह बात पूरी तरह विश्वसनीय है।

यदि कभी-कभी वे क्रोधित होते हैं, प्रामाणिक रूप से क्रोधित, तो वह क्रोध प्रत्येक चीज को एक ताजगी से भर देता है।

वास्तव में क्रोध के उतर जाने के बाद,

वे पुन: एक बार फिर हनीमून मनाएंगे।

अब हर चीज ताजी और नवीन है, तूफान गुजर चुका है,

उसने प्रत्येक चीज को साफ कर उजला बना दिया है,

अब वे फिर से नए हो गए हैं। वे फिर से चंचल हो उठे हैं,

और वे फिर प्रेम करेंगे।

प्रेम में बार-बार गिरना, बार-बार प्रेम करना, यही प्रेम की शाश्वतता है। और यदि वहां सच्चा क्रोध नहीं है, तो वह क्रोध है ही नहीं

यदि तुम अन्दर ही अन्दर तो उबल रहे हो, लेकिन चूंकि तुम एक पति हो, और वह तुम्हारी पत्नी है, और तुम उसके सामने चेहरे पर एक मुस्कान चस्पा करके जाते हो,

तो वह दबा क्रोध समस्या उत्पन्न करेगा।

यदि अब तुम मुस्कराते हो, तो वह मुस्कान नकली है।

और पत्नी भी भली भांति जानती है, कि वह मुस्कान नकली है

और तुम भी जानते हो कि उसकी भी मुस्कान नकली है,

और घर में तुम लोग एक नकली जीवन जी रहे हो।

और यह बनावटीपन इतने गहरे में अंतर्निहित हो जाता है

कि वास्तव में एक सच्ची मुस्कान क्या होती है, तुम पूरी तरह से उस ओर जाने वाले रास्ते को ही भूल जाते हो।

एक सच्चा चुम्बन क्या होता है, और एक सच्चा आलिंगन क्या होता है

तुम उस ओर जाने वाले मार्ग को पूरी तरह खो देते हो।

अब तुम चेष्टा करके पत्नी के पास जाते हो, उसे आलिंगन में लेते हो,

उसका चुम्बन लेते हो, और अन्य दूसरी चीजों के बारे में सोचते हो,

अब तुम प्रयास करके ही गतिशील होते हो,

लेकिन तुम्हारी सारी चेष्टाएं और मुद्राएं नपुंसक हैं, मृत हैं।

फिर तुम्हारा जीवन कैसे पूर्ण और तृप्त हो सकता है?

और मैं तुमसे कहता हूं कि यदि नकारात्मक भावनाएं भी सच्ची हों

तो अच्छा है, और यदि वे प्रामाणिक हैं तो धीरे-धीरे

उनकी वास्तविक प्रामाणिकता ही उनको रूपांतरित कर देती है।

वे अधिक से अधिक विधायक होते जाते हैं,

और एक क्षण ऐसा आता है, जब सारी विधायकता और नकारात्मकता लुप्त हो जाती है।

तुम शुद्ध रूप से प्रामाणिक बन जाते हो:

तुम नहीं जानते कि क्या अच्छा है और क्या बुरा।

तुम यह भी नहीं जानते कि क्या विधायक है, और क्या नकारात्मक।

तुम शुद्ध रूप से प्रामाणिक हो जाते हो।

यह प्रामाणिकता ही तुम्हें अनुमति देगी, कि तुम सत्य की झलक पा सको, केवल असली ही असली को जान सकता है

केवल सत्य ही सत्य को जान सकता है,

और प्रामाणिक ही प्रामाणिक सत्य को जान सकता है, जो तुम्हें-चारों ओर से घेरे है।

यही एक मार्ग है शून्यता को पकड़ने का।

सद्गुरु ने एक स्थिति निर्मित की,

शिष्य को सहज स्वाभाविक कृत्य की ओर गतिशील होने की अनुमति दी। वह कृत्य चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो-केवल एक 'आउच' की ध्वनि, और बिजली की कौंध की भांति घटना घट गई।

यह एक 'सतोरी' भी बन सकती है, जो बुद्धत्व का पहला चरण है।

इसलिए थोड़ी सी बातों का स्मरण बना रहे!

तुम्हें यांत्रिकता से सहजता और स्वाभाविकता की ओर गतिशील होना है, तुम्हें बुद्धि से हृदय की ओर, और शब्द से निःशब्द की ओर,

खण्ड से अखण्ड की ओर

नकली से असली की ओर,

अहंकार से निरहंकार की ओर,

और आत्मा से अनात्मा की ओर गतिशील होना है।

वह अनात्मा अथवा शून्यता तुम्हारी आत्मा के निकट पहले ही से अस्तित्व में है।

केवल ध्यान की दिशा बदलनी है,

बस एक गियर बदलने की जरूरत है।

यांत्रिकता के निकट ही सहजता और स्वाभाविकता भी अस्तित्व में है,

झूठ के निकट, सत्य सदा प्रतीक्षा करता रहता है–

केवल गेस्टाल्ट बदलना है।

सहजता की ओर केवल एक दृष्टि डालने की जरूरत है।

चौबीस घंटे, इसके लिए प्रयास करते रहो।

जब भी तुम्हें नकली से असली और प्रामाणिक की ओर गतिशील होने का अवसर मिले,

जब भी तुम्हें यांत्रिक कार्य से सहज सरल और प्रामाणिक की ओर गतिशील होने का मौका मिले

तुरंत गिअर बदल दो।

नदी की धारा में यों बहते रहो, जैसे मानो तुम एक शून्यता हो।

अपने आपको बहुत अधिक नियंत्रित करने का प्रयास मत करो, बस विश्राममय और सहज स्वाभाविक बने रहो।

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

लुलियांग का जलप्रपात

सूत्र:

कनफ्यूशियस लुलियांग के विशाल जलप्रपात को देख रहा था।

वह दो सौ फीट की ऊंचाई से नीचे गिरता है,

और उसके झाग पंद्रह मील दूर तक पहुंचते हैं।.

मछली-घड़ियाल जैसे जीव भी उसके प्रवाह में जीवित नहीं रह पाते। फिर भी कनफ्यूशियस ने एक वृद्ध व्यक्ति को

उसके अन्दर जाते हुए देखा।

यह सोचते हुए कि वह वृद्ध व्यक्ति, किसी मुसीबत से पीड़ित होकर ही अपने जीवन को समाप्त कर देने को इच्छूक है,

कनफ्यूशियस ने अपने एक शिष्य को आदेश दिया:

कि वह किनारे-किनारे दौड़ते हुए वहां जाकर-

उसे बचाने का प्रयास करे।

तभी उसे वह वृद्ध व्यक्ति, दस कदम आगे

जल से बाहर अपना सिर निकालता दिखाई दिया।

उसके केश जल के साथ ही बहे जा रहे थे,

और वह मस्ती से गीत गाता हुआ किनारे की ओर बढ़ रहा था। कनफ्यूशियस अपने शिष्य का पीछा करता हुआ वहां आ पहुंचा, और उसने वृद्ध व्यक्ति की ओर आश्चर्य से देखते हुए कहा:

श्रीमान! मैं सोच रहा था कि आप एक दिव्यात्मा हैं।

लेकिन अब मैं देख रहा हूं कि आप एक मनुष्य हैं।

कृपया मुझे बताने का कष्ट करें:

इस उफनते और तेजी से बहते जल के साथ सम्बन्ध जोड़ने का आखिर कौन-सा मार्ग हैं?

नहीं, उस वृद्ध व्यक्ति ने उत्तर दिया;

न कोई उपाय है, और न कोई मार्ग,

मैं डुबकी लगाकर भंवर के साथ गोल-गोल घूमते हुए उसके बाहर आ जाता हूं।

मैं केवल अपने को जल के प्रवाह और गति के अनुकूल बना लेता हूं न कि जल को अनुकूल बनाने का प्रयास करता हूं।

और इस तरह, इस कार्य प्रणाली से ही

मैं उससे सम्बन्ध जोड़ने में समर्थ होता हूं।

तुम्हारे पास एक हजार एक समस्याएं हैं,

और तुम उन्हें हल करने का प्रयास करते हो,

लेकिन एक भी समस्या सुलझती नहीं है।

वह सुलझ भी नहीं सकती, क्योंकि पहली बात तो यह
वहां एक हजार एक समस्याएं न होकर केवल एक ही समस्या है;
और यदि तुम एक हजार एक समस्याओं की ओर देखो
तो तुम उस एक समस्या को भी नहीं देख पाओगे,
जो वास्तव में है।
तुम उन चीजों की ओर देखे चले जाओगे, जो हैं ही नहीं,
और उनके ही कारण तुम उसे देखने से चूक जाते हो, जो वास्तव में है। इसलिए पहली बात, जो बुनियादी है, उसे समझ लेना है,
केवल वही एक समस्या है। वह लगभग निरंतर बने रहने वाली समस्या हैं। वह न तो तुम्हारी व्यक्तिगत समस्या है, और न मेरी; अथवा न किसी अन्य की।
वह मनुष्य मात्र की समस्या है।
उसका जन्म तुम्हारे जन्म के साथ ही होता है, और दुर्भाग्य से
जैसी स्थिति लाखों-करोड़ों मनुष्यों की है, वह समस्या तुम्हारे साथ ही मर जाएगी।
यदि वह समस्या तुम्हारे मरने से पहले ही मर जाए
तो तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे।

और धर्म का पूरा प्रयास इस समस्या को मिटाने में है
इससे पहले कि वह तुम्हें पूरी तरह मार दे, तुम्हारी सहायता करना है। इस बारे में एक ऐसे मनुष्य की सम्भावना है, जो बिना समस्याओं के हो, और ऐसा मनुष्य धार्मिक होता है। उसकी कोई समस्याएं होती ही नहीं, क्योंकि उसने बुनियादी समस्या हल कर ली है।
उसने समस्याओं की जड़ ही काट दी है।

इसी कारण-तिलोपा कहता है: मन को जड़ से काट दो।
पत्तियों और शाखाओं को काटने मत जाओ, वे लाखों हैं,
और उनको काटकर भी, तुम जड़ काटने में समर्थ न हो सकोगे,
और वृक्ष विकसित होता जाएगा।
यदि तुम पत्तियों की छंटाई करते रहे, तो वृक्ष और भी अधिक घना, मोटा और विशाल बनेगा।
पत्तियों के बारे में पूरी तरह भूल जाओ। समस्याएं वे नहीं हैं।
समस्या तो कहीं जड़ में है। जड़ को काटी;
और वृक्ष धीमे- धीमे नष्ट हो जाएगा, सूख जाएगा।

इसलिए मन की मूल समस्या आखिर है कहां?
यह न तो तुम्हारी है और न किसी अन्य की है;
यह तो मनुष्य जैसा है, उसकी है।
जिस क्षण तुम जन्म लेते हो, यह तभी अस्तित्व में आती है,
लेकिन तुम्हारे से पूर्व यह घुल कर मिट सकती है।

एक बच्चे का जन्म होता है...

यदि तुम इस समस्या को ठीक से समझना चाहते हो,

तो कदम-कदम मेरा अनुसरण करते चलो,

वह तुरंत हल हो जाएगी,

क्योंकि समस्या स्वयं अपने साथ उसका समाधान भी लिए हुए है।

समस्या है एक बीज के समान

और उसका समाधान है एक फूल के समान, जो बीज ही में छिपा हुआ है। यदि तुम बीज को ठीक तरह से और पूरी तरह समझ लो,

तो समाधान वहां पहले ही से उपस्थित है।

एक समस्या को सुलझाना, वास्तव में उसको हल करना न होकर,

उसे समझना है।

उसका समाधान उससे कहीं बाहर नहीं है, वह उसी में अंतर्निहित है। वह उसी में छिपा हुआ है। इसलिए उसे हल करने क्री ओर मत देखो, केवल समस्या की गहराई में झांक कर देखो, और उसकी जड़ खोजो। वास्तव में जड़ को भी काटने की जरूरत नहीं है।

एक बार तुमने उसे समझ लिया,

तो वह समझ ही जड़ का कटना बन जाती है।

इसलिए कदम-कदम मेरे पीछे चलते हुए देखते रहो

कि समस्या का किस तरह जन्म होता है;

और उसके समाधान में कोई भी दिलचस्पी मत लो-

क्योंकि इसी तरह से संसार में दर्शनशास्त्र का जन्म होता है।

उस जगह कोई समस्या है, मन उसका हल खोजना शुरू कर देता है, और दार्शनिक प्रश्न उत्पन्न होने लगते हैं।

वहां कोई समस्या है, मन उसे समझने का प्रयास करता है,

तो धर्म का जन्म होता है।

एक बच्चा जन्मता है, और वह पूरी तरह असहाय होता है,

विशेष रूप से मनुष्य का बच्चा।

वह दूसरे की सहायता के बिना जीवित नहीं रह सकता।

इसलिए पहली चीज तो यह है

कि पशुओं, वृक्षों और पक्षियों के साथ कोई समस्या होती ही नहीं

वे सभी संदेहहीन तथा प्रश्नहीन जीवन जीते है, और परिपूर्णता से जीते हैं, वे बिना किसी समस्या, व्यग्रता, बिना अल्सर और कैंसर के,

शुद्ध रूप में मजे से जीते हैं,

और वे जब तक रहते हैं, प्रत्येक क्षण उत्सव मनाते हैं।

उनके जीवन में कोई समस्या नहीं होती-

और न उन्हें समाप्त होने या मरने ही में कोई समस्या होती है-

वे एक प्रश्नविहीन जीवन जीते हैं।

केवल मनुष्य का बच्चा ही जन्म से असहाय होता है

अन्य दूसरे पशुओं, वृक्षों और पक्षियों के बच्चे

बिना माता-पिता के भी जीवित रह सकते हैं,

वे बिना किसी समाज और बिना किसी परिवार के जीवित रह सकते हैं। यदि कभी-कभी सहायता की भी आवश्यकता होती है, तो बहुत थोड़ी सी, कुछ दिनों की, अथवा अधिक से अधिक कुछ महीनों की।

लेकिन मनुष्य का बच्चा इतना अधिक असहाय होता है, कि उसे वर्षों तक निर्भर रहना होता है।

और यही है वह जड़, जिसे खोज लेना है।

यह असहायता, मनुष्य के लिए समस्या उत्पन्न क्यों करती है? बच्चा असहाय होता है: वह दूसरों पर निर्भर रहता है;

लेकिन बच्चे का अनजाना मन,

अन्य दूसरों पर आश्रित रहने की कुछ इस तरह व्याख्या करता है जैसे मानो वही पूरे संसार का केंद्र बिंदु है।

बच्चा सोचता है

जब भी मैं रोता हूं मेरी मां तुरंत दौड़ी चली आती है।

जब भी मैं भूखा होता हूं केवल संकेत भर देना होता है

और उसे स्तन मिल जाता है।

जब मैं भीगे में पड़ा होता हूं तो केवल मेरे रोने चीखने से ही कोई व्यक्ति तुरंत आता है, और मेरे कपड़े बदल देता है।

बच्चा एक सम्राट की भांति जीता है।

वास्तव में वह पूरी तरह असहाय और आश्रित है,

और उसके माता-पिता तथा पूरा परिवार

उसके जीवित बने रहने में सहायता कर रहे हैं।

वे बच्चे पर आश्रित नहीं हैं, बच्चा उन पर आश्रित है।

लेकिन बच्चे का अज्ञानी मन व्याख्या करता है

जैसे मानो वह ही पूरे संसार का केंद्र है।

और वास्तव में उसका पूरा संसार शुरू में बहुत छोटा होता है एक ओर मां और दूसरे किनारे पर पिता- यही उसका पूरा संसार होता है, और वे दोनों उसे प्रेम करते हैं।

बच्चा अधिक से अधिक अहंकारी बनता जाता है,

वह अनुभव करता है जैसे वह स्वयं ही पूरे अस्तित्व का केंद्र है। अहंकार निर्मित होता है-

आश्रित होने, और निःसहाय होने के कारण।

वास्तव में स्थिति ठीक उल्टी है।

अहंकार के निर्मित होने का उस स्थान पर कोई कारण ही नहीं है। लेकिन बच्चा पूरी तरह अज्ञानी है और वह समझने योग्य नहीं है। इस चीज की जटिलता यही है: वह यह अनुभव नहीं कर सकता- कि वह असहाय है। वह अनुभव करता है कि वह तानाशाह है।

और तब अपने पूरे जीवन भर वह तानाशाह ही बने रहने का प्रयास करेगा। वह एक नेपोलियन, एक सिकंदर या एक एडोल्फ हिटलर बनेगा,

तुम्हारे अध्यक्ष, प्रधान मंत्री और तानाशाह ये सभी बचकाने हैं,

ये सभी उसी चीज का प्रयास कर रहे हैं,

वे पूरे अस्तित्व का केंद्र बिंदु बनना चाहते हैं:

वे चाहते है: संसार को उनके साथ ही जीना चाहिए

संसार को उनके साथ ही मरना चाहिए;

पूरा संसार उनकी परिधि है

और वे ही उसका अर्थ हैं, तथा जीवन का वास्तविक अर्थ उन्हीं में छिपा हुआ है।

बच्चा निश्चित ही स्वाभाविक रूप से अपनी व्याख्या को ठीक पाता है, क्योंकि वह अपनी मां की आंखों में देखता है

कि वह ही उसके जीवन के लिए महत्वपूर्ण है।

और जब पिता घर वापस आते हैं, तो वह अनुभव करता है

कि वह ही पिता के जीवन का वास्तविक अर्थ है।

ऐसा तीन अथवा चार वर्ष तक ही रहता है-

और प्रारम्भिक जीवन के यह चार वर्ष ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं;

जीवन में इनकी सम्भावित शक्ति का समय,

फिर वहां कभी नहीं आएगा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि प्रारम्भ के चार वर्षों बाद

बच्चा लगभग पूर्ण हो जाता है।

उसका पूरा सांचा, पूरे जीवन भर के लिए तैयार हो जाता है;

वह इसी सांचे को विभिन्न परिस्थितियों में सिर्फ दोहराएगा

लेकिन सांचा तो पहले ही से तैयार है।

सात वर्ष का होते-होते बच्चा पूरी तरह विकसित हो जाता है:

अब कुछ अन्य उसमें विकसित होने नहीं जा रहा है।

उसके सभी व्यवहार और मुद्राएं स्थाई हो चुकी हैं, उसका अहंकार व्यवस्थित हो चुका है।

अब वह संसार में आगे बढ़ता है, तब हर जगह

उसके लिए प्रत्येक स्थिति में लाखों समस्याएं होंगी,

और वह उसकी जड़ अपने साथ लिए चल रहा है।

एक बार परिवार के दायरे के बाहर आकर समस्याएं खड़ी होंगी,

क्योंकि तुम्हारी कोई भी फिक्र नहीं करेगा,

जितनी फिक्र कि तुम्हारे बारे में कभी तुम्हारी मां करती थी,

कोई भी तुममें दिलचस्पी नहीं लेगा, जितनी दिलचस्पी कभी तुममें तुम्हारा पिता लेता था।

हर जगह पूरी उदासीनता और तटस्थता मिलेगी।

और अहंकार को चोट लगेगी।

लेकिन अब पूरा ढांचा व्यवस्थित हो चुका है।

भले ही चोट लगे या नहीं, बच्चा अब उस ढांचे को बदल नहीं सकता। वह उसके अस्तित्व का प्रामाणिक 'ब्लू प्रिंट' बन चुका है।

वह बच्चा अब दूसरे बच्चों के साथ खेलेगा और उन्हें नियंत्रित करने का प्रयास करेगा।

वह स्कूल जाएगा और वहां भी बच्चों में वर्चस्व प्राप्त करने की कोशिश करेगा,

दर्जे में प्रथम आने की कोशिश करेगा,

और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बनना चाहेगा।

उसे विश्वास होता है कि वह सभी में सर्वश्रेष्ठ है।

लेकिन दूसरे बच्चे भी इसी तरह से ऐसा ही विश्वास करते हैं।

तब वहां संघर्ष होता है। कई अहंकार आपस में टकराते हैं।

तब यही पूरे जीवन की कहानी बन जाती है

ठीक तुम्हारी ही तरह, तुम्हारे चारों ओर लाखों अहंकार होते हैं,

और प्रत्येक दूसरों पर अंतिम रूप से अधिकार जमाना चाहता है,

उन्हें अपने पूरे नियंत्रण में रखना चाहता है- अपने धन, शक्ति, राजनीति और ज्ञान के द्वारा, झूठ, छल और बहानों के द्वारा, यहां तक कि धर्म और नैतिकता के द्वारा भी।

और प्रत्येक व्यक्ति पूरे संसार को यह प्रदर्शित करते हुए कि

'मैं ही केंद्र हूं' अधिकार जमाने का प्रयास कर रहा है।

और यही सारी समस्याओं की जड़ है।

इस धारणा के कारण, तुम हमेशा किसी न किसी के साथ

लड़ाई, झगड़ा और संघर्ष ही करते रहोगे।

ऐसा नहीं है कि दूसरे लोग तुम्हारे शत्रु हैं,

यहां प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे जैसा ही है, वह भी उसी नाव में सवार है;

प्रत्येक व्यक्ति की हर दूसरे व्यक्ति के लिए वही स्थिति, और वही दशा है, क्योंकि सभी का पालन-पोषण एक ही तरह से हुआ है।

पश्चिम में मनोविश्लेषकों का वहां एक विशिष्ट स्कूल है

जिन्होंने यह सुझाव दिया है

कि जब तक बच्चों का लालन-पालन, बिना उनके माता-पिता के नहीं किया जाता,

संसार में कभी भी शांति न आ सकेगी।

मैं उन लोगों का समर्थन नहीं करता-

क्योंकि तब वे किसी से भी कभी विकसित न हो सकेंगे।

उनके सुझाव में कुछ चीज ऐसी जरूर है, जो आंशिक सत्य है,

लेकिन यह बहुत खतरनाक प्रस्ताव है।

क्योंकि यदि बच्चों का लालन-पालन, बिना उनके माता-पिता और बिना उनके प्रेम के एक नर्सरी में पूरे उदासीन वातावरण में किया गया,

तो उनके साथ अहंकार उत्पन्न होने की तो समस्या नहीं होगी

लेकिन फिर वहां दूसरी तरह की समस्याएं होंगी,

जो उसी तरह की खतरनाक, और उनसे भी कहीं अधिक होंगी।

यदि एक बच्चा पूरी तरह उदासीन और तटस्थता के वातावरण में पाला-पोसा जाए

तो उसके अन्दर कोई केंद्र निर्मित ही न होगा

उसका अस्तित्व गड्ड-मढ़ और रुग्ण विधि से विकसित होगा,

वह यह नहीं जानेगा कि वह कौन है। उसकी अपनी कोई पहचान न होगी। वह डरा-डरा सा भयभीत बन कर रहेगा, और बिना भय के-

वह एक कदम उठाने में भी समर्थ न हो सकेगा, क्योंकि किसी ने भी उसे प्रेम नहीं किया है।

यह निश्चित है, वहां अहंकार न होगा,

लेकिन बिना अहंकार के, उसके कोई केंद्र भी न होगा।

वह कभी भी बुद्ध न हो सकेगा;

वह केवल सुस्त, बुझा-बुझा सा, हीनता से ग्रस्त, छू और सदा भयभीत रहने वाला एक प्राणी बनकर रहेगा।

भयमुक्त होने के लिए प्रेम की आवश्यकता है,

जो उसे यह अहसास दिला सके, कि कोई उसे प्रेम करता है, किसी ने उसे स्वीकारा है और वह व्यर्थ नहीं है,

और उसे कबाड़ में नहीं फेंका जा सकता है।

यदि बच्चे ऐसे वातावरण में पाले जाएं जहां प्रेम की कमी हो,

तो यह ठीक है कि वे अहंकारी न होंगे।

उनके जीवन में इतने अधिक संघर्ष और लड़ाई न होंगे।

लेकिन वे बिस्कूल भी संघर्ष करने में समर्थ हो ही न सकेंगे

और वे हमेशा उड़े-उड़े से, पलायनवादी बनकर

प्रत्येक व्यक्ति से दूर भागने वाले, अपने अस्तित्व को छिपाने वाले गुफा वासी जैसे होंगे।

वे कभी भी बुद्ध न हो सकेंगे,

वे जीवन ऊर्जा से दीप्तिवान न होंगे,

वे न तो केन्द्रित हो सकेंगे, और न विश्राममय होकर अपने घर पहुंच सकेंगे। वे पूरी .तरह से अपने केंद्र से दूर एक विचित्र प्राणी बनकर रहेंगे,

और उनकी दशा किसी भी रूप में अच्छी न होगी।

इसलिए मैं इन मनोविश्लेषकों का समर्थन नहीं करता,

ये लोग मनुष्यों को नहीं, केवल यांत्रिक मानव अथवा रोबोट ही निर्मित करेंगे रोबोट की वास्तव में कोई समस्याएं होंगी ही नहीं।

वे लोग मनुष्यों को भी जानवरों की भांति बनाना चाहते हैं;

जिनमें कम कामनाएं कम बुराइयां और कम भ्रष्टता होगी।

लेकिन इसमें प्राप्त करने जैसा कुछ भी नहीं है,

क्योंकि तब तुम विकसित होकर चेतना के उच्चतम शिखर पर नहीं पहुंचते हो

तुम्हारा नीचे की ओर गिरकर पतन होता है, यह पूर्व अविकसित स्थिति में जाना है।

वास्तव में यदि तुम एक पशु बन जाते हो

तो तुम्हें वेदना और भी कम होगी,

क्योंकि वहां चेतना भी काफी कम होगी।

और यदि तुम एक पत्थर या चट्टान ही बन जाते हो

तो वहां न कोई कामना होगी और न कोई व्यग्रता

क्योंकि वहां अन्दर कोई है ही नहीं, जो व्यग्रता और वेदना का अनुभव करे, लेकिन यह स्थिति प्राप्त करने योग्य है ही नहीं,

प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा जैसा बनना चाहिए चट्टान जैसा नहीं।

और 'परमात्मा' शब्द का अर्थ ही है

जिसकी चेतना परिपूर्ण हो,

और फिर भी जिसके पास न चिंताएं हों, न व्यग्रता हो, और न कोई समस्याएं हों;

जो स्वतंत्र पक्षी की भांति जीवन का आनंद ले सके।

और उसके पास ऐसी परिपूर्ण विकसित चेतना हो,

जिससे वह पक्षियों की भांति गीत गाते हुए

पीछे अविकसित जीवन में लौटते हुए नहीं

बल्कि विकसित होकर चेतना के श्रेष्ठतम सोपान को पाकर जीवन में उत्सव- आनंद मना सके।

बच्चा अहंकार इकट्ठा करता है-यह सहज स्वाभाविक है,

इस बारे में कुछ भी नहीं किया जा सकता है, मैं इसे स्वीकार करता हूं। लेकिन बाद में इसे अपने साथ ढोये चले जाने की कोई जरूरत नहीं है। प्रारम्भ में अहंकार आवश्यक होता है-

जिससे बच्चा यह अनुभव कर सके, कि उसे स्वीकार कर,

उसका स्वागत किया गया है, उससे प्रेम किया गया है,

वह एक मेहमान है, वह बिना बुलाए हुए नहीं आया है

और उसके चारों ओर माता-पिता और परिवार की प्रेम भरी ऊष्मा है। अहंकार उसे एक सुरक्षा देता है, उसे जमीन में जड़ें जमाने में

और मजबूती से विकसित होने में उसकी सहायता करता है।

यह अच्छा है। यह-यह ठीक एक बीज के खोल के समान है।

लेकिन एक खोल ही अंतिम चीज नहीं बन जाना चाहिए

अन्यथा बीज मर जाएगा।

यदि सुरक्षा बहुत अधिक हो जाती है,

तो वह एक कारागृह बन जाती है।

सुरक्षा का सुरक्षा बना रहना ही जरूरी है,
और जब बीज के लिए वह क्षण आता है,
तो बीज का कठोर खोल पृथ्वी में स्वयं गल जाता है,
उसे स्वाभाविक रूप से टूट कर मरना ही चाहिए
जिससे बीज अंकुरित हो सके, और जीवन का जन्म हो सके।

अहंकार ठीक एक सुरक्षा का खोल है-
बच्चे को उसकी जरूरत होती है, क्योंकि वह असहाय है;
बच्चे को उसकी जरूरत होती है, क्योंकि वह कमजोर है,
बच्चे को उसकी जरूरत होती है, क्योंकि उस पर आघात हो सकते हैं,
और उसके चारों ओर ऐसी लाखों शक्तियां हैं,
वह एक घर, एक आधार और एक सुरक्षा चाहता है,
सारा संसार उससे उदासीन हो सकता है,
लेकिन वह हमेशा अपने घर की ओर ही देख सकता है,
जहां वह महत्व प्राप्त कर सके।

लेकिन इस महत्व के साथ ही अहंकार आता है। वह अहंकारी बन जाता है। और इस अहंकार से ही सारी समस्याएं उत्पन्न होती हैं,

एक हजार एक समस्याएं।
यह अहंकार तुम्हें प्रेम में गिरने की अनुमति नहीं देगा
और तुम्हारे जीवन में लाखों समस्याएं उठ खड़ी होंगी।
यह अहंकार चाहेगा कि प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे आगे समर्पण करे,

यह अहंकार तुम्हें किसी के प्रति समर्पण करने की अनुमति नहीं देगा- और प्रेम केवल तभी घटता है, जब तुम समर्पण करते हो।

जब तुम किसी को समर्पण करने के लिए बाध्य या विवश करते हो,

तो वह पूर्ण होती है, प्रेम नहीं होता। उससे सब कुछ बरबाद हो जाता है। और यदि वहां जीवन में प्रेम ही नहीं है

तो तुम्हारा जीवन बिना किसी कविता और बिना किसी ऊष्मा के होगा,
तो वह गद्य की तरह समतल मैदान सा, तर्कपूर्ण और हिसाबी-किताबी होगा।
लेकिन कोई भी व्यक्ति बिना काव्य के कैसे रह सकता है!
गद्य ठीक है, उपयोगी है, और जरूरी भी है,
लेकिन वह जीवन नहीं हो सकता
क्योंकि वह कभी भी उत्सव-आनंद नहीं बन सकता,
वह कभी भी एक त्योहार नहीं बन सकता

और जब जीवन एक त्योहार अथवा समारोह न हो, वह उबाऊ होता है। तभी कविता की जरूरत है, लेकिन काव्य के लिए तुम्हें समर्पण करना होगा, तुम्हें इस अहंकार को फेंक देने की जरूरत होगी।

यदि तुम ऐसा कर सकते हो तो कुछ क्षणों के लिए ही, उसे एक तरफ उठा कर रख दो।

तुम्हें अपने जीवन में ही कुछ सुन्दर और दिव्य झलकें दिखाई देंगी।

बिना काव्य के तुम सही अर्थों में जीवित नहीं रह सकते, तुम केवल रह भर सकते हो।

प्रेम ही एक काव्य है।

और यदि प्रेम करना ही सम्भव नहीं है, तो तुम प्रार्थना कैसे कर सकते हो? तब प्रार्थना करना लगभग असम्भव बन जाएगा,

और बिना प्रार्थना के, तुम केवल एक शरीर मात्र बने रहोगे,

तुम अपने अंतर्तम आत्मा के बारे में कभी भी सचेत न हो सकोगे,

केवल प्रार्थना में ही तुम उन शिखरों पर पहुंचते हो।

प्रार्थना अनुभव का सर्वोच्च शिखर है,

लेकिन प्रेम ही उसका द्वार खोलता है।

प्रार्थना तुम्हें जीवन के सबसे अधिक आतरिक रहस्य में प्रवेश करने की अनुमति देती है।

जब तुम प्रार्थना नहीं कर सकते, तभी लाखों समस्याएं उत्पन्न होती हैं। कार्ल गुस्ताव जुंग ने, हजारों लोगों के पूरे जीवन के अध्ययन के बाद हजारों रुग्ण लोगों के उलझे मनोवैज्ञानिक रूप से बिगड़े;–

मामलों का अध्ययन करने के बाद

अपनी अंतिम घोषणा में कहा:

मैं अभी तक ऐसे किसी मनोवैज्ञानिक रूप से रुग्ण व्यक्ति से नहीं मिला, चालीस वर्ष की आयु के बाद जिसकी असली समस्या धर्म न रही हो,

चालीस वर्ष के बाद:

यह ठीक वैसा ही है, जैसे चौदह वर्ष की आयु के बाद प्रत्येक

लड़के और लड़की को सेक्स की समस्या को सुलझाना होता है, और यदि तुम उन समस्याओं को गलत ढंग से निपटा

तो वे समस्याएं एक ही स्थान पर चक्कर लगाती बनी ही रहेंगी। जैसे कि सेक्स चौदह वर्ष की आयु में परिपक्व होता है

ठीक वैसे ही बयालीस वर्ष की आयु में एक नया आयाम खुलता है। क्योंकि प्रत्येक सात वर्ष बाद तुम्हारे अस्तित्व में शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक परिवर्तन होते हैं-

प्रत्येक सात वर्ष बाद।

बचपन सातवें वर्ष में समाप्त हो जाता है,

चौदहवें वर्ष से किशोरावस्था चली जाती है,

और इक्कीसवें वर्ष में फिर नए परिवर्तन होते हैं-

प्रत्येक सात वर्ष बाद, जीवन की लय कुछ और होती है।

बयालीस वर्ष की आयु आने पर एक नया आयाम खुलता है,

प्रार्थना का आयाम, धर्म का आयाम।

और यदि तुम ठीक से तय नहीं कर पाते

और तुम यह समझ नहीं पाते कि तुम्हें क्या करना है

तो तुम रुग्ण हो जाओगे,

तुम सारा सुख-चैन खो दोगे और बेचैन बन जाओगे।

यदि तुम चौदह वर्ष की आयु में प्रेम नहीं कर सकते,

तो तुम बयालीस वर्ष की आयु में प्रार्थना करने में समर्थ न हो सकोगे।

तुम चूकते रहे हो,

और तुम्हारा पूरा विकास एक निरंतरता है।

यदि तुम एक कदम चूक जाते हो तो वह निरन्तरता टूट जाती है।

बच्चा अहंकार इकट्ठा करता है-वह प्रेम नहीं कर सकता,

और न वह किसी अन्य के साथ विश्राममय हो सकता है।

अहंकार निरंतर संघर्ष करता रहता है।

तुम शांत और मौन बैठ सकते हो, लेकिन अहंकार निरंतर संघर्ष करता हुआ केवल यह देखता और निरीक्षण करता रहता है-

कि कैसे वर्चस्व प्राप्त किया जाए कैसे तानाशाह बना जाए

और कैसे संसार भर में सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति बना जाए।

इससे हर कहीं समस्याएं उत्पन्न होती हैं,

मित्रता में, सेक्स में, प्रार्थना, प्रेम और समाज में भी-

तुम प्रत्येक स्थान पर संघर्ष ही में रहते हो।

यहां तक कि अपने माता-पिता के साथ भी, जिन्होंने तुम्हें यह अहंकार दिया था, वहां भी संघर्ष होता है।

ऐसा बहुत कम होता है कि कोई पुत्र अपने पिता को क्षमा कर दे,

बहुत कम कोई पुत्री अपनी मां को क्षमा कर पाती है।

गुरूजिएफ ने अपने कमरे में एक वाक्य लिख छोड़ा था

और वह लोगों पर उसकी प्रतिक्रिया देखा करता था।

यह पूरी तरह से अविश्वसनीय लगता है, कि गुरूजिएफ जैसे व्यक्ति ने दीवार पर ऐसा साधारण वाक्य क्यों लिखा?

वह वाक्य था: " यदि तुम अपने माता और पिता के साथ अभी भी

अपने को सुविधामय और सुगम नहीं पाते हो, तब यहां से चले जाओ, मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। "

आखिर क्यों? क्योंकि यह समस्या एक बिंदु पर खड़ी होती ही है,

और वहीं उसका समाधान भी किया जाना है।

यही कारण है कि पूरब की सारी परम्पराएं यही कहती हैं

अपने पिता को प्रेम करो, अपने पिता का जितनी गहराई तक सम्भव हो सके, सम्मान करो, क्योंकि उस जगह अहंकार उठ खड़ा होता है,

वह उसकी भूमि है। उसका वहीं समाधान या शमन करना है,

अन्यथा वह तुम्हारे अन्दर हर कहीं घूमता ही रहेगा।

अब मनोविश्लेषक ठोकरें खाने के बाद इस तथ्य को जान सके हैं

कि सारा मनोविश्लेषण तुम्हें पीछे उन समस्याओं की ओर ले जाता है जो तुम्हारे माता-पिता और तुम्हारे मध्य बनी रही हैं,

और वह किसी तरह उन्हीं को हल करने का प्रयास करता है।

यदि तुम अपने माता-पिता के साथ के संघर्ष को सुलझा सकते हो

तो बहुत से दूसरे संघर्ष पूरी तरह से मिट जाएंगे,

क्योंकि वे मूल संघर्ष पर ही आधारित हैं।

उदाहरण के लिए एक व्यक्ति जो अपने पिता के साथ सहज और

सुविधामय होकर नहीं रहा है, परमात्मा पर विश्वास नहीं कर सकता,

क्योंकि परमात्मा, पिता की आकृति जैसा है, वह सम्पूर्ण जगत का पिता है। एक व्यक्ति जो अपने पिता के साथ सहज और सुविधामय होकर नहीं रहा है, आफिस में अपने बॉस के साथ भी कभी सहज होकर नहीं रह सकता, क्योंकि वह भी पिता की ही आकृति जैसा है।

एक व्यक्ति जो अपने पिता के साथ सहज और सुविधामय नहीं रहा है, वह अपने सद्गुरु के साथ भी सहज होकर नहीं रह सकता,

क्योंकि वह भी पिता की ही आकृति का है।

अपने माता-पिता के साथ तुम्हारा छोटा सा संघर्ष भी

तुम्हारे सभी सम्बन्धों में निरंतर प्रतिबिम्बित होता रहता है।

यदि तुम अपनी मां के साथ सहज और सुविधामय होकर नहीं रहे हो,

तो तुम अपनी पत्नी के साथ भी सहज होकर नहीं रह सकते,

क्योंकि वह स्त्री का प्रतिनिधित्व करती रहेगी,

और तुम ऐसी स्त्री के साथ सहज और सुविधामय होकर नहीं रह सकते, क्योंकि तुम्हारी मां ही पहली स्त्री है

वह स्त्री का पहला प्रतिरूप और आदर्श है।

यदि तुम अपनी मां से घृणा करते हो

अथवा यदि तुम्हारे मन में कोई विशिष्ट संघर्ष है

यदि तुम अपनी मां के साथ एक लम्बी अवधि तक नहीं रह सकते हो

तुम ऊब कर उससे दूर भाग जाना चाहते हो

तो तुम संसार में किसी भी स्त्री के साथ सहजता और सुविधा का अनुभव न कर सकोगे।

क्योंकि जहां कहीं भी कोई स्त्री है, तुम्हारी मां वहां मौजूद है,

और एक सूक्ष्म रिश्ता निरंतर बना रहता है।

भारत में प्राचीन समय के उपनिषद काल में

जब एक नव विवाहित दम्पत्ति, किसी बुद्ध के निकट आशीर्वाद मांगने जाते थे, तो वह उन्हें दस बच्चों के माता-पिता होने का आशीर्वाद देते थे, और स्त्री से कहते थे:

सदा यह स्मरण रखना कि जब तक तुम्हारा पति

तुम्हारा ग्यारहवां बच्चा न बन जाए

तुम्हारा विवाह करना अधूरा है।

ऐसा आखिर क्यों? पति को ग्यारहवां बच्चा क्यों बनना चाहिए- अन्यथा विवाह पूरा न होकर अधूरा है?

कारण यही है, कि यदि उस पुरुष के अपनी मां से सम्बन्ध सहज रहे हैं वह अपनी पत्नी में भी अंतिम रूप से मां को खोज लेगा।

एक पुरुष बच्चा ही बना रहता है और एक स्त्री जन्मजात मां होती है। इसलिए स्त्री की सर्वोच्च खिलावट

पूरे संसार की मां बनना है।

यही कारण है कि मैं अपनी संन्यासिन को 'मां' कहकर पुकारता हूं। और एक पुरुष का सर्वोच्च शिखर है- बच्चे जैसा बन जाना,

बच्चे की ही भांति निर्दोष हो जाना;

तब पूरा अस्तित्व और पूरा संसार उसके लिए मां बन जाता है यही उसकी सहज स्वाभाविक सम्भावना है-

लेकिन इसके लिए एक व्यक्ति के अपने माता-पिता के साथ सम्बन्ध सहज और सुविधामय होना चाहिए।

वहां अहंकार उत्पन्न हो जाता है, जिससे वहां निपटना होगा, अन्यथा तुम वृक्ष की शाखाएं और पत्तियां काटते रहोगे

और जड़ें अनछुई बनी रहेंगी।

यदि तुम्हारा माता-पिता के साथ सारा विवाद सुलझकर

एक युति बन जाती है

तो इसका अर्थ है कि तुम पूरी तरह विकसित हो गए हो,

अब वहां कोई भी अहंकार नहीं है।

अब तुम यह समझ गए हो कि तब तुम असहाय थे,

अब तुम यह समझते हो कि तुम आश्रित थे,

और तुम संसार के केंद्र भी नहीं थे।

वास्तव में तुम पूरी तरह आश्रित थे,

अन्यथा तुम जीवित ही नहीं रह सकते थे।

इस समझ के साथ अहंकार धीमे-धीमे मिट जाता है,

और जब एक बार तुम जीवन से संघर्ष नहीं कर रहे होते हो तुम विश्राममय, सहज और सरल बन जाते हो।

तब तुम जैसे बहते हो।

तब संसार शत्रुओं से भरा हुआ नहीं होता

वह एक पूरा परिवार होता है, एक आगिक इकाई होता है; और संसार की धारा तुम्हारे विरुद्ध प्रवाहित नहीं होती

तुम उसके साथ बह सकते हो।

यही अर्थ है इस छोटी सी बोध कथा का।

जेन के लोगों और ताओवादियों द्वारा इस बोध-कथा का प्रयोग किया जाता है, और इसमें प्रवेश करने से पूर्व मैं कुछ चीजें इस बारे में-

बताना आवश्यक समझता हूं।

ताओवादी और जेन के लोग हमेशा कन्फ्यूशियस के बारे में

हंसी-मजाक करते रहते हैं।

यह बोध कथा भी वास्तव में एक चुटकुला जैसा ही है,

क्योंकि उनके लिए कन्फ्यूशियस तार्किक मन का एक शिखर है कन्फ्यूशियस उनके लिए पूर्ण अहंकार का एक आदर्श है-

जो बहुत सूक्ष्म, सुसंस्कृत और परिष्कृत है।

कम्प्यूशियस का पूरा दर्शन शास्त्र यही है:

तुम कैसे अपने अहंकार को इस तरह से परिष्कृत करो

कि वह बिना दूसरों के साथ संघर्ष किए हुए भी बना रहे।

यही होता है एक सुसंस्कृत मनुष्य।

एक सुसंस्कृत मनुष्य विनम्र नहीं होता है, नहीं, कभी भी नहीं; एक सुसंस्कृत मनुष्य का अहंकार बहुत सूक्ष्म होता है।

वह बहुत बेईमान और चालाक होता है।

वह अपने अहंकार को किसी भी सम्बन्ध के मध्य नहीं लाएगा। वह उसे छिपाएगा, और वह यह दिखाने का प्रयास करेगा-

कि वह कितना अधिक विनम्र है?

वह मुस्कराएगा और अपना सिर नीचे झुकाएगा,

और तुम यह भली भांति देख सकोगे कि यह केवल कूटनीतिक है।

कनफ्यूशियस कहता है तुम्हें इस संसार में रहने के लिए।

तुम्हें दूसरों के अहंकारों के साथ रहना है

और तुम दूसरों से कैसे व्यवहार करो, तुम्हें इस बारे में

बहुत-बहुत बुद्धिमान और होशियार होना चाहिए।

अन्यथा अनावश्यक परेशानियां उत्पन्न होती हैं।

एक मनुष्य को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इसके लिए कन्फ्यूशियस के पास तीन हजार तीन सौ नियम हैं।

प्रत्येक कदम उठाने के लिए उसने नियम बनाए हैं:

किसी को किस तरह वस्त्र पहनना चाहिए...

ताओवादियों, जेन और कनफ्यूशियस को मानने वालों के मनों के मध्य

इस अंतर को समझने का प्रयास करो।

क्योंकि इसी तरह से पूरे विश्व में, यह भेदभाव बना हुआ है:

एक नैतिक व्यक्ति एक धार्मिक व्यक्ति से भिन्न है।

यह अंतर बहुत सूक्ष्म है।

एक नैतिक व्यक्ति विनम्र बनने का प्रयास करता है:

और एक धार्मिक व्यक्ति विनम्र होता ही है।

एक नैतिक व्यक्ति चारों ओर से विनम्र होने का दिखावा करता है

यह एक ढोंग है, यह उसके द्वारा विकसित की गई एक मुद्रा है।

एक धार्मिक व्यक्ति पूरी तरह विनम्र होता है, वह उसका दिखावा नहीं करता।

यह जानकर कि अहंकार अर्थहीन है

यह जानकर कि अहंकार के बने रहने का कोई आधार ही नहीं है,

यह जानकर कि अहंकार केवल एक बचकाना सपना है

यह जानकर कि वह अज्ञान की एक गलतफहमी है,

एक धार्मिक मनुष्य पूर्ण रूप से निरहंकारी हो जाता है।

वह अहंकार के लिए कोई स्थान खोज नहीं पाता, और वह वाष्प की भांति उड़ जाता है।

ऐसा नहीं कि वह व्यक्ति विनम्र बनता है, नहीं,

वह सामान्य रूप से अहंकार से मुक्त हो जाता है।

जब वहां अहंकार है ही नहीं, तो वह कैसे विनम्र बन सकता है?

केवल अहंकार ही विनम्र बन सकता है, इस लिए कौन विनम्र बनना चाहेगा?

वह सामान्य रूप से जान लेता है कि वह है ही नहीं,

वह इस विराट आंगिक ब्रह्माण्ड का केवल एक छोटा सा खण्ड है।

वह उससे पृथक नहीं है,

इसलिए कौन जा रहा अहंकारी बनने, और कौन जा रहा अहंकारी बनने? वह है ही नहीं।

वह अखण्डरूप से पाता है कि उसके अन्दर केंद्र जैसी कोई चीज है ही नहीं: वह केंद्र है बह्माण्ड में, और वह उसका एक खण्ड है।

धार्मिक लोग कहते हैं कि यदि वहां कोई परमात्मा है,

तो केवल उसे ही 'मैं' शब्द का प्रयोग करने की अनुमति दी जा सकती है, किसी अन्य व्यक्ति को 'मैं' शब्द का प्रयोग करना ही नहीं चाहिए

क्योंकि वहां अस्तित्व में केवल एक ही केंद्र है।

वहां लाखों केंद्र हो ही नहीं सकते, क्योंकि वहां लाखों ब्रह्माण्ड न होकर केवल एक ब्रह्माण्ड है।

इसलिए वहां यदि केंद्र है, तो केवल एक केंद्र ही हो सकता है।

हम सभी उसी में सम्मलित हैं।

लेकिन हम यह दावा नहीं कर सकते कि वह केन्द्र हमारा है।

इसी वजह से जेन कहते हैं विनम्र मत बनो, अनात्मा बनो,

क्योंकि विनम्रता अहंकार की एक चाल है,

वह कुरूप ही न होकर, परिष्कृत अहंकार है।

इसलिए यहां दो तरह के अहंकार हैं

भद्दे और कुरूप अहंकार को तो तुम असभ्य, असंस्कृत,

और अशिक्षित व्यक्तियों में पाओगे।

तब दूसरा है सुसंस्कृत अहंकार,

जो परिष्कृत, परिशुद्ध और बहुत सूक्ष्म होता है;

तुम उसे खोज नहीं सकते, वह हमेशा विनम्रता ओढ़े हुए रहता है। विनम्रता, सादगी-ये सभी उसके मुखौटे और मुद्राएं हैं।

कनफ्यूशियस सभ्य मनुष्यों का एक आदर्श है,

वह सभ्यता में विश्वास करता है और कहता है:

नियमों का अनुसरण करना चाहिए और चूंकि जीवन एक संघर्ष है,

इसलिए कड़े अनुशासन को लगाए जाने की आवश्यकता है।

और किसी व्यक्ति को अनावश्यक रूप से उकसा मत

अपनी ऊर्जा को बचा कर रखो, क्योंकि किसी लड़ाई में तुम्हें उसकी जरूरत होगी।

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के साथ लड़ते ही मत जाओ,

क्योंकि वह अनावश्यक है। अपनी ऊर्जा को बचा कर रखो।

तब जहां वास्तव में जरूरत हो, तुम लड़ सकते हो,

लेकिन वह लड़ाई भी उसके लिए जमीन तैयार कर, मानवीय शक्तियों के विकास के लिए लड़ी जानी चाहिए।

कैसे बैठना चाहिए कैसे खड़े होना चाहिए

कैसे चलना चाहिए कैसे व्यवहार करना चाहिए-

कनफ्यूशियस ने इन सभी के लिए नियम बनाए हैं।

क्योंकि यहां लाखों अहंकार हैं

इसलिए अहंकारों के इस विशाल जंगल के मध्य

यदि तुम अपने लक्ष्य तक पहुंचना चाहते हो,

तुम्हें अपना मार्ग खोज लेना है,

तो अनावश्यक रूप से प्रत्येक व्यक्ति के साथ संघर्ष मत करो।

कहीं से होकर यदि गुजरना है, तो इतनी विनम्रता से गुजरो

कि कोई व्यक्ति तुम्हें बाधा न पहुंचाए।

इसलिए यह विनम्रता एक कूटनीतिक है, यह राजनीतिक है, धार्मिक नहीं है।

कनफ्यूशियस एक धार्मिक व्यक्ति है ही नहीं।

कम्प्यूशियस के कारण ही, चीन साम्यवाद का शिकार बन सका;

क्योंकि कम्प्यूशियस ही चीन की केंद्रीय शक्ति बना रहा।

बहुत से लोग मुझसे पूछते हैं कि ऐसा हुआ कैसे,

कि चीन जैसा एक धार्मिक देश, पूर्ण भौतिकतावादी दर्शन को अपना कर साम्यवाद का शिकार कैसे बन गया है।

यह एक संयोग नहीं है।

चीन में बुद्ध की शिक्षाओं का प्रवेश हुआ;

वहीं लाओत्से और च्यांग्त्सु जैसे बुद्ध निवास करते रहे,
लेकिन वे कभी भी चीन की केंद्रीय शक्ति न बन सके।
केंद्रीय शक्ति कश्चिशयस ही बना रहा,
कनफ्यूशियस और मार्क्स दोनों सहयात्री हैं
इसलिए वहां कोई समस्या उत्पन्न ही नहीं हुई।
भारत के लिए साम्यवादी बनना कठिन है।
लेकिन चीन के लिए साम्यवादी बनना बहुत-बहुत आसान था- और वह भी इतनी अधिक आकस्मिकता और सरलता से,
क्योंकि कनफ्यूशियस की प्रवृत्ति
पूरी तरह राजनीतिक, कूटनीतिक और भौतिकतावादी है।

जेन और ताओवादी हमेशा कम्प्यूशियस के बारे में हास-परिहास करते रहते हैं, और यह बोध कथा, उनमें से ही एक सूक्ष्म परिहास है।
इसे समझने का प्रयास करें।

कनफ्यूशियस लुलियांग के विशाल जलप्रपात को देख रहा था।
वह दो सौ फीट की ऊंचाई से नीचे गिरता है,
और उसके झाग पंदह मील दूर तक पहुंचते हैं।
मछली-घड़ियाल जैसे जीव भी उसके प्रवाह में जीवित नहीं रह पाते। फिर भी कनफ्यूशियस ने एक वृद्ध व्यक्ति को उसके अन्दर जाते हुए देखा।
यह सोचते हुए कि वह वृद्ध, किसी मुसीबत से पीड़ित होकर ही
अपने जीवन को समाप्त करने के लिए इच्छुक है
कनफ्यूशियस ने अपने एक शिष्य को आदेश दिया:
कि वह किनारे-किनारे दौड़ते हुए वहां जाकर
उसे बचाने का प्रयास करे।
तभी उसे वह वृद्ध व्यक्ति दस कदम आगे
जल से बाहर अपना सिर निकालता दिखाई दिया।
उसके केश जल के ही साथ बहे जा रहे थे
और वह मस्ती से गीत गाता किनारे की ओर बढ़ रहा था।
कनफ्यूशियस अपने शिष्य का पीछा करता वहां आ पहुंचा;
और उसने वृद्ध व्यक्ति की ओर आश्चर्य से देखते हुए कहा:
श्रीमान! मैं सोच रहा था कि आप एक दिव्यात्मा हैं,
लेकिन अब मैं देख रहा हूं कि आप एक मनुष्य हैं।
कृपया मुझे बताने का कष्ट करें
कि इस उफनते और तीव्र गति से वहते जल के साथ सम्बन्ध जोड़ने का आखिर कौन-सा मार्गहै?

कनफ्यूशियस को यह लगभग असम्भव दिखाई देता है

कि इतने बड़े जलप्रपात में

जिसके साथ नदी दो सौ फीट ऊंचाई से नीचे गिर रही हो

और इतना अधिक झाग उत्पन्न कर रही हो, जो पंद्रह मील दूर तक फैला है, एक वृद्ध व्यक्ति स्नान करने जा रहा हो, नदी की वेगमान धारा में

स्नान करना तो असम्भव है।

प्रपात की प्रचण्ड ऊर्जा उस व्यक्ति को मार डालेगी,

वह तेज प्रवाह की शक्ति द्वारा चट्टानों से टकरा कर नीचे तली में पहुंच जाएगा।

पहले उसका खयाल था कि यह व्यक्ति

जरूर आत्महत्या करने के लिए ही आया है

क्योंकि तुम इस जलप्रपात से बाहर जीवित नहीं निकल सकते।

इसलिए उसने अपने एक शिष्य से कहा, कि वह किनारे-किनारे जाकर उसे बचाने का प्रयास करे।

लेकिन वह व्यक्ति तभी उछला और तब कुछ कदम आगे

वह पूरी तरह से जीवित नदी के बाहर निकल कर आया।

यह अविश्वसनीय था।

क्यों? कनफ्यूशियस के लिए वह अविश्वसनीय क्यों था?

क्योंकि वह संघर्ष और युद्ध करने में विश्वास रखता है

वह नहीं जानता कि प्रकृति के साथ कैसे बहा जाता है, कैसे प्रवाहित हुआ जाता है।

यही परिहास है इसमें, कि वह इतना भी नहीं जानता।

जो जान सके,

कि कैसे तैरा जाए सभी नियम और कायदे इसके लिए तो बनाए गए हैं।

लेकिन वह इतना भी नहीं जानता कि नदी के साथ कैसे बहा जाए?

वह समर्पण के रहस्य के बारे में कुछ भी नहीं जानता।

इसलिए वह अपनी आंखों पर विश्वास ही न कर सका।

उसका खयाल था कि इस व्यक्ति को जरूर कोई दिव्य आत्मा होना चाहिए: क्योंकि भौतिक शरीर तो प्रपात के नीचे जीवित रह ही नहीं सकता,

क्योंकि वह सभी नियमों के विरुद्ध है।

वह उस व्यक्ति के पीछे भागा और जब उसे पकड़ पाया तो उससे पूछा: श्रीमान्! मेरा खयाल था कि आप कोई दिव्यात्मा हैं,

लेकिन अब मैं देख रहा हूं कि आप तो एक मनुष्य हैं।

कृपया मुझे बताएं: इस तरह के जल के साथ सम्बन्ध जोड़ने का कौन-सा मार्ग है?

तुमने एक चमत्कार किया है: यह अविश्वसनीय है।

क्या ऐसा कोई विशिष्ट मार्ग है, जिससे इस जल प्रवाह के साथ सम्बन्ध जोड़ा जा सके?

कनफ्यूशियस हमेशा रास्तों, विधियों, उपायों और मार्ग पर विश्वास करता है। अहंकार का विश्वास इसी तरह से होता है।

यहां ऐसे लोग भी हैं, जो मेरे पास आते हैं, और मुझसे पूछते हैं :

प्रेम में कैसे गिरा जाए? क्या इसका कोई रास्ता है?

कैसे प्रेम में पड़ा या गिरा जाए?

वे इसके लिए कोई मार्ग कोई विधि या कलापटुता के बाबत पूछते हैं। वे नहीं जानते कि वे क्या पूछ रहे हैं?

प्रेम में गिरने का अर्थ ही है कि अब वहां न कोई रास्ता है, न कोई विधि है और न कलापटुता ही किसी काम आ सकती है,

इसी वजह से इसे 'गिरना' या 'पड़ना' कहते हैं:

अब तुम और अधिक उसके नियंत्रणकर्त्ता न रहे, तुम पूरी तरह गिर गए। इसी कारण जो लोग बुद्धि प्रधान हैं

वे कहेंगे प्रेम अंधा होता है

जब कि केवल प्रेम के पास ही आंख होती है, एक दृष्टि होती है,

लेकिन वे कहेंगे कि प्रेम अंधा है और वे सोचेंगे,

कि यह व्यक्ति तो पागल हो गया है। उसके पागल दिखाई देने का तर्क है, क्योंकि तर्क ही सबसे बड़ा नियंत्रक है।

किसी भी चीज पर जब नियंत्रण खो जाता है

तर्क को वह चीज खतरनाक लगने लगती है।

इसीलिए कनफ्यूशियस ने मार्ग के लिए पूछा:

तुम कैसे इस तरह की नदी के साथ व्यवहार करते हो?

तुम कैसे उन भयंकर भंवरों में जीवित बने रहते हो, श्रीमान!

इसमें जरूर कोई कला पटुता अथवा यांत्रिक कौशल होना चाहिए।

यह मन तकनीकी प्रधान है,

संसार में सारी तकनीक और विधियां मन ने ही सृजित की हैं।

लेकिन यहां मनुष्य के हृदय का भी संसार है और यहां मनुष्य के अस्तित्व और चेतना का भी एक पृथक संसार है

जहां कोई भी तकनीक सम्भव ही नहीं है।

सभी तकनीकी ज्ञान पदार्थ के साथ ही सम्भव है:

चेतना के साथ कोई भी तकनी कें सम्भव ही नहीं हैं।

वास्तव में नियंत्रण करना सम्भव नहीं है

नियंत्रण करने का अधिक प्रयास ही

अथवा कोई चीज प्रयास से घटे, यह धारण ही अहंकारपूर्ण है।

कनफ्यूशियस यह जानता ही नहीं कि यहां समर्पण जैसी भी कोई चीज होती है।

यदि तुम नदियों के प्रेमी और दीवाने रहे हो,

और यदि तुम उनमें तैरने का आनंद लेते रहे हो,

तो जो कुछ उस वृद्ध व्यक्ति ने कहा, तुम उसे समझ जाओगे।

मुझे स्वयं नदियों से अत्यधिक प्रेम रहा है

और एक भंवर में गिरना मेरे सबसे अधिक सुन्दर अनुभवों में से एक है। बरसात में जब कि नदियों में बाढ़ आई हुई हो,

तो बहुत ही शक्तिशाली और खतरनाक भंवर उत्पन्न हो जाते हैं।

पानी एक पेच की तरह तेजी से गोल-गोल घूमने लगता है।

यदि तुम भंवर में फंस जाओ,

तो तुम बलपूर्वक नदी के तल की ओर खींच लिए जाओगे,

और तुम जितने गहरे जाओगे, वह भंवर और शक्तिशाली बन जाता है। अहंकार की स्वाभाविक प्रवृत्ति उसके साथ लड़ने और संघर्ष करने की होती है, क्योंकि निश्चित ही सामने मृत्यु खड़ी दिखाई देती है

और अहंकार को मृत्यु से बहुत अधिक भय लगता है।

अहंकार उस भंवर के साथ लड़ने का प्रयास करता है,

और यदि तुम एक बाढ़ग्रस्त नदी में

अथवा किसी जलप्रपात के निकट, जहां पानी में बहुत से भंवर पड़ते हैं- किसी भंवर के साथ संघर्ष करते हो तो तुम मिट जाओगे,

क्योंकि भंवर इतना अधिक शक्तिशाली होता है कि तुम उससे लड़ नहीं सकते।

हिंसा और संघर्ष से कुछ नहीं होने का-

तुम उसके साथ जितना अधिक लड़ोगे, तुम उतने ही कमजोर

और शिथिल होते जाओगे,

क्योंकि भंवर तुम्हें अपनी ओर खींचता चला जाता है, और तुम उससे लडू रहे होते हो।

लड़ने के प्रत्येक प्रयास के साथ, तुम अपनी शक्ति खोते जाते हो।

शीघ्र ही तुम थक जाओगे और भंवर तुम्हें नीचे की ओर चूस लेगा।

और यह भंवर ऐसी ही एक महत्वपूर्ण चीज है:

सतह पर तो यह चक्कर बहुत बड़ा होता है;

लेकिन तुम जितने गहरे जाओ यह घेरा या चक्कर

छोटे सा छोटा होता जाता है-

बहुत अधिक शक्तिशाली, लेकिन आकार में छोटे से छोटा।

और करीब-करीब भंवर के तल में जाकर वह इतना अधिक छोटा हो जाता है कि तुम बिना संघर्ष के सरलता से उससे बाहर हो जाते हो।

वास्तव में भंवर तुम्हें स्वयं अपने से बाहर तल के निकट फेंक देता है। लेकिन तुम्हें उसके तल तक पहुंचने की प्रतीक्षा करनी होगी।

यदि तुमने सतह पर ही संघर्ष करना शुरू कर दिया, जो तुम करते हो, तो तुम जीवित नहीं बच सकते।

मैंने बहुत से भंवरों को आजमाया है;

और उनका अनुभव बहुत प्यारा है।

यह ठीक वैसा ही है, जैसा कि गहरे ध्यान में घटता है,

क्योंकि वहां तुम संघर्ष नहीं करते हो।

जब तुम्हारे अन्दर का अस्तित्व श्वांस बाहर फेंकते हुए जमुहाई लेता है

तो एक खाई जैसा द्वार खुल जाता है, जो भंवर जैसा ही चक्र है।

यदि तुम संघर्ष करना शुरू कर देते हो, तो तुम कुचल दिए जाओगे।

तुम्हें केवल उसे स्वीकार करना है, पूरी तरह से उसके साथ ही गति करो। उसके साथ संघर्ष मत करो।

तुम उसके साथ-साथ ही गतिशील रहो: वह जहां ले जाए जाओ।

अपनी ऊर्जा सुरक्षित रखो, ऊर्जा का एक अणु भी नष्ट न हो,

क्योंकि तुम संघर्ष नहीं कर रहे हो, तुम अपने अन्दर खुली उस शून्यता की खाई जैसे चक्र के साथ घूम रहे हो,

तुम पूरी घटना का आनंद ले रहे हो,

जैसे मानो तुम चक्रवात के पंखों पर सवार होकर उड़े जा रहे हो।

एक क्षण के अन्दर ही तुम उसके तल द्वारा खींच लिए जाओगे,

क्योंकि उस भंवर में ऊर्जा व शक्ति होती है। वह बहुत से लोगों को मार देती है। और नीचे के तल के निकट, तुम सरलता से सरक कर बाहर आ सकते हो यहां तक कि बाहर सरक कर आने की भी जरूरत नहीं

तुम सरक कर बाहर आ ही जाओगे, क्योंकि वह स्थान इतना छोटा है

कि वह तुम्हें अपने साथ नहीं रख सकता।

ठीक ऐसा ही गहरे ध्यान में भी होता है।

तुम्हें दम घुटने जैसा अनुभव होता है, तुम्हें लगता है कि किसी चीज ने तुम्हें पकड़ कर अपने अधिकार में ले लिया है,

कोई चुम्बकीय शक्ति तुम्हें अपनी ओर खींच रही है।

तुम संघर्ष और प्रतिरोध करना शुरू कर देते हो।

यदि तुम प्रतिरोध करते हो, केवल तभी तुम्हारी ऊर्जा चूस ली जाती है।

जीसस एक बहुत अविश्वसनीय बात कहते हैं।

और ईसाइयों की समझ में नहीं आता कि वे कैसे उसकी व्याख्या करें? इन दो हजार वर्षों में भी वे उसका अर्थ समझने में समर्थ नहीं हो सके हैं।

जीसस कहते हैं; बुराई तक का प्रतिरोध मत करो।

वह भले ही बुराई हो, दुष्टता हो, उसका प्रतिरोध मत करो।

क्योंकि यदि तुम प्रतिरोध करोगे, तो बुराई जीत जाएगी।

तुम्हारे पास इतनी थोड़ी सी ऊर्जा है, प्रतिरोध करके उसे नष्ट मत करो।

यदि तुमने बहुत संघर्ष किया, तो हार निश्चित है।

लडो ही मत, और कोई भी तुम्हें हरा नहीं सकता।

भले ही अत्यधिक दानवी शक्ति, शैतान भी वहां हो,

यदि तुम उससे लड़े नहीं, तो वह तुम्हें हरा नहीं सकता।

यदि तुमने लड़ना शुरू कर दिया, तो तुम पहले ही पराजित हो गए।

यदि लड़े तो असफलता पूरी तरह निश्चित है;

यदि नहीं लड़े, तो असफल होने की कोई सम्भावना ही नहीं।

क्योंकि यदि तुम लड़े ही नहीं, तो तुम असफल हो कैसे सकते हो?

यही जूडो और जू-जिल्लू की कला है: न लड़ने की।

जापान में उन्होंने ओ की अत्यन्त सूक्ष्म कला विकसित की है।

जो व्यक्ति जूडो में प्रशिक्षित किया जाता है, उसे पराजित नहीं किया जा सकता,

क्योंकि वह लड़ता ही नहीं। भले ही तुम उस पर प्रहार करो,

तुमने अपने प्रहार या चोट करने के द्वारा जो ऊर्जा फेंकी है, वह उसे अवशोषित कर लेता है।

वह प्रतिरोध नहीं करता; वह लड़ता ही नहीं।

और कुछ ही मिनटों में एक बहुत मजबूत व्यक्ति भी,

एक निर्बल व्यक्ति के द्वारा, यदि वह ओ जानता है, हराया जा सकता है।

तुम अपने चारों ओर भी कई बार ऐसा होते हुए देखते हो।

प्रतिदिन तुम छोटे-छोटे बच्चों को पूरे दिन गिरते हुए देखते हो।

वे गिरते हैं और वे फिर उठ खड़े होते हैं, और वे उसके बारे में भूल जाते हैं। लेकिन यदि तुम एक छोटे बच्चे की भांति गिर जाओ,

तो तुम्हें हमेशा अस्पताल की ही शरण लेनी होगी।

क्या होता है, जब एक बच्चा नीचे गिरता है?

वह पूरी तरह से गिर जाता है; वह कोई रुकावट खड़ी नहीं करता।

वह पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति और खिंचाव के साथ गतिशील होता है।

वह समग्रता से गिर ही जाता है, कोई बाधा खड़ी नहीं करता, जैसे एक तकिया नीचे गिर जाता है।

जब तुम नीचे गिरते हो तो तुम प्रतिरोध करते हो। पहले तुम न गिरने का प्रयास करते हो।

तुम्हारा रेशा-रेशा, तुम्हारी सारी अस्थियां खिंच कर तनावग्रस्त हो जाती हैं। जब तनी हुई हड्डियां और तनाव से भरा हुआ नाड़ी संस्थान,

संघर्ष करते हुए अनिच्छा से नीचे गिरता है, तब बहुत सी चीजें टूट जाती हैं, गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण नहीं, बल्कि तुम्हारे प्रतिरोध के कारण।

कभी-कभी तुमने किसी शराबी को सड़क पर गिरते, और नीचे नाली में पड़े हुए देखा होगा-उसे कुछ भी नहीं होता

सुबह होते ही वह पूरी तरह से ठीक हो जाता है।

वह आफिस जाता है और हर रात नशा कर वह फिर गिरता है।

वह जरूर ही कोई तरकीब जानता है, जिसे तुम नहीं जानते।

आखिर वह ऐसा क्या जानता है? बहुत साधारण सी बात है-

वह इतना अधिक नशे में धुत होता है कि वह प्रतिरोध नहीं कर सकता। वह कोई बाधा खड़ी न कर पूरी तरह से गिर जाता है

जैसे कोई पंख, बिना किसी अन्दर के प्रतिरोध के उड़ान भरने के बाद नीचे गिर जाता है,

यही कारण है कि वह सुबह पूरी तरह फिर से ठीक होकर

हंसता-मुस्कराता दफ्तर चल पड़ता है।

यदि तुम किसी शराबी की भांति गिर पड़, तो तुम्हें तुरंत अस्पताल भेजना होगा

कई हड्डियां टूट चुकी होंगी,

और वह हड्डियां तुम्हारे संघर्ष करने के कारण ही टूटती हैं।

ओ में वे किसी व्यक्ति को न लड़ने के लिए ही प्रशिक्षित करते हैं।

यदि कोई तुम पर आक्रमण करता है तुम पूरी तरह से उस आक्रमण को अपने अन्दर अवशोषित कर लेते हो।

यदि वह तुम्हारे सिर पर प्रहार करता है, तुम उस प्रहार को सोख लेते हो। जब कोई व्यक्ति तुम्हारे सिर पर प्रहार करता है,

तो ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा उसके हाथ में आ जाती है।

यदि तुम लड़ते हो, तो दो ऊर्जाएं एक दूसरे से टकरा कर नष्ट हो जाती हैं। यदि तुम नहीं लड़ते हो, तो तुम ग्रहणशील या ग्राहक बन जाते हो।

यह बहुत कठिन कला है। इसे सीखने में वर्षों लग जाते हैं,

क्योंकि अहंकार बार-बार आड़े आ जाता है।

यदि एक बार तुम यह दक्षता प्राप्त कर लेते हो,

तब तुम अपने शत्रु की पूरी ऊर्जा को अवशोषित कर लेते हो।

और शीघ्र ही, अपनी ऊर्जा बाहर फेंक कर शत्रु निर्बल हो जाता है,

और तुम धीमे- धीमे और अधिक शक्तिशाली बन जाते हो।

वह अपने ही प्रयास के द्वारा हार जाता है

और तुम बिना किसी प्रयास के जीत जाते हो।

यही तो कहा था उस वृद्ध व्यक्ति ने।

नहीं? उस वृद्ध व्यक्ति ने उत्तर दिया:

न कोई उपाय है, और न कोई मार्ग।

मैं डुबकी लगाकर, भंवर के साथ गोल-गोल घूमते हुए उसके बाहर आ जाता हूं।

मेरे पास कोई रास्ता नहीं है। यह सब कुछ गोल-गोल घूमता हुआ भंवर ही करता है।

मैं उसके अन्दर आता नहीं, मैं उसके ही साथ घूमता हूं..

उस चक्र के साथ गोल-गोल घूमते हुए उसके ही साथ नीचे आकर मैं भंवर के बाहर हो जाता हूं।

मैं केवल अपने को जल के प्रवाह और गति के अनुकूल बना लेता हूं।

मनुष्य की सभी समस्याओं का यही एक समाधान है। कठिनाई केवल यह है-

अहंकार पूरे संसार को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है,
एक व्यक्ति जिसके पास कोई अहंकार नहीं है,
वह स्वयं संसार के अनुकूल बन जाता है।
वास्तव में यह कहना भी ठीक नहीं है कि वह अनुकूल बनता है-
सामान्य रूप से वह पाता है कि वह उसके अनुकूल हो गया है।
अहंकार प्रत्येक चीज को अपने अनुकूल बनाना चाहता है

यह बच्चों की तरह बहुत बचकाना कार्य है।
एक बच्चा चाहता है कि प्रत्येक बात सोचते ही तुरंत पूरी हो जाए;
वह जो भी इच्छा करे, उसे तुरंत पूरा होना चाहिए।
यदि वह चांद भी चाहता है,
तो चांद को भी ठीक अभी प्राप्त होना चाहिए।
वह प्रतीक्षा भी नहीं कर सकता।
एक बच्चा चाहता है कि प्रत्येक चीज और प्रत्येक व्यक्ति उसके अनुकूल बन जाए।
बच्चा एक तानाशाह होता है, और जब भी एक बच्चे का
परिवार में जन्म होता है, वह पूरे वातावरण को बदल देता है।
वह प्रत्येक व्यक्ति को अपना सेवक बना लेता है,
उसकी तानाशाही का कहीं अंत नहीं होता-
और इसी बचपन में ही अहंकार का जन्म होता है।
अहंकार सबसे अधिक अविकसित चीज है
वह एक बचकानापन और अपरिपक्वता है,
जो नहीं जानती कि वह क्या कर रही है?
तुम हो कौन? पूर्ण अस्तित्व को तुम्हारे अनुकूल क्यों होना चाहिए?
तुम सागर की ठीक एक लहर की भांति हो;
और तुम प्रयास कर रहे हो, और सागर को अपने अनुकूल बनाना चाह रहे हो स्पष्ट रूप से यह निपट मूर्खता और छूता है।
पूर्ण अस्तित्व को तुम्हारे अनुकूल बनने की कोई आवश्यकता नहीं है,
यह कभी सम्भव हो ही नहीं सकता; यह असम्भव है।
तुम इसके बारे में कितना भी सोचो, लेकिन तुम असफल होगे ही।
अहंकार सदैव असफल ही होता है, क्योंकि वह असम्भव की मांग करता
नेपोलियन, हिटलर और सिकंदर इन सभी से पूछो;
अंत में वे सभी बुरी तरह असफल हुए।
अत्यधिक धनी व्यक्ति-उनसे भी पूछो, उन्होंने बहुत अधिक धन संचित कर लिया;
लेकिन अंत में वे अपने गहरे में असफलता का अनुभव करते हैं।
तुम कई तरह से शक्ति का संचय कर सकते हो

लेकिन अंत में तुम्हें असफल ही होना है। अहंकार कभी भी विजेता नहीं बन सकता।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बच्चे को कहानियां सुना रहा था।

मैं भी उन्हें सुन रहा था और बच्चा नई कहानी सुनाने का आग्रह कर रहा था। इसलिए उसने एक नई कहानी की ईजाद करते हुए कहा:

वहां एक कीड़ा रहता था, जो सुबह जल्दी जाग जाने वाला कीड़ा था।

वह सुबह-सुबह ब्रह्ममुहूर्त में ही, यह सोचते हुए उठ जाता था-

क्योंकि धार्मिक और नीतिवादी शिक्षक हमेशा कहते हैं

कि सुबह जल्दी उठना बहुत सुन्दर चीज है।

लेकिन एक दिन वह और भी जल्दी सुबह जाग जाने वाली चिड़िया द्वारा पकड़ लिया गया, जिसका स्वयं उस धार्मिक धारणा पर यह विश्वास था, कि जल्दी जाग जाना शुभ होता है।

बच्चा बहुत अधिक उत्तेजित होकर बोला:

फिर उस दूसरे कीड़े का क्या हुआ?

आपने कहा था कि एक कीड़ा सुबह जल्दी उठ जाता था-और दूसरा? मुल्ला ने कहा: हां वह देर से उठने वाला बहुत आलसी जीव था।

लेकिन एक बच्चे ने जब उसे सोते हुए पाया तो उसे मार डाला।

बच्चा थोड़ी सी उलझन में पड़ गया। उसने पूछा:

लेकिन इस कहानी का आदर्श वाक्य क्या है?

मुल्ला ने कहा: आदर्श वाक्य यही है- कि तुम कभी भी जीत नहीं सकते।

तुम चाहे कुछ भी करो, जल्दी उठो या देर से,

अंत में प्रत्येक व्यक्ति को मरना ही है।

यह अहंकार के बारे में पूरी तरह से सत्य है-तुम कभी जीत नहीं सकते। चाहे कुछ भी करो तुम भले ही अच्छा बनो या सदाचारी,

पर यदि यह सदाचार और अच्छाई अहंकार पर आधारित है

तुम कभी भी जीत नहीं सकते, क्योंकि तुम्हारे पास हार का बीज तुम्हारे अन्दर पहले ही से मौजूद है।

तुम लोगों की सेवा कर सकते हो, एक बहुत बड़े समाज सेवक बन सकते हो

लेकिन उसका आधार यदि अहंकार है, तो तुम कभी जीत नहीं सकते। तुम लाखों अच्छे कार्य कर सकते हो, लेकिन यदि अहंकार है वहां,

तो वहां विष ही है। तुम जो कुछ भी करोगे, वह उसे विषैला बना देगा। चाहे गरीब बनो या अमीर, धार्मिक बनो या अधार्मिक:

नास्तिक बनो या आस्तिक नैतिक बनो या अनैतिक:

अपराधी बनो या संत-इससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता।

यदि वहां अहंकार है, तो तुम कभी भी जीत नहीं सकते,

क्योंकि अहंकार ही असफलता का बीज है।

और यदि वहां अहंकार नहीं है तो तुम्हें पराजित नहीं किया जा सकता। क्योंकि वहां कोई है ही नहीं; जिसे हराया जा सके।

तुम्हारी विजय सुनिश्चित है।

यही जेन की सबसे अधिक रहस्यमय सिखावन है।

पूर्ण अस्तित्व के साथ सहमत होकर उसके ही साथ बने रहो, उसके ही साथ गति करो;

नदी के साथ बहो, यहां तक कि तैरो भी मत।

लोग धारा के विरुद्ध तैरने का प्रयास करते हैं

और तब वे हार जाते हैं।

तैरो भी मत। क्या तुम उसके साथ बह नहीं सकते?

क्या तुम यह स्वीकार नहीं कर सकते कि नदी तुम्हें अपने साथ ले चले? नदी को स्वीकृति दो। तुम बस उसके साथ बहो।

जीवन-सरिता के साथ विश्रामपूर्ण होकर रहो, और वह तुम्हें जहां ले जाए वहां जाओ।

वह सागर तक पहुंचती ही है, तुम्हें फिक्र करने की कोई जरूरत ही नहीं है।

उस वृद्ध व्यक्ति ने कहा:

मैं केवल अपने को जल के प्रवाह और गति के अनुकूल बना लेता हूं न कि जल को अनुकूल बनाने का प्रयास करता हूं।

यह तुम्हारा पक्का स्मरण बन जाए।

यह अडिग होश ही तुम्हारी अत्यधिक सहायता करेगा।

तुम्हें जब भी ऐसा लगे कि तुम संघर्ष करने जा रहे हो, विश्रामपूर्ण हो जाओ। चाहे जैसी भी स्थिति हो, तुम बस वही, लड़ाई में पड़ ही मत,

और तब निश्चित है, तुम लक्ष्य तक स्वयं पहुंच जाओगे।

वास्तव में तब वहां भविष्य के लिए कोई लक्ष्य होता ही नहीं;

ठीक अभी, इसी प्रामाणिक क्षण में, तुमने उसे प्राप्त कर लिया है-

प्रकृति के साथ सहज, सरल और विश्राम पूर्ण होकर बहो

प्रकृति को अपनी चाल से चलने की अनुमति दो,

किसी भी तरह से उसे बलात विवश मत करो।

हिंसक और आक्रामक न होकर निष्क्रिय बने रहो।

ठीक उसी तरह जैसे एक छोटा बच्चा अपने पिता के साथ टहलने जाता है- पिता जहां भी जाता है, बच्चा खुश-खुश, बिना यह जाने हुए कि वह कहां जा रहा है,

और क्यों जा रहा है, उसके साथ-साथ जाता है।

यदि पिता, बच्चे की हत्या करने भी जा रहा है

फिर भी बच्चे के लिए वहां कोई समस्या होती ही नहीं।

ईसाइयों में एक कहानी कही जाती है।

एक बार एक आदमी को ऐसा खयाल आया, कि उसे परमात्मा ने अपने बेटे को जान से मार देने का आदेश दिया है।

इसलिए उसने बेटे को अपने साथ जंगल में ले चलने का निश्चय किया। यह जानकर उसका पुत्र बहुत हर्षित और उत्तेजित था।

तड़के सुबह होते ही उन्हें चल पड़ना था।

और बेटा आधी रात को ही जागकर पिता से पूछने लगा-

हम लोग जंगल में कब चलेंगे?

पिता बहुत परेशान था, क्योंकि वह तो जंगल में अपने पुत्र को मारने ले जा रहा था,

और पुत्र इतना अधिक उत्तेजित और व्यग्र था,

वह नहीं जानता था कि वहां क्या होने जा रहा था?

लेकिन उस आदमी को परमात्मा की आवाज पर पूरा भरोसा था,

अपने परमपिता की बात का उस आदमी को पूरा विश्वास था,

और बच्चे को अपने पिता पर विश्वास ही नहीं, पूरी श्रद्धा थी।

पिता बच्चे को लेकर जंगल चला, और बच्चा बहुत खुश था।

वह कभी भी आज तक जंगल गया ही नहीं था।

तब पिता ने अपनी तलवार की धार तेज बनाना शुरू किया

जिससे वह उसे मारने जा रहा था।

बच्चा बहुत उत्तेजना के साथ पिता की सहायता कर रहा था। पिता अन्दर ही अन्दर रो रहा था, क्योंकि यह बच्चा इस बात को- नहीं जानता कि अब क्या घटने जा रहा था।

तभी बच्चे ने पूछा: आप इस तलवार से क्या करने जा रहे हैं? पिता ने कहा: तुम नहीं जानते मैं तुम्हें मारने जा रहा हूं।

और बच्चा हंस पड़ा। वह बहुत आनंदित था। उसने पूछा-कब वह पहले ही से तैयार था।

यही है वह जिसका अर्थ होता है-साथ-साथ बहना।

पिता ने तलवार ऊपर उठाई

और बच्चे ने मुस्काते हुए खुश-खुश अपना सिर नीचे झुका दिया: वह एक खेल था।

मैं नहीं जानता कि यह कहानी सत्य है अथवा नहीं

लेकिन यह सच्ची प्रतीत होती है, उसे सच होना भी चाहिए। क्योंकि यह अपने साथ एक गहरा अर्थ लिए हुए है।

ठीक तभी बीच ही में एक आवाज सुनाई दी;

'रुक जा? तूने मुझ पर भरोसा किया, और यह पर्याप्त है।'

और बच्चा कह रहा था: पिता जी! आप रुक क्यों गए?

इसे पूरा कीजिए। यह खेल बहुत अच्छा है।

बच्चा तो खेलने के मूड में था।

जब तुम जीवन पर श्रद्धा करते हो, तुम परमात्मा पर भी श्रद्धा करते हो,

क्योंकि जीवन ही परमात्मा है और वहां कोई दूसरा परमात्मा नहीं है।

जब तुम श्रद्धा रखते हुए उसके साथ बहते हो, तो मृत्यु भी अपना स्वभाव बदल देती है।
तब वहां कोई मृत्यु होती ही नहीं।
तुमने उससे पृथक कभी रहने का प्रयास किया ही नहीं,
इसलिए तुम मर कैसे सकते हो?
अखण्ड सदैव जीवित रहता है: केवल व्यक्तिगत और अलग-अलग लोग आते हैं और जाते हैं
लहरें आती-जाती रहती हैं: सागर वैसा ही बना रहता है।
अहंकार की एक पृथक लहर की भांति, तुम स्वयं अपने पर ही विश्वास नहीं करते।
तुम कैसे मर सकते हो?
तुम अखण्ड के साथ, हमेशा-हमेशा बने ही रहोगे।
तुम पहले भी रहे हो, जब तुम थे ही नहीं,
और जब तुम सोच रहे हो कि तुम हो, तुम ठीक अभी उसे जी रहे हो,
और तुम आगे भी रहोगे, जब तुम इस स्थान पर नहीं होगे।
तुम्हारा अखण्ड से अलग होने का सपना ही अहंकार है,
और अहंकार ही संघर्ष उत्पन्न करता है।
संघर्ष के द्वारा ही तुम बिखर जाते हो, और मर जाते हो।
संघर्ष के द्वारा ही तुम दुःखी होते हो।
संघर्ष के द्वारा ही तुम वह सब कुछ खो देते हो, जिसे पाना तुम्हारे लिए सम्भव था-
तुम्हारे ऊपर लाखों आशीष बरसना सम्भव हैं।
सम्भवत: प्रत्येक क्षण एक वरदान बन जाए
संभवत: प्रत्येक क्षण एक परमानंद बन जाए लेकिन तुम चूकेजा रहे हो। तुम चूक रहे हो, क्योंकि तुम संघर्ष कर रहे हो।

उस वृद्ध व्यक्ति ने कहा:
मैं केवल अपने को जल के प्रवाह और गति के अनुकूल बना लेता हूं न कि जल को अनुकूल बनाता हूं
और मैं अपनी इसी कार्य प्रणाली से
उससे सम्बन्ध जोड़ने में समर्थ होता हूं।

लेकिन यह कोई विधि नहीं है, यह कोई तकनीक भी नहीं है, और न कोई मार्ग है;
यह केवल एक समझ है।
और स्मरण रहे, अंत में या अहंकार रह सकता है अथवा समझ।
दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते।
यदि अहंकार रहता है, तो तुम्हारे पास समझ नहीं होती;
तुम ठीक एक अज्ञानी बच्चे की भांति होते हो,
जिसे यह विश्वास होता है कि वह ही पूरे संसार का केंद्र है,
और खोजने पर जब तुम ऐसा नहीं पाते, तो तुम दुखी हो जाते हो।
जब तुम अपने को संसार का केंद्र होना नहीं पाते, तो तुम अपना नर्क निर्मित कर लेते हो।

समझ का अर्थ होता है-सम्पूर्ण स्थिति की समझ।

अपने जीवन की सभी घटनाओं को,

अन्दर और बाहर समग्रता से देखते ही अहंकार विसर्जित हो जाता है। समझ के साथ अहंकार रहता ही नहीं,

समझ ही मार्ग है, वही एक रास्ता है।

तब तुम एक सहमति में, एक लय और तान के साथ

जीवन के साथ कदम-कदम चलते हो

और अचानक तभी तुम्हें ऐसा अनुभव होता है

कि तुम जल के उस भंवर के साथ गोल-गोल घूमते हुए गोता लगाकर नीचे तल में पहुंच कर, उस भंवर के बाहर निकल आए हो।

और यह खेल शाश्वत है-

चक्र के साथ गोल-गोल घूमते हुए नीचे गहराई में जाकर-

तुम संसार के भंवर जाल से मुक्त हो जाते हो-

यह खेल शाश्वत है।

इसी को हिन्दु 'लीला' कहते हैं,

ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का यह महान खेल निरंतर चल रहा है।

तुम कभी एक लहर की भांति आते हो और तब तुम विलुप्त हो जाते हो। तब तुम फिर एक लहर की भांति आते हो, और तुम मिट जाते हो।

और यह खेल निरंतर चला जा रहा है,

न उसका कोई आदि है और न अंत।

अहंकार का प्रारम्भ भी है, और अहंकार का अंत भी है,

लेकिन बिना अहंकार के तुम, अनादि और अनंत हो।

तुम्हीं हो वह अखण्ड शाश्वतता,

लेकिन अखण्ड में, अखण्ड के साथ पूरी तरह सहमत होते हुए।

अखण्ड के विरुद्ध संघर्ष करते हुए

तुम स्वयं अपने लिए ही एक दुःस्वप्न हो।

इसलिए या तो वहां अहंकार होता है अथवा होती है समझ।

चुनाव तुम्हारा है।

यहां विनम्र होने की कोई भी आवश्यकता नहीं है,

केवल समझ ही पर्याप्त है।

और यह ऐसा है, जैसे मानो तुम अंधेरे कमरे में एक मोमबत्ती जला दो और अचानक अंधेरा वहां रहता ही नहीं।

क्योंकि प्रकाश और अंधकार दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते।

इसी तरह अहंकार और समझ भी दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते।

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

सद्गुरु का मौन

सूत्र:

वहां एक भिक्षु रहता था, जो अपने को 'मौन का सदगुरु' कहता था। वास्तव में वह एक ढोंगी था, और उसके पास कोई प्रामाणिक समझ न थी।

अपने धोखा देने वाले निरर्थक ज़ेन का व्यापार करने के लिए-

उसने अपने पास सेवा के लिए दो वाक्पटु भिक्षुओं को,

लोगों के प्रश्नों के उत्तर देने के लिए रख छोड़ा था।

लेकिन वह, जैसे मानो ज़ेन के रहस्यमय मौन को प्रदर्शित करने के लिए ही स्वयं कभी भी एक शब्द तक का उच्चारण न करता था।

एक दिन उसके दोनों सेवकों की अनुपस्थिति में सत्य का एक खोजी

आया और उसने उससे पूछा-

हे सदगुरु! एक बुद्ध क्या होता है?

क्या करना चाहिए, अथवा कैसे प्रश्न का उत्तर देना चाहिए यह न जानते हुए

अपने बंद मुंह के प्रवक्ता बने, दोनों शिष्यों के अभाव का अनुभव करते हुए

वह निराश होकर, सभी दिशाओं में चारों ओर देखने लगा।

वह खोजी संतुष्ट और अनुगृहीत होकर

सदगुरु को धन्यवाद देता हुआ अपने सफर पर फिर चल पड़ा।

रास्ते में अंतर्यात्रा के उस खोजी को, आश्रम की ओर जाते हुए

उस गुरु की देखभाल करने वाले वे दोनों भिक्षु मिले।

उसने उन्हें बहुत उत्साह से यह बताना शुरू किया

कि बुद्धत्व को उपलब्ध मौन के इस सद्गुरु का तो कहना ही क्या? उसने कहा: मैंने उनसे पूछा: कैसाहोता है एक बुद्ध औरउसे कहां खोजा जाए?

औरउन्होंने चेहरे को तुरंत पहले पूर्व की ओर औरफिरपश्चिम की ओर घुमा लिया

जिसका अर्थ है कि लोग बुद्ध की खोज हमेशा यहां और वहां

करते रहते हैं, लेकिन वास्तव में बुद्ध,

किसी भी ऐसी दिशा में नहीं पाया जाता।

ओह! बुद्धत्व को उपलब्ध यह सदगुरु कितना महान है;

और कितनी गूढ़ हैं इसकी शिक्षाएं?

जब वे दोनों सेवक भिक्षु वापस लौटे

तो मौन के सद्गुरु ने उन्हें डांटते हुए कहा;

"तुम इतनी देर के लिए कहां चले गए थे?

कुछ देर पहले एक जिज्ञासु अंतर्यात्री के द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर

मैं परेशान होकरलगभग मरणासन्न औरबरबाद होने की स्थिति तक जा पहुंचा था।"

जीवन एक रहस्य है।

तुम जितना अधिक उसे समझते हो, वह उतना ही अधिक रहस्यमय बन जाता है।

तुम उसे जितना अधिक जानते हो, तुम्हें उतना ही कम-

यह अनुभव होता है कि तुम उसे जानते हो।

तुम उसकी गहराई और अनंत गहराई के प्रति जितने अधिक होशपूर्ण होते हो, उतना ही अधिक उसके बारे में कुछ भी कहना लगभग असम्भव हो जाता है।

इसलिए अनुभव करने वाला मौन हो जाता है।

एक व्यक्ति, जो उसे जान लेता है, वह आदरयुक्त भय से विस्मय विमूढ हो जाता है।

ऐसे अनंत अद्‌भुत आश्चर्य का अनुभव कर, उसकी सांस तक रुक जाती है। जीवन के रहस्य का साक्षात्कार कर वह पूरी तरह से मिट ही जाता है।

लेकिन इस बारे में समस्याएं भी हैं,

और जीवन के रहस्य के साथ पहली समस्या तो हमेशा-

ऐसे ढोंगियों की सम्भावना को लेकर है,

जो दूसरों को धोखा दे सकते हैं, लोगों को ठग सकते हैं।

विज्ञान के संसार में तो ऐसा करना असम्भव है

विज्ञान एक समतल भूमि पर अनंत सावधानी से फूंक-फूंक कर कदम रखता है-

वह तर्क पूर्ण और विचारशील है।

यदि तुम कुछ भी व्यर्थ की बात कहते हो, तो तुम तुरंत पकड़ लिए जाओगे, क्योंकि तुम जो कुछ भी कहते हो, उसकी प्रामाणिकता का सत्यापन किया जा सकता है।

विज्ञान पदार्थगत है और उसके बाबत दिए गए किसी वक्तव्य को

प्रयोगशालाओं में प्रयोगों के द्वारा परखा जा सकता है।

धर्म के साथ प्रत्येक चीज अन्दर से संबंधित, वैयक्तिक और रहस्यपूर्ण है, और उसका मार्ग समतल मैदान होकर नहीं जाता, वह पहाड़ी मार्ग है।

उसमें बहुत उतार-चढ़ाव हैं और वह मार्ग सर्पिल और घुमाव भरा है।

तुम चलते-चलते बार-बार उसी स्थान पर आ जाते हो,

भले ही वह स्थान थोड़ी अधिक ऊंचाई पर होता है।

और इस बारे में तुम जो कुछ भी कहो, उसका सत्यापन नहीं किया जा सकता,

उसके जांचने का कोई मापदण्ड ही नहीं है।

क्योंकि वह आंतरिक और रहस्यमय है, इसलिए किसी भी प्रयोग से

उसे सिद्ध या असिद्ध नहीं किया जा सकता,

और किसी भी तर्क पूर्ण निष्पत्ति से यह निर्णय नहीं लिया जा सकता

कि 'यह' मार्ग ठीक है अथवा 'वह' मार्ग?

यही कारण है कि विज्ञान एक है,

लेकिन यहां इस संसार में लगभग तीन हजार धर्म हैं।

तुम किसी भी धर्म को झूठा सिद्ध नहीं कर सकते,

और न तुम किसी दूसरे धर्म को सच्चा और प्रामाणिक सिद्ध कर सकते हो। ऐसा करना सम्भव नहीं है, क्योंकि निरीक्षण और प्रयोगों के द्वारा

उसका परीक्षण करना सम्भव ही नहीं है।

जब बुद्ध कहते हैं कि अन्दर कोई भी आत्मा नहीं है

तुम इसे कैसे सिद्ध करोगे, अथवा तुम इसे कैसे झूठा सिद्ध करोगे?

यदि कोई व्यक्ति यह कहता है: "मैंने परमात्मा को देखा है"

और वह ईमानदार भी दिखाई देता है, तो क्या किया जाए?

लेकिन वह एक धोखेबाज पागल भी हो सकता है,

हो सकता है उसे विभ्रम हो गया हो,

अथवा हो सकता है उसने वास्तव में प्रामाणिक सत्य का साक्षात्कार किया हो?

लेकिन कैसे इसे सत्य या असत्य सिद्ध किया जाए?

वह अपने अनुभव में किसी अन्य व्यक्ति को सहभागी भी नहीं बना सकता, क्योंकि वह उसका आंतरिक अनुभव है।

वह किसी वस्तु की भांति नहीं है, जिसे तुम बीचोबीच रख दो

और प्रत्येक व्यक्ति उसका निरीक्षण कर सके, उसे काट-पीट कर उसका परीक्षण कर सके। तुम्हें उसे विश्वास में लेना होगा।

वह पूरी तरह ईमानदार भी हो सकता है, और वह धोखेबाज भी हो सकता

हो सकता है वह तुम्हें धोखा न दे रहा हो या हो सकता है धोखा देने का प्रयास कर रहा हो।

हो सकता है वह स्वयं अपने आप को धोखा दे रहा हो,

और यह भी हो सकता है कि वह सच्चा और प्रामाणिक हो?

अथवा उसने एक स्वप्न देखा हो, जिसे वह वास्तविक समझ रहा है।

कभी-कभी सपनों की गुणात्मकता ऐसी होती है,

कि वे स्वयं सत्य की अपेक्षा कहीं अधिक प्रामाणिक सत्य से लगते हैं। तब सपने दिव्य दृष्टि जैसे लगने लगते हैं। वह कहता है

उसने परमात्मा की आवाज सुनी है, और वह उससे अधिक आप्लावित, और रोमांचित है। लेकिन किया क्या जाए?

यह कैसे सिद्ध किया जाए कि वह कहीं पागल तो नहीं हो गया है,

और उसने अपने ही मन के विचारों का तो कहीं प्रक्षेपण नहीं कर लिया है? यहां परीक्षण करना संभव ही नहीं है।

यदि यहां एक प्रामाणिक धार्मिक व्यक्ति है,

तो उसके चारों ओर निन्यानवे दूसरे लोग भी हैं।

उनमें से कुछ लोग धोखेबाज हैं, कुछ बेचारे सीधे-सादे शुद्ध हृदय के लोग भी हैं

जो किसी भी व्यक्ति को हानि पहुंचाने की कोशिश तो नहीं करते,

लेकिन वे फिर भी नुकसान पहुंचा रहे हैं।

तब यहां थोड़े से धोखेबाज, ठग, लुटेरे, बेईमान और चालाक लोग भी हैं, जो जान-बूझकर लोगों को नुकसान पहुंचा रहे हैं।

लेकिन यह व्यापार लाभप्रद है।

संसार में धर्म की अपेक्षा बेहतर धंधा तुम कोई दूसरा नहीं पा सकते।

तुम वायदा कर सकते हो, और वहां उन वस्तुओं को हस्तांतरित करने की कोई आवश्यकता ही नहीं,

क्योंकि वे वस्तुएं अदृश्य हैं।

मैंने अमेरिका में हुए एक रोचक प्रसंग के बारे में सुना है-

उन लोगों ने महिलाओं के लिए अदृश्य बालों के पिनों का आविष्कार किया। एक महिला सुपरमार्केट में उनकी खरीद कर रही थी

और सेल्समैन ने उसे अदृश्य बालों में लगाए जाने वाले क्लिपों का एक पैकेट दिया।

उसने डिब्बे में झांककर देखा, उसे वहां कुछ भी नहीं दिखाई दिया।

वास्तव में वे तो अदृश्य पिन थे, इसलिए तुम उन्हें कैसे देख सकते थे? और उसने कहा: लेकिन मैं तो इसके अन्दर कोई भी चीज नहीं देख रही हूं। सेल्समैन ने कहा: वे अदृश्य हैं, आप उन्हें कैसे देख सकती हैं?

उस महिला ने पूछा: क्या वास्तव में वे अदृश्य हैं?

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया: आप मुझसे पूछ रही हैं? सात दिनों से इनका स्टॉक समाप्त हो गया है, लेकिन हम उन्हें फिर भी बेच रहे हैं।

वे पूरी तरह अदृश्य हैं।

जब चीजें अदृश्य हैं, तुम उन्हें बेचे चले जा सकते हो। वायदे किए जा सकते हो।

वस्तुओं को हस्तांतरित करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है,

क्योंकि पहली बात तो यह कि वे अदृश्य हैं,

इसलिए कोई भी उन्हें कभी भी खोज नहीं सकता।

और तुम धर्म से अच्छा कोई दूसरा धंधा नहीं खोज सकते,

क्योंकि वस्तुएं अदृश्य हैं।

मैंने बहुत से लोगों को धोखा खाते हुए देखा है,

बहुतों को धोखा देते हुए देखा है।

और यह चीज इतनी अधिक सूक्ष्म है

कि इसके पक्ष अथवा विपक्ष में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

उदाहरण के लिए मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूं

जो सीधा-सादा बेवकूफ व्यक्ति है।

लेकिन मूर्खता के भी अपने गुण और लाभ होते हैं, विशेष रूप से धर्म में। एक मूर्ख और छू व्यक्ति भी परमहंस जैसा दिखाई देता है।

क्योंकि वह मूर्ख है, इसलिए उसका व्यवहार आशा के विपरीत होता है, ठीक बोध को उपलब्ध एक व्यक्ति की भांति, यह समानता उसमें है। क्योंकि वह छू है, इसलिए वह बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति की भांति एक भी तर्कपूर्ण वक्तव्य नहीं दे सकता।

वह मूढ़ है, इसलिए वह नहीं जानता कि वह क्या कह रहा है,

और किस तरह का व्यवहार कर रहा है।

अचानक वह कोई भी चीज कर सकता है।

और उसका अचानक कुछ करना ही ऐसा लगता है, जैसे मानो वह दूसरे संसार का व्यक्ति हो।

उसे मिरगी के दौरे पड़ते हैं, लेकिन लोग सोचते हैं

कि वह समाधि में जा रहा है।

उसे बिजली के झटके देने वाले उपचार की जरूरत है।

अचानक उस पर दौरा पड़ेगा और वह बेहोश हो जाएगा,

और उसके अनुयायी ढोल बजाकर परमात्मा की महिमा के गीत गाने लगेंगे, और घोषणा करेंगे: उनका गुरु समाधि में चला गया है, वह परमानंद में है। उसका मुंह झागों से भर जाएगा और लार मुंह से बाहर गिरने लगेगी- वह सिर्फ मिरगी के दौरे में होता है, उसके पास न बुद्धि है और न समझ। लेकिन यही उसका गुण है, और उसके चारों ओर धोखेबाज लोग इकट्ठे हो गए हैं-

जो बाबा के बारे में तरह-तरह की झूठी बातें फैलाते रहते हैं।

और उसके निकट बहुत सी चीजें घटती हैं: यह एक चमत्कार है।

बहुत सी चीजें घटती हैं, क्योंकि बहुत सी चीजें यहां अपने आप घट रही हैं। बाबा बेहोशी के दौरे में पड़ा है, और बहुत से लोग अनुभव कर रहे हैं

कि उनकी कुण्डलिनी जाग रही है। वे उसका प्रक्षेपण कर रहे हैं।

यदि तुम एक लम्बी अवधि तक शांत-थिर बैठे रहो,

तो एक विशिष्ट घटना यह घटती है, कि शरीर में ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है और तब शरीर बेचैनी का अनुभव कर हिलना-कंपना या डोलना शुरू हो जाता है। अचानक झटके से आने लगते हैं और वे सोचते हैं कि कुंडलिनी जाग रही है।

और जब एक व्यक्ति में कुंडलिनी जाग रही है, तो तुम पीछे क्यों रह जाओ? तब दूसरे भी वैसा करना शुरू कर देते हैं।

यह ठीक ऐसे ही है, जैसे एक व्यक्ति टॉयलेट जाता है,

तो दूसरों में भी टॉयलेट जाने की प्रवृत्ति हो जाती है।

यदि एक व्यक्ति को छींक आती है, तो दूसरों को बहुत अधिक छींकें आने लगती हैं।

यह छूत की बीमारी जैसे बन जाती है।

लेकिन चूंकि बहुत सी घटनाएं घट रही हैं, इसलिए बाबा को समाधि में होना ही चाहिए;

जबकि उसे केवल मिरगी के दौरे आ रहे हैं।

पूरब में ऐसा मैंने निरीक्षण किया है कि प्रामाणिक व्यक्ति केवल एक होता है, और निन्यानवे लोग नकली होते हैं। या तो वे स्वयं को धोखा देने वाले साधारण दीन-हीन व्यक्ति हैं: अथवा वे धोखेबाज, बेईमान और चालाक लोग हैं।

ऐसा चलते चला जा सकता है, क्योंकि पूरी चीज अदृश्य है।

आखिर किया क्या जाए? निर्णय कैसे किया जाए? तय कैसे किया जाए? धर्म हमेशा ही खतरनाक रहा है। वह खतरनाक है।

क्योंकि यह हिस्सा बहुत रहस्यमय और अतर्कपूर्ण है।

कोई भी चीज हो जाती है, और बाहर से उसे परखने का कोई उपाय नहीं है। और यहां कमजोर, मनों वाले लोग पहले ही तैयार बैठे हैं,

जो किसी भी चीज पर विश्वास कर लेते हैं।

क्योंकि वे अपने पैरों के नीचे सहारे के लिए स्थान तलाश रहे हैं

बिना विश्वास के वे अपने को जड़ों से उखड़े हुए अथवा बिना लंगर वाली

नाव सा डोलता हुआ अनुभव करते हैं,

उन्हें किसी भी ऐसे व्यक्ति की जरूरत है, जिस पर वे विश्वास कर सकें। वे कहीं ऐसी जगह जाना चाहते हैं, जहां वे अपने को जड़ों से जुड़ा महसूस कर सकें, जहां वे मजबूती से स्थिर खड़े हो सकें।

विश्वास, लोगों की एक गहरी जरूरत है। यह इतनी गहरी जरूरत है क्यों? बिना विश्वास के तुम्हें लगता है, जैसे कहीं गड़बड़ी या अव्यवस्था जैसा कुछ है,

बिना विश्वास के तुम नहीं जानते कि तुम क्यों जीवित हो?

बिना विश्वास के तुम जीवन में किसी सार्थकता का अनुभव नहीं कर सकते। यहां कुछ भी महत्वपूर्ण सा दिखाई ही नहीं देता।

तुम्हें यहां, बिना किसी कारण के हुई दुर्घटना जैसा होने का अनुभव होता है। बिना विश्वास के प्रश्न उठता है: तुम क्यों हो यहां? तुम कौन हो?

तुम कहां से आ रहे हो? कहां तुम्हें जाना है?

और वहां तुम्हें उसका एक भी उत्तर नहीं मिलता-

बिना विश्वास के यहां कोई उत्तर है भी नहीं।

एक व्यक्ति पूरी तरह यह अनुभव करता है कि वह अस्तित्व में हुई एक दुर्घटना की भांति निरर्थक जी रहा है;

उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं है, जिसे अलग किया जा सकता है।

वह मर जाएगा और कोई भी फिक्र नहीं करेगा,

और वे सभी कुछ निरंतर वही करते रहेंगे।

तुम्हें किसी चीज की कमी का अनुभव होता है,

तुम सत्य के साथ जुड़ना चाहते हो, तुम एक विशिष्ट विश्वास चाहते हो, धर्म का अस्तित्व तुझें विश्वासों की आपूर्ति करने का है,

क्योंकि लोगों को उनकी बहुत आवश्यकता है।

बिना किसी विश्वास के एक व्यक्ति को अत्यधिक साहसी होना होगा। बिना किसी विश्वास के जीना, अज्ञात में जीने जैसा है;

बिना किसी विश्वास कै रहना, एक महान साहस है।

सामान्यतया लोग इसे गवारा नहीं कर सकते।

बहुत अधिक साहसी होने पर दुःख आता है, व्यग्रता उत्पन्न होती है,

यह ख्याल में रखने जैसी बात है:

मेरे देखे, एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति वही है, जो बिना विश्वास के होता है, श्रद्धा होती है उसके पास, लेकिन विश्वास नहीं;

और इन दोनों में स्थिति बहुत बड़ा अंतर है।

विश्वास करना बुद्धिगत है। तुम्हें उसकी जरूरत है, इसी वजह से वह तुम्हारे पास है।

वह इसलिए है वहां, क्योंकि तुम उसके बिना जीवित नहीं रह सकते।

विश्वास तुम्हें जीने के लिए एक सहारा देता है;

वह तुम्हें एक विशेष अर्थ देता है, भले ही वह नकली या झूठा हो:

वह तुम्हें जीवन के लिए एक विशिष्ट नक्शा देता है,

कि कैसे, कहां गतिशील हुआ जाए?

तुम हो राजमार्ग पर ही, जंगल में नहीं भटक रहे हो।

विश्वास तुम्हें एक समाज देता है, जिसमें तुम्हारी तरह विश्वास करने वाले दूसरे तुम्हारे जैसे लोग भी होते है।

तुम भीड़ का एक भाग बन जाते हो।

तब तुम्हें अपने बारे में सोचने की कोई आवश्यकता नहीं होती,

तब तुम अपने अस्तित्व के लिए आगे के लिए जिम्मेदार नहीं रह जाते,

अब तुम जो कुछ भी कर रहे हो-

उसकी जिम्मेदारी तुम भीड़ पर डाल सकते हो।

व्यक्तिगत रूप से एक हिंदू कभी भी उतना बुरा नहीं होता, जितना भीड़ का हिंदू। व्यक्तिगत रूप से एक मुसलमान भी, भीड़ में घिरे मुसलमान जितना कभी भी बुरा नहीं होता।

होता क्या है? व्यक्तिगत रूप से लोग बुरे नहीं होते, भीड़ पूरी तरह पागल होती है, क्योंकि भीड़ में कोई भी व्यक्ति जिम्मेदारी महसूस नहीं करता। तुम भीड़ के बीच आसानी से हत्याएं कर सकते हो,

क्योंकि तुम जानते हो कि भीड़ ऐसा कर रही है।

और तुम भीड़ के सागर की एक लहर मार हो, तुम निर्णय करने वाले भाग नहीं हो, और इसलिए तुम जिम्मेदार भी नहीं हो।

व्यक्तिगत रूप से अकेले तुम उत्तरदायित्व का अनुभव करते हो।

यदि तुम कुछ गलत काम करोगे तो तुम्हें अपराध बोध होगा।

यह मेरा अपना निरीक्षण है कि पाप का अस्तित्व भीड़ के द्वारा ही है, व्यक्तिगत रूप से कभी भी कोई व्यक्ति पापी नहीं होता।

और व्यक्तिगत रूप से यदि वे कुछ गलत करते भी हैं
तो बहुत आसानी से उन्हें उससे बाहर निकाला जा सकता है,
लेकिन भीड़ के साथ ऐसा करना असम्भव है,
क्योंकि भीड़ के पास कोई आत्मा नहीं होती, उसका कोई केंद्र नहीं होता, अपील भी किससे की जाए?
और संसार में यह जो सब कुछ हो रहा है-
वास्तव में ही समूह के बीच बैठे हुए शैतान, और उनकी शैतानी शक्तियां इसके लिए जिम्मेदार हैं।

सारे राष्ट्र ही शैतान हैं;
धार्मिक संगठन ही वह शैतानी शक्तियां हैं।
विश्वास तुम्हें अपने से बड़ी भीड़ का एक भाग बना देता है,
और तुम्हें बहुत उल्लास होने जैसा अनुभव होता है,
जब तुम उससे भी अधिक बड़ी भीड़, एक राष्ट्र के
भारत, अथवा अमेरिका अथवा इंग्लैंड के एक भाग बन जाते हो,
तब तुम एक छोटे से तुच्छ प्राणी नहीं रह जाते।

तुम्हारे अन्दर एक बहुत बड़ी ऊर्जा आ जाती है, और तुम गौरवान्वित होने का अनुभव करते हो, तुम्हें वह सभी कुछ बहुत अच्छा लगता है।

यही कारण है, जब एक देश में युद्ध हो रहा होता है,

तो लोगों को बहुत अच्छा लगने लगता है, उन्हें मजा आने लगता है, अचानक उनके जीवन अर्थपूर्ण हो उठते हैं-

वे सोचने लगते हैं जैसे वे अपने देश के लिए जी रहे हैं,
अपने धर्म और अपनी सभ्यता की रक्षा के लिए जी रहे हैं,
और उन्हें उसके विशिष्ट कोष की रक्षा करनी है, उसे बचाना है।
अब वे साधारण व्यक्ति नहीं रह जाते,
अब उनका एक महान उद्देश्य होता है।
विश्वास, व्यक्तिगत रूप से एक व्यक्ति और भीड़ के बीच का सेतु है।

श्रद्धा, पूरी तरह भिन्न है।
श्रद्धा कोई बुद्धिगत धारणा नहीं होती।
श्रद्धा, सिर का नहीं, हृदय का एक गुण है।

विश्वास, व्यक्तिगत रूप से एक व्यक्ति और समाज के मध्य एक सेतु है और श्रद्धा एक सेतु है-एक व्यक्ति और ब्रह्माण्ड के मध्य।

श्रद्धा हमेशा परमात्मा में ही होती है, और जब मैं कहता हूं-'परमात्मा' तो मेरा अर्थ परमात्मा में विश्वास करने का नहीं है।

जब मैं कहता हूं परमात्मा, तो मेरा अर्थ अखण्ड अस्तित्व से होता है।

श्रद्धा वह गहरी समझ है, जिससे तुम्हें यह अनुभव होता है
कि तुम अखण्ड अस्तित्व के एक भाग हो,

अस्तित्व के महान आरकेस्ट्रा की एक लय हो,

सागर की केवल एक छोटी सी लहर हो।

श्रद्धा का अर्थ होता है, कि तुम्हें इस पूरे अस्तित्व का अनुसरण करना है, उसके साथ-साथ बहना है

तुम्हें स्वेच्छा से उसके ही साथ बने रहना है।

श्रद्धा का अर्थ होता है: मैं यहां एक शत्रु की भांति नहीं हूं

मुझे यहां किसी से लड़ना नहीं है;

जो अवसर मुझे मिला है, मैं यहां उसका आनंद लेने के लिए हूं

मैं यहां उत्सव आनंद मनाने और कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए हूं।

श्रद्धा कोई सिद्धांत नहीं है; तुम्हें इसके लिए हिंदू होने की जरूरत नहीं है, तुम्हें एक मुसलमान, जैन अथवा सिख होने की भी कोई जरूरत नहीं है। श्रद्धा एक वचनबद्धता है, एक वैयक्तिकता और अखण्ड के मध्य।

श्रद्धा तुम्हें धार्मिक बनाती है

तुम्हें हिंदू मुसलमान या ईसाई न बनाकर पूरी तरह तुम्हें धार्मिक बनाती है। श्रद्धा के पास कोई नाम नहीं होता।

विश्वास के पास नाम होता है, लाखों-करोड़ों नाम

विश्वास तुम्हें हिंदू मुसलमान अथवा ईसाई बनाता है।

नाम के साथ यहां हजारों तरह के विश्वास हैं-तुम कोई भी चुनाव कर सकते हो।

श्रद्धा के पास केवल एक गुण होता है:

पूरे अस्तित्व के प्रति समर्पण का गुण;

पूरे अस्तित्व के साथ स्वीकार भाव से चलने का गुण,

पूरी प्रकृति और अस्तित्व को अपना अनुसरण करने के लिए विवश न करने का गुण;

लेकिन तुम्हें स्वयं को अनुमति देनी होगी, कि वह पूरे अस्तित्व के साथ चले।

श्रद्धा एक रूपांतरण है, श्रद्धा को उपलब्ध होना होता है:

विश्वास तो जन्म से ही दिया जाता है।

कोई भी व्यक्ति श्रद्धा में नहीं जन्मता,

प्रत्येक व्यक्ति का जन्म विश्वास में ही होता है।

तुम एक हिंदू अथवा एक जैन अथवा एक बौद्ध बने जन्मे हो

यह विश्वास समाज के द्वारा दिया जाता है,

क्योंकि विश्वास तुम्हारे और समाज के मध्य एक सेतु है।

यदि समाज तुम्हें विश्वास न दे, तो इस बात का डर है वहां

कि तुम विद्रोही बन सकते हो।

वास्तव में ऐसा होना निश्चित है

कि यदि विश्वास न दिया जाए तो तुम विद्रोही बन जाओगे,

और समाज यह चाहता नहीं, वह कैसे गवारा कर सकता है यह?

इससे पहले तुम सचेत बनो, समाज तुम्हें ऐसे गहरे विश्वास देता है,

जो तुम्हारी मां के दूध के साथ तुम्हारे रक्त में घुल जाते हैं

इस विश्वासों का विष तुम्हारे अस्तित्व में रिसता रहता है।

जो कुछ हो चुका होता है, जिस समय तुम उसके प्रति होशपूर्ण होते हो, तुम पाते हो, कि तुम पहले ही से एक हिंदू अथवा मुसलमान या ईसाई हो। एक लौह-कवच पहले ही से तुम्हारी छाती पर है और तुम उससे जकड़े हुए हो।

और इससे निकल कर बाहर आना बहुत कठिन है

क्योंकि तुम्हारे अचेतन को भी जकड़ लेता है वह,

वह तुम्हारी पूरी बुनियाद बन जाता है।

यदि तुम इससे बाहर भी निकल आओ, यदि तुम उसके विरोध में भी जाओ, फिर भी वह तुम्हारी बुनियाद में बना ही रहेगा,

क्योंकि अचेतन को साफ और शुद्ध करना बहुत कठिन है

सचेतन रूप से तुम इसे नहीं कर सकते।

मैंने सुना है, कुछ ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन नास्तिक बन गया।

और चूंकि वह मर रहा था, इसलिए आखिरी वक्त पादरी बुलाया गया। पादरी ने कहा: मुल्ला! अब तुम्हारे लिए यह आखिरी क्षण-

और अंतिम अवसर है। अभी भी तुम्हारे पास थोड़ा-सा समय बचा है,

तुम अपने पापों को स्वीकार करो

और यह भी स्वीकार करो कि गलत मार्ग पर जाकर ही तुम नास्तिक बन गए

एक आस्तिक बनकर और परमात्मा में विश्वास करते हुए ही प्राण छोड़ो। मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी आंखें खोलीं और कहा:

परमात्मा का शुक्र है कि मैं एक आस्तिक नहीं हूं।

तुम भले ही आस्तिक न हो, फिर भी परमात्मा को ही धन्यवाद दोगे,

क्योंकि तुम्हारे गहरे अचेतन में 'वह' बना ही हुआ है,

'वह' तुम्हारी बुनियाद बन चुका है।

अपने बचपन में सात वर्ष की आयु तक, तुमने जो कुछ भी सीखा है

वह तुम्हारी बुनियाद बन चुका है।

उसे जड़ से उखाड़ने के लिए बहुत बड़े प्रयास और ध्यान की आवश्यकता

तुम्हें अपने पीछे की ओर लौटना होगा, केवल तभी उसे रगड़ कर साफ किया जा सकता है।

तुम अविश्वास उत्पन्न कर सकते हो, पर वे सहायक न होंगे,

वे कोई सहायता कर ही नहीं सकते।

तुम एक आस्तिक बन सकते हो,

तुम अपने बचपन में एक हिंदू हो सकते हो,

तब तुम धर्म बदल कर ईसाई भी बन सकते हो,

लेकिन तुम रहोगे एक हिंदू ही-

तुम्हारी ईसाइयत पर भी हिंदुत्व का रंग चढ़ा होगा।

तुम एक साम्यवादी या कम्मुनिस्ट बन सकते हो,

लेकिन गहरे में जो अचेतन है, वह तुम्हारे साम्यवाद को अलग रंग में रंग देगा।

अचेतन को साफ करने के लिए गहरे ध्यान की आवश्यकता है।

श्रद्धा पूरी तरह अलग चीज है।

श्रद्धा, शब्दों और शास्त्रों में नहीं है। श्रद्धा होती है जीवन के प्रति-उस प्रामाणिक ऊर्जा के प्रति, जो इस अखण्ड अस्तित्व को गतिशील बनाती है। तुम उस पर श्रद्धा करते हो और उसके साथ बहते हो।

यदि वह तुम्हें भंवर के चक्र के साथ नीचे तल में ले जाती है,

तुम गोल-गोल घूमते हुए नीचे चले जाते हो।

यदि वह तुम्हें भंवर के बाहर फेंक देती है, तुम उस भंवर के बाहर आ जाते हो। तुम उसके साथ ही घूमते हो, तुम उस बारे में अपनी बुद्धि नहीं लगाते। यदि वही ऊर्जा तुम्हें उदास बना देती है, तुम उदास हो जाते हो।

यदि वह तुम्हें प्रसन्न बना देती है, तुम प्रसन्न हो जाते हो।

तुम पूरी तरह से उसी के साथ चलते हो,

तुम उसके साथ अपनी बुद्धि लगाते ही नहीं,

और अचानक तुम महसूस करते हो कि अब तुम उस बिंदु पर आ पहुंचे हो जहां शाश्वत रूप से आनंद बरस रहा है।

अपनी उदासी में भी तुम आनंदित ही बने रहोगे,

क्योंकि तुम्हारा उससे कुछ लेना-देना ही नहीं है

वह अखण्ड अस्तित्व ही जिस तरह से जो कुछ कर रहा है, तुम उसी के साथ चल रहे हो।

प्रसन्नता आती है-ठीक। उदासी आती है-वह भी ठीक।

तुम्हारे लिए पूरी तरह से प्रत्येक चीज, प्रत्येक घटना ठीक ही होती है। धार्मिक मनुष्य ऐसा ही होता है: उसके पास अपना कोई मन होता ही नहीं; जब कि विश्वास के पास अपना एक बहुत शक्तिशाली मन होता है।

महान संत तुलसीदास के बारे में यह कहा जाता है,

कि उन्हें मथुरा के कृष्ण मंदिर में आमंत्रित किया गया,

और उनका विश्वास राम पर था।

वह वहां गए लेकिन उन्होंने वहां अपना सिर नहीं झुकाया,

क्योंकि वहां अधरों पर वंशी रखे हुए कृष्ण की मूर्ति थी।

यह कहा जाता है कि उन्होंने कृष्ण से कहा: "मैं केवल राम के आगे ही- झुक सकता हूं इसलिए यदि आप चाहते हैं कि मैं आपके सामने झुके, तो आपको अपने हाथ में राम का धनुष धारण करना होगा।

जब मैं यह देखूंगा कि आप राम बन गए हैं,

केवल मैं तभी आपके सामने झुकूंगा।"

विश्वास का मन ऐसा ही होता है।

अन्यथा राम और कृष्ण के बीच भेद ही क्या है?

और क्या फर्क है एक बांसुरी और धनुष के बीच?

और कथा यूं ही आगे बढ़ती है: वह कहती है कि मूर्ति बदल गई,
कृष्ण की मूर्ति राम की मूर्ति बन गई,
और तब तुलसीदास ने प्रसन्नता से उसके सामने अपना सिर झुकाया।
अब समस्या यह है कि निश्चित रूप से क्या हुआ होगा?
मेरी समझ से तो मूर्ति जैसी थी, वैसी ही रही होगी, क्योंकि मूर्ति कोई भी चिंता नहीं करती।
तुम उसके आगे झुको अथवा नहीं, उसकी उसे कोई चिंता नहीं होती।
लेकिन विश्वास करने वाले व्यक्ति का मन, कल्पना में कुछ भी निर्मित कर सकता है,
तुलसीदास ने जरूर ही प्रक्षेपण किया होगा:
राम की मूर्ति प्रक्षेपित की होगी।
उसे जरूर ही उनका विभ्रम होना चाहिए
उन्होंने राम देखे जरूर होंगे, यह निश्चित है।
उन्होंने दर्शन जरूर किए होंगे, अन्यथा वह झुकते ही नहीं।
सम्भावना यही है कि उनके मन ने ही वह सृजन किया होगा,
और जब तुम विश्वास से बहुत अधिक भरे हुए हो, तो तुम उसे सृजित कर सकते हो।
तुम उन चीजों को भी देख सकते हो, जो वहां हैं ही नहीं,
और तुम उन चीजों से चूक सकते हो, जो वहां हैं।
एक मन जो विश्वास से भरा हुआ है, वह मन है,
जो अपने विश्वास के अनुसार किसी भी चीज को प्रक्षेपित कर सकता है। जब तुम किन्हीं भी वस्तुओं को देखो,
तो हमेशा इस बात का स्मरण रखना।
लोग मेरे पास आते हैं
यदि कोई व्यक्ति कृष्ण पर विश्वास रखने वाला है और जब वह ध्यान करता है, तो उसकी दृष्टि में तुरंत ही कृष्ण आना शुरू हो जाते हैं।
लेकिन क्राइस्ट उसे कभी नहीं दिखाई देते।
जब एक ईसाई ध्यान करना शुरू करता है-
तो कृष्ण कभी उसके ध्यान को भंग नहीं करते, केवल उसे क्राइस्ट दिखाई देते हैं।
एक मुसलमान की दृष्टि में न कृष्ण आते हैं और न क्राइस्ट;

और मुहम्मद तो कभी आ ही नहीं सकते,
क्योंकि मुसलमानों के पास मुहम्मद का चित्र है ही नहीं।
वे यह जानते ही नहीं कि वह क्या देखना चाहते हैं,
इसलिए वे कुछ भी प्रक्षेपण नहीं कर सकते।
तुम जिस पर भी विश्वास करते हो, तुम उसे ही प्रक्षेपित कर लेते हो।

विश्वास एक प्रक्षेपण है।

वह ठीक सिनेमा के एक प्रोजेक्टर की भांति है

तुम पर्दे पर कुछ चीज ऐसी देखते हो, जो वहां है ही नहीं।

प्रोजेक्टर पीछे छिपा हुआ है, लेकिन तुम कभी भी प्रोजेक्टर को नहीं देखते, तुम पर्दे की ओर देखते हो।

प्रोजेक्टर पीछे है, और सारा खेल तुम्हारे सामने चल रहा है,

लेकिन तुम पर्दे की ओर ही देखते हो।

सारा खेल तुम्हारे मन में ही चल रहा है, और मन विश्वास से भरा हुआ है, वह संसार की सभी वस्तुओं को निरंतर प्रक्षेपित किए जा रहा है,

वह ऐसी चीजें भी देखता है, जो वहां हैं ही नहीं। यही समस्या है।

वह मन जो विश्वास करता है, उस पर हमेशा आघात किया जा सकता है, क्योंकि वह धोखेबाजों को शोषण करने का हमेशा अवसर देता है-

और धोखा देने वाले ठग तो चारों ओर हैं ही।

धर्म का पूरा मार्ग लुटेरों से भरा पड़ा है, क्योंकि इस मार्ग का कोई नवा ही नहीं है।

धर्म में प्रवेश करना उस अज्ञात में प्रवेश करना है,

जिसका न तो कोई नवा है और न जहां के बाबत कोई जानकारी उपलब्ध है। इसीलिए डाकू और लुटेरे वहां बहुत सरलता से फलफूल रहे हैं।

वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर सकते हैं- और वे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

और कभी-कभी, यदि कोई व्यक्ति तुम्हें धोखा नहीं भी दे रहा है,

तुम धोखा खाना ही चाहते हो। तब तुम धोखा खाओगे ही।

तुम्हें कोई भी धोखा नहीं दे सकता,

यदि तुम अपनी गहराई में धोखा खाने के लिए तैयार नहीं हो।

कुछ ही दिन पहले एक व्यक्ति मेरे पास आया और उसने कहा:

मुझे एक बाबा ने ठग लिया, और वह एक महान योगी है।

मैंने उससे पूछा: आखिर उसने किया क्या?

उसने कहा; वह किसी भी धातु को सोने में बदल सकता है।

उसने ऐसा मुझे करके दिखलाया, और मैंने ऐसा होते हुए अपनी आंखों से देखा।

तब उसने कहा कि मैं अपना सारा सोना ले आऊं

और वह उसे दस गुना कर देगा।

इसलिए मैंने अपने सारे सोने के जेवर इकट्ठे कर उसे दे दिए

और वह उन्हें लेकर चम्पत हो गया। उसने मुझे बहुत बड़ा धोखा दिया। प्रत्येक व्यक्ति यही सोचेगा कि उसने उसे धोखा दिया,

लेकिन मैंने उस व्यक्ति से कहा; ' यह तुम्हारा लालच है, जिसने तुम्हें धोखा दिया। '

यह जिम्मेदारी किसी अन्य व्यक्ति पर मत थोपो।

तुम पूरी तरह मूर्ख हो। लालच करना सबसे बड़ी मूर्खता है।

तुम चाहते थे कि तुम्हारे आभूषण दस गुने हो जाएं।

तुम्हारे लालची मन ने ही तुम्हें धोखा दिया,

दूसरे व्यक्ति ने सामान्य रूप से उस अवसर का प्रयोग किया।

वह व्यक्ति केवल चालाक है,

असली समस्या तुम ही हो।

यदि उसने तुम्हें धोखा नहीं दिया होता, तो किसी अन्य व्यक्ति ने दिया होता।

इसलिए प्रश्न यह नहीं है कि धोखा कौन देता है?

मेरी समझ में यदि कोई व्यक्ति तुम्हें धोखा देता है,

तो यह तुम्हारे अन्दर धोखा खाने की निश्चित प्रवृत्ति को प्रदर्शित करता है। और यदि कोई व्यक्ति तुमसे झूठ बोलता है,

तो इसका अर्थ है कि तुम्हारे ढांचे में झूठ से रिश्ता रखने वाली,

उस जैसी कोई निश्चित चीज है।

एक व्यक्ति, जो सत्य में जीता है, झूठ का शिकार नहीं बन सकता।

केवल एक झूठे व्यक्ति को ही किसी दूसरे झूठे व्यक्ति द्वारा धोखा दिया जा सकता है;

अन्यथा वहां ऐसी कोई सम्भावना ही नहीं है।

यहां लाखों लोग ऐसे हैं, जो धोखा खाने के लिए तैयार बैठे हैं,

जो किसी भी व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं;

जिससे उनके लालच के कारण वह उन्हें धोखा दे सके,

जिससे वह उनकी भ्रष्ट इच्छाओं को पूरा करने के लिए

उनके विश्वासों के कारण उन्हें धोखा दे सके।

और भली भांति स्मरण रहे कि लालच तो आखिर लालच है,

चाहे वह भौतिक संसार के लिए हो अथवा आध्यात्मिक जगत के लिए उससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता।

उसका गुण वही बना रहता है।

तुम चाहते हो कि कोई तुम्हारे सोने को दस गुना कर दे-यह लोभ है।

तब कोई व्यक्ति तुमसे कहता है' मैं तुम्हें बुद्ध बना दूंगा।

और तुम तुरंत लाइन में लग जाते हो। यह भी लोभ या लालच है

और मैं तुमसे कहता हूं

कि सोने को बढ़ाकर दस गुना कर देना बहुत सरल है

लेकिन किसी व्यक्ति को बुद्ध बनाना लगभग असम्भव है।

क्योंकि ऐसा करना कोई खेल नहीं है, क्योंकि मार्ग बहुत कठिन और श्रमपूर्ण है, वास्तव में कोई भी व्यक्ति कभी भी आज तक किसी को बुद्ध बना ही नहीं सका-

तुम स्वयं ही बोध को उपलब्ध होते हो;

दूसरा अधिक से अधिक एक केटेलेटिक एजेन्ट हो सकता है, अधिक और कुछ भी नहीं,

वास्तव में प्रत्येक चीज स्वयं तुम्हारे अन्दर ही घटती है,

दूसरे की उपस्थिति इसमें सहायक हो सकती है।

और यदि तुम वास्तव में ईमानदार हो, यद्यपि यह भी जरूरी नहीं है,
यदि तुम निष्ठावान हो, तो जो तुम्हारी सहायता कर सकते हैं, वे तुम्हें स्वयं खोजेंगे,
यदि तुम बेईमान हो, तो तुम उन्हें खोजोगे, जो तुम्हें हानि पहुंचा सकते हैं।

जब एक शिष्य सद्गुरु को खोजता है, तो अंतर यह पड़ता है
कि लगभग हमेशा ही कुछ चीज गलत होने जा रही होती है।
जब एक सद्गुरु शिष्य को खोजता है,
केवल तभी कोई चीज प्रामाणिक रूप से घटती है।
तुम सद्गुरु को कैसे खोज सकते हो?
तुम जो कुछ भी सोच सकते हो वह तुम्हारा मन ही होगा,
और तुम पूरी तरह से अज्ञानी हो, तुम नींद में चलने वाले व्यक्ति की भांति हो। तुम अपने मत से सहमति रखने वाले ही किसी व्यक्ति को खोजोगे तुम्हीं उसकी कसौटी बनोगे।

तब तुम खोजते हुए किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाओगे, जो चमत्कार कर रहा है। तुम सत्य साईं बाबा को खोजने जा सकते हो,
क्योंकि वे तुम्हारे लोभ की गहरी आपूर्ति करेंगे।
तुम उन्हें देख कर कहोगे: यहां है वह व्यक्ति,
यदि वह हवा से चीजें उत्पन्न कर सकता है, तो वह कुछ भी कर सकता है। अब तुम्हारा लोभ उद्दीप्त हो उठता है।
अब तुरंत एक ढांचागत समानता से सम्बन्ध जुड़ जाता है।
इसी कारण तुम हजारों लोगों को सत्य साईं बाबा के चारों ओर देख सकोगे।

जहां एक बुद्ध होता है, तुम वहां भीड़ न देखोगे,
क्योंकि तुम्हारे ढांचे में वह समानता नहीं है।
तुम अपने गहरे में सत्य साई बाबा के लिए एक आकर्षण पाते हो:
क्योंकि वे तुम्हारे लोभ को उत्तेजित करते हैं,
और तुम समझते हो कि यही ठीक व्यक्ति है
लेकिन तुम गलती पर हो।
तुम यह निर्णय कैसे ले सकते हो कि यही व्यक्ति ठीक है?
तुम धोखेबाजों को स्वयं उत्पन्न करते हो, तुम उन्हें अवसर देते हो।
तुम जादूगरों का अनुसरण करते हो, सद्गुरुओं का नहीं।
यदि तुम वास्तव में सद्गुरु की खोज करना चाहते हो,
अपने विश्वासों को छोड़ो, अपने लोभ को छोड़ो।
पूरी तरह नग्न मन से, बिना किन्हीं विश्वासों के साथ खोजो और जाओ किसी सद्गुरु के पास।
जैसे मानो तुम एक ऐसा वृक्ष हो जिसकी सभी पत्तियां झर चुकी हैं,
जिसके साथ अब कोई भी विश्वास नहीं है।
मैं कहता हूं केवल तभी तुम बिना कोई प्रक्षेपण किए देखने में समर्थ हो सकोगे;

केवल तभी तुम्हारे जीवन में कुछ चीज ऊपर से नीचे गहराई में प्रविष्ट हो सकेगी।

तब कोई भी व्यक्ति तुम्हें धोखा नहीं दे सकता।

इसलिए धोखा देने वालों की न तो निंदा करो, और न उनकी कोई फिक्र करो, वे एक जरूरत को पूरा करते हैं।

वे यहां इसीलिए हैं, क्योंकि तुम्हें उनकी आवश्यकता है।

कोई भी चीज बिना किसी कारण के अस्तित्व में नहीं है।

तुम्हारे चारों ओर जो भी व्यक्ति हैं, वे इसीलिए हैं क्योंकि तुम्हें उनकी आवश्यकता है।

यहां चोरों और डाकुओं का अस्तित्व है,

यहां शोषक और धोखेबाज लोग हैं, क्योंकि तुम्हें इन सभी की जरूरत है। यदि ये सभी मिट जाएं तो तुम भी कहीं नहीं होगे;

यदि वे यहां नहीं होंगे तो तुम अपना जीवन जीने में समर्थ न हो सकोगे।

यह बोध कथा बहुत सुन्दर है, और इसे बहुत गहराई से समझना है।

वहां एक भिक्ष रहता था, जो अपने को 'मौन का सदगुरु' कहता था। वास्तव में वह एक ढोंगी था, और उसके पास कोई प्रामाणिक समझ न थी।

तुम बहाने बना सकते हो, झूठे दावे कर सकते हो,

किसी अन्य स्थान की अपेक्षा धर्म में और भी अधिक झूठे दावे किए जा सकते हैं।

इसी कारण अपनी सांसारिक गतिविधियों वाले लोग चालाक हैं,

लेकिन जहां तक धर्म का सम्बन्ध है

लोग पूरी तरह अनजान हैं।

बाजार में जो कुछ चल रहा हैं, तुम उसके बारे में हर चीज जानने में-

समर्थ हो सकते हो, क्योंकि तुम वहां ही रहते हो,

तुम वहां के व्यवहारों के बारे में हर चीज और चाल जानते हो,

और तुम स्वयं भी वही सभी कुछ करते रहे हो।

जहां तक संसार का सम्बन्ध है, तुम बहुत बुद्धिमान हो,

लेकिन जब तुम धर्म स्थानों या मठों के संसार में जाते हो,

जब तुम बाजार से मठों में जाते हो, तो वहां बहुत बड़ा अंतर पाते हो।

मठों या धर्म स्थानों में तुम एक बच्चे की तरह पूरी तरह अनजान होते हो। तुम पूर्ण वयस्क, साठ या सत्तर वर्ष के हो सकते हो,

लेकिन एक मठ या मंदिर में, तुम ठीक एक छोटे से बच्चे की भांति होते हो। तुम वहां कभी रहे नहीं

लेकिन वहां भी वैसी ही चीजें हैं। वह भी एक बाजार है।

जब जीसस ने जेरूसलम के मंदिर या सिनेगॉग में प्रवेश किया,

तो प्रवेश करने के समय उनके हाथों में एक कोड़ा था,

तो उन्होंने कोड़े से लोगों को पीटना शुरू कर दिया,

क्योंकि मंदिर में बहुत से सूदखोर दूकानदार भी घुस पड़े थे।

उन्होंने उनकी मेजें नीचे उलट दीं और कहा:

तुम लोगों ने मेरे परमात्मा के मंदिर को एक बाजार बना दिया है।

तुम सभी धर्म के व्यापारी हो, तुम सभी बाहर निकल जाओ।

यह वास्तव में कुछ अद्‌भुत चीज है-एक अकेले व्यक्ति ने

धर्म के व्यापारियों की इतनी बड़ी भीड़ को मंदिर से खदेड़ दिया।

सत्य के पास अपनी एक विशेष शक्ति होती है।

जब कोई चीज या व्यक्ति सच्चा होता है, तुम तुरंत उसके सामने कमजोर हो जाते हो;

क्योंकि तुम झूठे हो, और तुम तुरंत समझ जाते हो कि ठीक वही है।

वे व्यापारी संघर्ष न कर सके;

वे सूदखोर जीसस की हत्या कर सकते थे,

वे अकेले थे और उनकी संख्या कहीं अधिक थी।

लेकिन शुद्ध सत्य के सामने वे बाहर भाग गए।

और केवल जब वे बाहर पहुंचे, तो उन लोगों ने-

योजना बनाना शुरू किया कि इस व्यक्ति का आखिर क्या किया जाए और उनकी ही योजना थी कि अंत में जीसस को क्रॉस पर लटका दिया गया।

मठों, मंदिरों और आश्रमों में एक दूसरा ही संसार है।

तुम वहां के कानून को नहीं जानते, तुम उनके खेल के नियमों से अपरिचित हो। तुम्हें वहां बहुत सरलता से धोखा दिया जा सकता है।

और झूठे दावे करने वाले वहां बहुत लोग हैं, क्योंकि यह बहुत आसान है। यह मेरा अपना अनुभव है

कि धर्म की ओर दो तरह के लोग आकर्षित होते हैं।

एक वे लोग हैं, जिन्होंने इस संसार में रहकर संसार को भरपूर जिया है

और उनकी समझ में आ गया है कि यह संसार निरर्थक है, व्यर्थ है,

यहां रहकर जीवन को बरबाद करना है और यह ठीक एक सपने जैसा है; और यह स्वप्न भी सुंदर स्वप्न न होकर एक दुःस्वप्न है।

यह पहली श्रेणी के लोग हैं, प्रामाणिक लोग,

जिन्होंने इस संसार को पूरी तरह जीकर इसे व्यर्थ पाया है,

एक ऐसा मरुस्थल पाया है जिसमें कोई नखलिस्तान नहीं, और उसे छोड़ दिया है।

उनका उस ओर से पीठ फेरना समग्र है! वे अब पीछे नहीं लौटेंगे।

अब वहां लौटकर पीछे देखने में कुछ भी नहीं बचा।

बुद्ध अपने शिष्यों से पूछा करते थे:

क्या तुमने वास्तव में संसार से पूरी तरह पीठ फेर ली है?

अथवा तुम्हारा थोड़ा-सा चित्त भी क्या पीछे की ओर देखना चाहता है? क्योंकि मन का एक भाग हमेशा पीछे की ओर ही देखना चाहता है।

यह पहली श्रेणी के लोग वास्तव में प्रामाणिक हैं,

जिन्होंने इस संसार में रहकर उसे निष्फल पाया।

इसी कारण वे लोग धर्म की ओर उत्सुख हुए।

तब वहां एक दूसरी श्रेणी है, जो ठीक इसके विपरीत है। पहली श्रेणी में एक प्रतिशत लोग हैं,

और दूसरी श्रेणी में निन्यानवे प्रतिशत लोग हैं।

ये लोग धर्म की ओर बहुत अधिक आकर्षित हैं।

इस श्रेणी में वे लोग हैं, जो इस संसार में सफल न हो सके, जिनकी महत्वाकांक्षाएं वहां पूरी न हो सकीं

जो वहां महत्वपूर्ण न बन सके।

उन्होंने प्रधानमंत्री या राष्ट्राध्यक्ष बनना चाहा था, लेकिन न बन सके। वहां संघर्ष करने के लिए उनमें इतनी शक्ति थी ही नहीं।

ऐसे भी लोग हैं, जिन्होंने रॉकफेलर अथवा फोर्ड की भांति धनी बनना चाहा था, लेकिन बन न सके, क्योंकि वहां बहुत कड़ी प्रतियोगिता थी, और वे लोग उस मजबूत धातु के नहीं थे, जिसकी आवश्यकता थी। उनमें कमियां थीं और वे पूरी तरह हीन लोग थे,

इसी वजह से वे जीवन में संघर्ष न कर सके।

उनके अन्दर न तो उतनी अधिक बुद्धिमानी और प्रज्ञा थी,

अथवा न उस तरह की शक्ति थी, जो वहां लड़ते हुए

अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा कर सकें।

ऐसे लोग भी धर्म की ओर मुड़े।

ये लोग बहुत बड़े धोखेबाज और ठग हैं,

ऐसे लोग ही, धर्म के लिए और उन लोगों के लिए भी,

जिन्हें धर्म की खोज है, एक समस्या बन जाएंगे।

ये पूजाघरों के चारों ओर छा जाने वाले ठग होंगे;

ये लोग पूजाघरों को भी एक व्यापार केंद्र बना देंगे

क्योंकि उनकी वासनाएं अभी भी छिपी हुई ताक लगाए हुए बैठी हैं, इन लोगों ने धर्म को राजनीति का अखाड़ा बना दिया है।

वास्तलृ में राजनीति के क्षेत्र में असफल हो जाने वाले ये राजनीतिक लोग ही हैं। तुम पूरे देश में घूमते हुए हर कहीं चारों ओर ऐसे ही गुरु पाओगे,

तुम यहां असफल हो जाने वाले राजनीतिक लोग ही पाओगे।

तुम भूतपूर्व मंत्रियों को किसी न किसी गुरु के पास आते हुए पाओगे- ये ऐसे लोग हैं जो संसार में बहुत कुछ चाहते थे, लेकिन पा न सके,

इसलिए ये लोग धर्म की ओर मुड़ गए क्योंकि यहां चीजें आसान हैं।

अधिक प्रतियोगिता भी नहीं है यहां, और तुम कुछ भी दावा कर सकते हो, और तुम सरलता से यह विश्वास कर सकते हो,

कि तुम बहुत ही उच्च स्तर पर पहुंचे हुए व्यक्ति हो।

और यहां कोई प्रतियोगिता नहीं है।

तुम पूरे विश्वास से कह सकते हो: 'मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया हूं कोई भी इससे इंकार नहीं कर सकता।

और कोई भी इसे अस्वीकार नहीं कर सकता।

उसके निर्णय करने का यहां कोई सामान्य मापदण्ड है ही नहीं,

और तुम अपना अनुसरण करने वाले बेवकूफ लोग हमेशा पा सकते हो। यहां मुक्तानंद जैसे लोग भी अनुयाइयों को पा सकते हैं।

मैं एक बार मुक्तानंद के आश्रम से गुजर रहा था

और केवल यह देखने के लिए कि वहां क्या हो रहा है, मैं उसके अन्दर गया।

मैंने कभी भी ऐसे साधारण व्यक्ति को,

लोगों का महान धार्मिक नेता बनते हुए नहीं देखा।

न उनमें कोई सम्भावना थी, न कोई उपलब्धि और न कोई अंतर्दृष्टि-

यदि तुमने उन्हें कभी सड़क पर टहलते हुए देखा हो

तो तुम पहचानोगे नहीं, कि उनमें कुछ भी सार है।

केवल सीधा सपाट साधारण व्यक्तित्व,

' ज़ेन ' जिस अर्थ में किसी को सहज सरल साधारण कहते हैं, वैसा साधारण नहीं, केवल सपाट सीधा व्यक्तित्व। लेकिन ऐसे लोग भी अनुसरण करने वाले लोग पा सकते हैं।

इस संसार में लाखों-करोड़ों लोग मूर्ख हैं;

और वे हमेशा विश्वास करने के लिए पहले से तैयार बैठे हैं।

वे किसी भी व्यक्ति के जाल में गिरने के लिए पहले ही से तैयार बैठे हैं।

और वास्तव में जब कहीं कोई जाल भी नहीं होता, लेकिन वे फिर भी गिर

जाते हैं,

क्योंकि वे यह विश्वास करना चाहते हैं कि कुछ चीज वहां घट रही है।

मनुष्य इतना अधिक कल्पनाशील है, और अपनी इस कल्पना के ही कारण

वह यह विश्वास करना शुरू कर देता है कि कुछ चीज घट रही है वहां।

ये लोग इस बारे में कम से कम कुछ इतना ही जानते हैं कि अब करना क्या है?

कोई व्यक्ति मेरे पास आता है और कहता है'

मैं अपने मेरुदण्ड में एक विशेष तरह की पीड़ा का अनुभव करता हूं। अब यदि मैं उससे यह कहता हूं कि यह पूरी तरह दर्द ही है

तुम उपचार के लिए किसी चिकित्सिक के पास जाओ,

तो वह मुझ से पूरी तरह मुंह मोड़कर चला जाएगा और कभी वापस नहीं लौटेगा,

क्योंकि वह इसके लिए आया ही नहीं था। वह तो मेरी स्वीकृति पाने आया था। यदि मैं कहता हूं: तुम्हारी कुण्डलिनी जाग रही है, तो वह प्रसन्न होगा। ऐसे मूर्ख लोग हमेशा मुक्तानंद जैसों को खोज लेते हैं।

और केवल साधारण लोग ही नहीं

कभी-कभी बहुत बुद्धिमान लोग भी मेरे पास आ जाते हैं।

कुछ ही दिन पहले एक फिल्म निर्माता मेरे पास आए-

वह पूरे भारत भर में बहुत ख्याति प्राप्त व्यक्ति हैं।

उनके रक्त में शक्कर की मात्रा सभी साधारण सीमाओं का अतिक्रमण करती पांच सौ तक पहुंच गई थी। वास्तव में उन्हें तो अब तक मर जाना चाहिए था। वह एक पियक्कड़ और एक महान भोजन भगत हैं,

वह स्वादिष्ट भोजन के पीछे ही भागते रहते हैं और छककर शराब पीते हैं। अब, रक्त में शक्कर की मात्रा अत्यधिक होने के कारण

उनका पूरा शरीर कांप रहा था।

ऐसा होना ही था, क्योंकि उनका पूरा शरीर रुग्ण है, उसका प्रत्येक रेशा रुग्ण है, और उनके अन्दर भी एक गहरी कंपकंपाहट है।

जब मैं दूसरे लोगों से बातचीत कर रहा था,

वह वहीं बैठे-बैठे कांप रहे थे।

तब उन्होंने मुझसे आ- आपका क्या खयाल है मेरे इस कांपने के बारे में? यह है क्या, कहीं मेरी कुण्डलिनी तो नहीं जाग रही है?

अब ऐसे लोगों के साथ क्या किया जाए? ऐसे ही लोग मुसीबत के शिकार है?

ये लोग ही खेगी ठगों को उत्पन्न करने के कार्य में सम्मिलित हैं;

और इसके लिए वे आधे जिम्मेदार हैं।

और मैं यह जानता हूं कि यह व्यक्ति मुक्तानंद का अनुयायी है।

अब मेरे लिए समस्या उठ खड़ी होती है- आखिर क्या किया जाए?

यदि मैं कहता हूं ' हां! तुम्हारी कुण्डलिनी ही जाग रही है, और यह तुम्हारा अंतिम जीवन है। शीघ्र ही कुछ दिनों बाद तुम बुद्ध हो जाओगे;'

तो वह झुकेगा, मेरे चरणों को स्पर्श करेगा और खुश-खुश लौट जाएगा। वह प्रसन्न होगा, मैं भी प्रसन्न रहूंगा, और हर चीज स्थायी रूप से ठीक होगी।

और वह चारों ओर मेरे बारे में कहता फिरेगा,

कि यही ठीक व्यक्ति है, वह अभी तक जितने भी लोगों को जानता है, यह उन सभी में सबसे अधिक महान सद्गुरु है।

यह एक बहुत सरल सा और अच्छा व्यापार है।

लेकिन तब मैं उसे धोखा दे रहा हूं।

मैं उसे मार रहा हूं मैं एक हत्यारा हूं

क्योंकि मैं जानता हूं कि वह मधुमेह से मर रहा है

और उसका मधुमेह सारी सीमाओं का अतिक्रमण कर चुका है।

यदि मैं कहता हूं: तुम्हारी कुण्डलिनी जाग गई और बुद्धत्व निकट है, और यह ठीक समाधि के समान है, और इसीलिए तुम कांप रहे हो; यह तुम्हारे ऊपर परमात्मा का अवतरण है,

अथवा, तुम दिव्यता की ओर बढ़ रहे हो

अथवा, तुममें दिव्यता अवतरित हो रही है;

तो वह बहुत-बहुत खुश हो जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति खुश है अब। और वहां कोई समस्या ही नहीं है।

वह मेरे लिए कार्य करेगा,

और जब तक वह मर नहीं जाता, वह मेरे बारे में बात करता रहेगा।

लेकिन जिस क्षण मैंने कहा:

इसका किसी भी तरह बुद्धत्व से कोई लेना-देना नहीं;

यह तो रक्त में अत्यधिक शक्कर बढ़ जाने का सामान्य मामला है, तुम्हारा पूरा शरीर ज्वर से कांप रहा है। तुम व्यर्थ समय नष्ट न कर डॉक्टर के पास जाओ और उन लोगों की बात सुनो;

तुरंत मैंने उनके चेहरे के बदलते भावों को देखा। जैसे वे कह रहे थे: यह व्यक्ति किसी तरह से कोई सद्गुरु है ही नहीं।

यह बुद्धत्व को उपलब्ध एक सद्गुरु कैसे हो सकता है,

जब वह इतनी साधारण सी बात भी नहीं समझ सकता, जो मुझमें घट रही है?

ऐसा वास्तव में हुआ।

पश्चिम का एक बहुत प्रसिद्ध व्पीक्त फ्रैंकलिन जोन्स मुक्तानंद का शिष्य था,।

और तब उसकी कुण्डलिनी जागृत हुई।

मुक्तानंद ने उसे सत्यापित करते हुए कहा: अब तुम एक सिद्ध बन गए हो। न केवल उसे सत्यापित किया, वरन् उन्होंने उसे एक प्रमाणपत्र भी दिया। जैसी मूर्खता चल रही थी, मैं उस पर विश्वास ही न कर सका-एक प्रमाणपत्र देना कि तुम अब सिद्ध और बुद्ध हो गए हो।

इसलिए निश्चित रूप से एक सिद्ध हो जाने पर उसने अपना नाम बदल दिया।

वह केवल फ्रैंकलिन जोन्स था, अब वह बाबा फ्री जोन्स बन गया,

और उसके अपने बहुत से शिष्य भी बन गए।

समस्या तो तब खड़ी हुई, जब वह मुक्तानंद की आशा के विपरीत उनसे- कहीं अधिक बुद्धत्व घटने का दावा करने लगा,

और वह अपने अधिकार से स्वयं सद्गुरु बन बैठा।

कुछ महीने पश्चात वह फिर आया- अब वह एक दूसरा प्रमाणपत्र चाहता था।

अब वह यह प्रदर्शित करना चाहता था:

कि उसके लिए अब किसी सद्गुरु से जुड़े रहने की कोई जरूरत नहीं रह गई है, क्योंकि वह स्वयं एक सद्गुरु बन गया है।

और उसके सभी कर्म मुक्तानंद के साथ पूरे हो चुके हैं।

इसलिए उसने मुक्तानंद से कहा: आप मुझे अब यह प्रमाणपत्र दीजिए कि मैं पूरी तरह से मुक्त हो गया हूं।

अब मुक्तानंद हिचके-यह बात तो बहुत अधिक बढ़ गई।

इसलिए उन्होंने इंकार कर दिया कि वह उसे दूसरा प्रमाणपत्र नहीं देंगे। लेकिन बात तो पहले ही से काफी अधिक बढ़ गई थी।

उस व्यक्ति ने अपने घर लौटकर एक पुस्तक लिखी, और उसमें कहा:

निश्चित रूप से मेरी अंतर्यात्रा में मुक्तानंद ने थोड़ी सी सहायता

अवश्य की, लेकिन वह बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति नहीं है,

और अब मैं अपने सभी सम्बन्ध उनसे तोड़ रहा हूं।

वह एक साधारण व्यक्ति हैं।

यह एक उदाहरण है कि यहां चीजें किस तरह से चल रही हैं।

वह एक बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति थे, क्योंकि उन्होंने प्रमाणपत्र दिया था,

वह संसार में सबसे अधिक महान सद्गुरु थे। अब वह वैसे नहीं रहे। वह एक सामान्य व्यक्ति हैं-

मैं उनके साथ अपने सारे सम्बन्ध तोड़ रहा हूं।

ये चीजें इसी तरह से चले जा रही हैं। यह स्मरण रहे

कि इसी कारण तुम स्वयं इस खेल का एक भाग बन सकते हो।

तुम स्वयं पर बहुत अधिक भरोसा मत करो। होशपूर्ण बने रहो।

जब तुम मेरे पास आते हो तो मैं ठीक वही कहता हूं जो हो रहा होता है। बहुत से लोग मुझसे इसीलिए दूर चले गए-

केवल इसी कारण, कि मैं उनके अहंकार को सहारा नहीं दूंगा

और मैं उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं करूंगा,

और मैं वह नहीं कहूंगा, जो वे मुझसे कहलवाना चाहते हैं।

और एक बार जब वे चले जाते हैं, तो वे मेरे विरुद्ध हो जाते हैं।

वैसा उन्हें होना ही है।

ये सभी जाल हैं, जिन्हें ठग और धोखेबाज ही नहीं बनाते,

उनके बनाने में तुम उनकी सहायता करते हो।

किसी भी धोखा देने वाले कार्य में किसी के सहभागी मत बनो,

इस बारे में बहुत-बहुत सजग बने रहना है।

-यह भिक्षु जो एक ढोंगी था, और जिसके पास कोई प्रामाणिक समझ न थी, अपने आपको 'मौन का सद्गुरु' कहा करता था।

यह बहुत सुन्दर चाल है

क्योंकि यदि तुम कुछ भी कहोगे, तो तुम पकड़े जा सकते हो,

इसलिए पूरी तरह से मौन बने रहना ही सबसे सुन्दर बात है,

तब कोई भी तुम्हें पकड़ नहीं सकता।

ऐसा कहा जाता है, कि दो तरह के लोगों का मौन रहना अच्छा होता है, एक तो अत्यधिक प्रज्ञावान लोगों को मौन रहना चाहिए

क्योंकि वे जो कुछ जानते हैं, उसे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

और दूसरे बहुत-बहुत मूढ़ लोगों को भी,

क्योंकि यदि वे मौन नहीं बने रहते, तो वे पकड़े जाएंगे।

इसलिए यहव्यक्ति, जो ढोंगी था, अपने को स्वयं ' मौन का सदगुरु कहा करता था। वह एक शब्द का भी उच्चारण नहीं करता था।

लेकिन यदि तुम कुछ बोलोगे ही नहीं, तो तुम किसी चीज को बेच नहीं सकते।

यदि एक सेल्समैन मौन बना रहे, तो वह चीजों को कैसे बेच सकता है? इसलिए उसने युक्ति भरी एक योजना बनाई।

अपने धोखा देने वाले निरर्थक ज़ेन का व्यापार करने के लिए
उसने अपने निकट सेवा में दो वाक्पटु भिलुओं को
लोगों के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए रख छोड़ा था।
लेकिन वह, जैसे मानो ज़ेन के रहस्यमय मौन को प्रदर्शित करने के लिए
स्वयं कभी भी एक शब्द तक का उच्चारण नहीं करता था।
एक दिन उसके दोनों सेवकों की अनुपस्थिति में
सत्य का एक खोजी आया और उसने उससे पूछा:
'हे सद्गुरु!' एक बुद्ध क्या होता है?'

ज़ेन के प्रश्नों में से यह एक प्रमुख प्रश्न है।
इसका अर्थ है: धर्म क्या है? उसका स्वभाव क्या है?
इसका अर्थ है: चेतना क्या होती है?
इसका अर्थ है: एक जागा हुआ व्यक्ति क्या और कैसा होता है?
ज़ेन के सबसे अधिक आधारभूत प्रश्नों में से यह एक प्रश्न है-
एक बुद्ध क्या और कैसा होता है?
जिसे हम बुद्ध कहकर पुकारते हैं उसकी पूर्ण बुद्धत्व की स्थिति क्या और कैसी होती है?
यह न जानते हुए कि उसे क्या करना चाहिए और कैसे उस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए
अपने बंद मुंह के प्रवक्ता बने, दोनों शिष्यों की कमी का अनुभव करते हुए
वह निराश होकर सभी दिशाओं में चारों ओर देखने लगा
वह अंतर्यात्री संतुष्ट और अनुग्रहीत होकर
सदगुरु को धन्यवाद देता हुआ अपनी यात्रा पर फिर चल पड़ा।
रास्ते में उस अंतर्यात्री को, आश्रम की ओर जाते हुए
उस गुरु की देखभाल और सेवा करने वाले वे दोनों शिष्य मिले।
उसने उन्हें बहुत उत्साह से यह बताना शुरू किया-

कि बुद्धत्व को उपलब्ध मौन के इस सद्गुरु का तो कहना ही क्या?

निश्चित रूप से उसने प्रक्षेपण किया।

उसने जरूर ही यह सुन रखा होगा कि जो लोग जानते हैं, वे मौन रहते हैं। उसने ऐसा शास्त्रों में भी जरूर पढ़ा होगा

जहां लाखों बार यह कहा गया है
कि कोई एक जो जानता है, कभी कुछ कहता नहीं;

और वह एक जो कहता है, तो समझो उसने अभी तक उसे जाना नहीं। लेकिन ये सभी बहुत-बहुत आत्मविरोधी चीजें हैं।

'ताओ-ते-चिंग' के बिस्कूल प्रारम्भ ही में लाओत्थू कहता है;

कि सत्य कहा नहीं जा सकता,

और जो कुछ उसके बारे में कहा जाता है, वह सत्य नहीं है।

लेकिन लाओत्थू ने यह कहा तो, उसे अभिव्यक्त तो किया।

इसलिए इस बारे आखिर क्या सोचा जाए?

यह कथन सत्य है अथवा नहीं?

उसने शब्दों का उच्चारण किया, उसे कहा गया।

अब तुम बहुत बड़ी मुसीबत में पड़ जाओगे।

लाओंच्छू कहता है कि सत्य कहा नहीं जा सकता, लेकिन इतना कुछ तो वह कह ही रहा है।

इसलिए उसका यह कहना सत्य है अथवा नहीं?

यदि यह सत्य नहीं है, तो इसका अर्थ होगा कि सत्य कहा जा सकता है; यदि यह सत्य है, तब यह भी नहीं कहा जा सकता।

धर्म विरोधाभासों से भरा हुआ है और इसके साथ यही समस्या है।

इस व्यक्ति ने बहुत से ज़ेन सद्गुरुओं के वचन पड़े होंगे

जिनमें कहा गया है कि सत्य को कहा नहीं जा सकता।

यह ठीक है: सत्य को कहा नहीं जा सकता।

लेकिन इतना तो जरूर ही कहा जा सकता है कि

बहुत सी चीजें कही भी जा सकती हैं,

लाखों ऐसी चीजें कही जा सकती हैं, जो उसे खोजने में सहायक होंगी, जिसे कहा नहीं जा सकता।

बहुत सी चीजों की ओर संकेत किया जा सकता है,

और जिसे नहीं कहा जा सकता, कम से कम उसे दिखाया जा सकता है। पूरा अर्थ केवल इतना ही है:

कि सत्य, शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा है।

वह मौन से भी कहीं अधिक बड़ा है।

सत्य इतना अधिक विराट है

कि उसे शब्दों के खोल या आवरण में बने रहने के लिए विवश नहीं किया जा सकता,

और उसे मौन की सीमा में भी विवश नहीं किया जा सकता।

वास्तव में सत्य में मौन का अस्तित्व है,

और सत्य में शब्दों का भी अस्तित्व है।

सत्य तो पूर्ण विराट आकाश है, पूर्ण शून्यता है, जिसमें सभी कुछ समाहित है। इस गुरु ने इस कठिनाई में सफल होने के लिए एक चालबाजी की। यह सोचते हुए कि सत्य कहा नहीं जा सकता,

सबसे अच्छा रास्ता यही है कि मौन रहा जाए-

लेकिन तब कोई भी उसकी ओर आकर्षित नहीं होगा

इसलिए इस बारे में बात करने के लिए उसने प्रवक्ता के रूप में दो सेवक रखे।

यह व्यवस्था बहुत अच्छी है,

क्योंकि यदि वे दोनों कोई गलत बात भी कहते हैं तो वह फंस नहीं सकता। यदि वह कोई बात ठीक कहते हैं-तो सब कुछ अच्छा है ही।

लेकिन एक दिन वह पकड़ा गया।

तुम कुछ समय तक ही लोगों को धोखा दे सकते हो,

लेकिन तुम सदैव के लिए लोगों को धोखा नहीं दे सकते।

किसी दिन, कहीं भी तुम पकड़े ही जाओगे।

तुम झूठ की कोई ऐसी व्यवस्था नहीं बना सकते

जो हमेशा-हमेशा चलती ही चली जाए। सत्य का विस्फोट तो होगा ही। तुम निन्यानवे अवसरों पर सफल हो सकते हो

लेकिन एक प्रतिशत तो तुम असफल होगे ही

और यह एक प्रतिशत ही पूरी सफलता को असफल बना देगी,

वह तुम्हारी पूरी योजना को बरबाद कर देगी।

एक दिन सत्य का एक खोजी आया और उसने पूछा: 'बुद्ध क्या और कैसा होता है?'

वह गुरु निराश होकर

अपने प्रवक्ता बने दोनों शिष्यों की कमी अनुभव कर वह चारों दिशाओं में इधर-उधर देखने लगा।

सत्य क्या है, इसका उत्तर उसके पास था ही नहीं।

और चारों दिशाओं में देखते हुए वह न तो सत्य को, और न बुद्ध को

इंगित करने के लिए कुछ देख रहा था,

और न अपनी मुद्राओं द्वारा किसी चीज की ओर संकेत कर रहा था।

लेकिन उस खोजी के मन ने प्रक्षेपण कर लिया।

उसके चारों दिशाओं में इधर-उधर देखने से उसने सोचा

कि वह वास्तव में एक ज़ेन सद्गुरु, एक महान ज़ेन सद्गुरु था।

वह शब्दों का उच्चारण नहीं कर सकता, लेकिन वह यह दिखला रहा है कि तुम प्रत्येक आयाम और प्रत्येक दिशा में उसे देख सकते हो,

और तुम कहीं भी बुद्ध न पाओगे, क्योंकि बुद्ध तो अपने अन्दर है।

तुम उसकी खोज और तलाश कर सकते हो और तुम उसे कहीं पाओगे नहीं, क्योंकि वह स्वयं खोजी के ही अन्दर है।

यह उसका प्रक्षेपण था, और यह वह है जिसे तुम सरलता से कर सकते हो। ऐसे ही लोग छले जाते हैं, उन्हें धोखा दिया जाता है-

और उनके पास अपने मन और विश्वास हैं, अपनी धारणाएं और अपने सिद्धांत हैं और वे उन्हीं को प्रक्षेपित करते हैं।

कई बार यह मेरे साथ भी हुआ। मैंने लोगों को प्रक्षेपण करते देखा।

एक व्यक्ति मेरे पास आया। वह अपने साथ एक थैला भी लाया था।

मैं नहीं जानता था कि उसने थैले में क्या रखा हुआ है?

उसने मेरे पैर छुए और उस समय भी थैला उसके हाथों में था,

इसलिए उसके थैले ने मेरे पैरों का स्पर्श किया।

मैंने सोचा कि केवल यह एक संयोग था।

लेकिन उस व्यक्ति ने अपने थैले में पानी से भरी हुई

एक बोतल रख छोड़ी थी, और वह एक संयोग नहीं था।

वह चाहता था कि वह बोतल मेरे पैरों का स्पर्श करे,

और जो कुछ वह कर रहा था, मैं उससे पूरी तरह बेखबर था।

तब कुछ दिनों के बाद वही व्यक्ति मेरे पास फिर आया,

और उसने मुझे धन्यवाद दिया, और वह बहुत-बहुत कृतज्ञ था।

उसने कहा: 'आपने मेरी बीमारी ठीक कर दी।'

मैंने पूछा: 'कैसी बीमारी? मैं तुम्हारी बीमारी के बारे में कुछ जानता ही नहीं।'

उसने कहा: 'मुझे सालों से भयंकर सिर दर्द रहता था, एक तरह का माइग्रेन, और पिछली बार मैं पानी से भरी बोतल के साथ आया था।

और आपने उसे अपने चरणों से छू दिया था।'

मैंने कहा: 'मैंने कभी किसी बोतल को अपने पैरों से नहीं छुआ।'

उसने कहा: 'अब जैसे कुछ भी हुआ, आपने बोतल को छुआ था

और मैं कुछ दिनों तक उसी पानी को पीता रहा

और मेरा सिर दर्द पूरी तरह जाता रहा।'

अब इसका क्या किया जाए?

यदि मैं उससे यह कहता हूं कि यह पूरी तरह से तुम्हारा अपना ही जादू है, और तुमने ही आत्मसम्मोहन द्वारा इसे किया है, तब इस बात की सम्भावना है कि उसका सिर दर्द फिर से वापस लौट सकता है;

क्योंकि तुम स्वयं अपने पर विश्वास नहीं कर सकते,

तुम हमेशा किसी अन्य व्यक्ति पर विश्वास करते रहे हो,

तुम स्वयं अपने पर विश्वास कर ही नहीं सकते-

लेकिन यदि तुम स्वयं पर विश्वास नहीं कर सकते,

फिर तुम किसी अन्य व्यक्ति पर विश्वास कैसे कर सकते हो?

लेकिन ऐसा ही चले जा रहा है।

तुम अन्दर शक्तिहीन होने का अनुभव करते हो, तुम स्वयं अपने पर ही विश्वास नहीं कर सकते।

तुम किसी अन्य व्यक्ति को खोजते हो, और किसी अन्य व्यक्ति के विश्वास के द्वारा ही, तुम्हारा अपना जादू और अपना आत्म सम्मोहन कार्य करना शुरू कर देता है।

यह व्यक्ति ठीक हो गया। पहली बात तो यह,

उसका सिरदर्द स्वयं उसके ही द्वारा सृजित होना चाहिए-

क्योंकि एक प्रामाणिक सिर दर्द इस तरह से ठीक नहीं किया जा सकता, केवल एक झूठा सिरदर्द, एक मनोवैज्ञानिक दर्द ही ठीक हो सकता है। पहली बात यह कि वह एक सम्मोहित सिरदर्द था;

और दूसरी बात यह, उसने उसे ठीक कर लिया।

लेकिन यह व्यक्ति खतरनाक है,

क्योंकि यदि तुम सिरदर्द सृजित कर सकते हो,

तो तुम कैंसर भी सृजित कर सकते हो।

चीजों का प्रक्षेपण करना...

एक बार ऐसा हुआ कि एक व्यक्ति मेरे ही साथ ठहरा,

और हम दोनों एक ही कमरे में सो रहे थे।

रात में मैं टॉयलेट जरूर गया था,

और उस समय वह व्यक्ति आधा सोया और आधा जागा हुआ रहा होगा। इसलिए उसने जब मेरा बिस्तर देखा तो मैं वहां नहीं था।

तब वह कुछ क्षणों के लिए जरूर ही फिर गहरी नींद में चला गया होगा। जब मैं टॉयलेट से वापस आया तो उसने मुझे फिर से देखा होगा,

कि मैं वहां था

इसलिए उसने सोचा कि मैं कुछ क्षणों के लिए अंतर्धान हो गया था।

बिस्तरे से कूदकर उसने मेरे पैर पकड़ लिए और बोला:

आपने यह चमत्कार तो किया, केवल मुझे यह बता दें

कि आपने ऐसा किया कैसे?

अब मैं आपको कभी भी छोडूंगा नहीं। आप ही सच्चे सद्गुरु हैं।

इसलिए मैंने उससे कहा: जी, है। तुम मुझे मत छोड़ना

लेकिन कम से कम मुझे कुछ कहने का अवसर तो दो

कि मैं भी तुम्हारे साथ हमेशा रहना चाहता हूं अथवा नहीं?

क्योंकि कि तुम पूरी तरह से एक मूर्ख व्यक्ति हो।

लेकिन इस व्यक्ति ने कहा: नहीं, आप दूर जाने की कोशिश न करें।

मैं आपको छोड़ने वाला नहीं हूं।

मैंने चमत्कार होते स्वयं देखा है: मैं इसी की तो प्रतीक्षा कर रहा था

कि मैं एक ऐसा सद्गुरु चुनूंगा जो कभी भी अंतर्धान हो सके।

आपने ऐसा करके दिखा दिया, और इसे मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा।

मन के दांवपेंच और चालों को समझना बहुत कठिन है।

मैं जो नहीं कह रहा हूं तुम उन बातों को भी सुन सकते हो:

मैं जो कुछ नहीं कर रहा हूं तुम उन चीजों के भी आर-पार जा सकते हो; और तुम स्वयं अपने आप को धोखा दे सकते हो।

इसलिए यह जरूरी नहीं है कि कोई दूसरा व्यक्ति ही तुम्हें धोखा दे,

तुम स्वयं अपने आप को धोखा दे सकते हो।

तुम एक आत्म प्रवंचक हो।

'मौन सद्गुरु को निराश होकर चारों ओर देखते हुए
उस व्यक्ति ने सोचा कि यही प्रामाणिक रूप से बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति
क्योंकि यह इशारा कर रहा है कि बुद्ध कहीं भी नहीं पाए जाते।
इसलिए अच्छी तरह से संतुष्ट होकर उसने सद्गुरु को धन्यवाद दिया,
और फिर अपनी यात्रा पर चल पड़ा।

रास्ते में उस खोजी को सद्गुरु की देखभाल करने वाले वे दोनों भिक्षु मिले,
जो आश्रम वापस लौट रहे थे।
उसने अति उत्साह से बतलाना शुरू कर दिया
कि यह मौन का सदगुरु कितना अधिक बोध को उपलब्ध व्यक्ति है? उसने कहा: मैंने उनसे पूछा: युद्ध क्या और कैसा होता है?

और उन्होंने अपने चेहरे को तुरंत पूरब से पश्चिम की ओर मोड़ लिया। जिसका सांकेतिक अर्थ है कि मनुष्य जाति बुद्ध को हमेशा इधर-उधर खोजती रहती है, लेकिन बुद्ध वास्तव में ऐसी किसी भी दिशा में नहीं पाया जाता।

ओह, वह बुद्धत्व को उपलब्ध कितना महान सद्गुरु है
और कितनी गूढ़ हैं उसकी सिखावनें
जब देखभाल करने वाले वे प्रवक्ता भिक्षु वापस लौटे
तो मीन के सद्गुरु ने उन्हें डांटते हुए कहा:
तुम इतनी देर के लिए कहा चले गए थे?

कुछ देर पहले एक जिज्ञासु अंतर्यात्री के द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर मैं परेशान होकर लगभग मरणासन और बरबाद
होने की स्थिति तक जा पहुंचा था।'

इस बोध कथा का भलीभांति स्मरण रहे,
क्योंकि अपनी अंतर्यात्रा में यह तुम्हारी भी कथा हो सकती है।
लेकिन ऐसा होना नहीं चाहिए-
इस कथा को तुम्हारी कथा नहीं बनना चाहिए
मैं तुम्हें यह कहानियां सुनाकर उनके बारे में यह बतलाना चाहता हूं।
कि तुम निश्चित चीजों के प्रति सचेत बनो।

मैं इन कथाओं से बहुत प्रेम करता हूं क्योंकि ये इतने प्रामाणिक और इतने अधिक प्रत्यक्ष रूप से और इतनी शीघ्रता से उन निश्चित घटनाओं की ओर संकेत करती हैं
जिनकी प्रत्येक अंतर्यात्री को अपने पथ पर मिलने की सम्भावना है
कैसे उनसे बचा जाए जिससे तुम उनसे धोखा न खा सको?
ठगों और धोखेबाजों के बारे में कुछ भी नहीं किया जा सकता।
तुम आखिर कर ही क्या सकते हो?
वे यहां हैं, और पूर्ण अस्तित्व ने भी उन्हें अनुमति दी हुई है,

यहां तक तो यह ठीक है।

तुम उन ठगों के बारे में कुछ भी नहीं कर सकते।

इसलिए परेशान मत होओ, उन्हें उन्हीं के हाल पर छोड़ दो।

लेकिन तुम स्वयं अपने बारे में तो कुछ कर ही सकते हो,

आवश्यक बात केवल यही है।

मैं यह नहीं चाहता कि तुम क्रांतिकारी बनकर

ऐसे बाबाओं को जाकर मार डालो। उन्हें उनके ही हाल पर छोड़ दो।

मैं तुमसे क्रांतिकारी बनने के लिए नहीं कह रहा हूं

लेकिन तुमसे अधिक सचेत और सजग बनने के लिए कह रहा हूं

जिससे ऐसी घटनाएं तुम्हारे साथ न घट सकें। बस इतनी सी ही बात है। ऐसे बाबा और ठग निरंतर और हमेशा बने रहेंगे

क्योंकि यहां बहुत से मूर्ख लोग हैं, ओर उन लोगों को उनकी जरूरत है: वे एक विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

इसलिए आखिर क्या किया जाए? तुम केवल एक ही चीज कर सकते हो, तुम अपने अन्दर से उस जरूरत को गिरा दो। प्रक्षेपण मत करो।

अपने मन में विश्वासों को स्थाई रूप से जमने की अनुमति मत दो।

अपने मन की प्रतिदिन ऐसे सफाई करो, जैसे कोई अपने घर को साफ करता

दिन भर में गर्द इकट्ठी हो जाती है, तुम शाम को उसे साफ कर देते हो, और सुबह फिर

रात में तुमने कुछ भी नहीं किया है, लेकिन रात में भी गर्द फिर इकट्ठी हो जाती है, इसलिए सुबह तुम्हें फिर उसे साफ करना होता है।

तुम्हें अपने मन को, विश्वासों, धारणाओं, सिद्धांतों, विचारों,

आदर्शों, दार्शनिक विचारधाराओं धार्मिक निर्देशों और शास्त्रों से

निरंतर साफ और शुद्ध करते रहना है।

तुम्हें अपने मन को शाब्दिक बकवास से भी पूरी तरह साफ करना है

और तुम अपने अन्दर बिना मन के सत्य की ओर देखने का प्रयास करो। केवल देखो, एक शुद्ध, थिर और नग्न दृष्टि से।

तिलोपा कहता है: स्थिर नग्न दृष्टि से देखते रहो और तुम्हें महामुद्रा घटित होगी।

स्थिर नग्न दृष्टि के द्वारा ही, मनुष्य की चेतना के लिए जो भी सम्भव है तुम बुद्धत्व की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त कर लोगे।

पहले तुम अपनी दृष्टि को सभी धारणाओं से मुक्त कर शुद्ध कर लो,

तभी सत्य तुम्हारे सामने प्रकट होगा,

क्योंकि तब तुम उसे विकृत न कर सकोगे,

तुम उसे प्रक्षेपित न कर सकोगे

और तुम उसमें किसी भी चीज का कोई वजन न रख सकोगे।

इस खोजी ने किया क्या? उसके पास कुछ विचार और धारणाएं थीं,
और उसने उन्हें सद्गुरु की मुद्राओं में
जो अपने प्रवक्ताओं को चारों ओर खोजते हुए देखा रहा था,
उसने उस स्थिति में अपने विचारों को स्थापित कर दिया

उसने कहीं यह जरूर पढ़ा होगा
कि बुद्ध को किसी भी दिशा में नहीं खोजा जा सकता,
उसने इसी विचार और धारणा को प्रक्षेपित कर दिया।
प्रक्षेपणकर्ता मत बनो, मन को सक्रिय मत रखो।
अपने मन को पूरी तरह निष्क्रिय और ग्रहण करने वाला ग्राहक बनाओ। मन से कोई भी चीज लाकर अस्तित्व में मत उडेलो,
अन्यथा वह विकृत हो जाएगा।
पूरे अस्तित्व को मन में पूरी तरह प्रवेश करने की अनुमति दो,
और तुम एक निष्क्रिय निरीक्षणकर्ता और निष्क्रिय साक्षी बने रहो।
तब चाहे जो भी स्थिति हो, तुम उसे जानोगे
तब 'वह' जो कुछ भी है, तुम्हारे सामने प्रकट होगा,
और केवल वही तुम्हें विकसित कर पूर्ण बनाएगा।
और अंतिम रूप से तुम्हारी खिलावट होगी।

यदि तुम इस अस्तित्व को जानना चाहते हो, तो मन को विसर्जित कर दो, यदि तुम सत्य को समझना चाहते हो, तो मन को एक तरफ उठाकर रख दो, सत्य सदा वहां पहले से ही है,
लेकिन तुम्हारा मन ही ठीक बीच में बाधा बना खड़ा है।
मन को हटाकर एक ओर रख दो एक खिड़की बनाओ और देखो,
जीवन का आत्यंतिक रहस्य और प्रत्येक चीज तुम्हारे सामने
अपना घूंघट उघाड़ देगी।
मन के साथ कभी भी कोई भी व्यक्ति सत्य को जानने में समर्थ न हो सका है। बिना मन के कोई भी व्यक्ति सत्य को जान सकता है।
क्योंकि मन ही एकमात्र बाधा है
सत्य को बने रहने के लिए मन का अंत करना ही होगा।
और मन के सिवा तुम्हारे पास कुछ और है ही नहीं, इसलिए मन को एक ओर उठाकर रखना बहुत-बहुत कठिन और श्रमपूर्ण है,
लेकिन ऐसा होता है, यदि तुम निरंतर प्रयास करते रही।
प्रारम्भ में केवल कुछ क्षणों के लिए ही वहां उसकी झलकें मिलेंगी,
लेकिन वे झलकें भी तुम्हें एक नया आयाम देंगी।
मन कुछ क्षणों के लिए रुकता है, और तभी अचानक
जैसे मानो एक बिजली सो कौंध जाती है

और मन का पूरा संसार विलुप्त हो जाता है

और सत्य के संसार का दर्शन होता है।

ये बिजली जैसी कौंध तुम्हें भी घटेगी

और तब धीमे- धीमे तुम अमन की स्थिति में थिर होते जाओगे। तब वहां बिजली की कौंध की भी कोई आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि सूर्योदय हो चुका है।

अब सुबह मुस्करा रही है और सारा अंधकार विलुप्त हो गया है। एक धार्मिक मनुष्य, वह मनुष्य है-जो बिना मन,

और बिना किसी विश्वास के होता है।

एक धार्मिक मनुष्य, वह मनुष्य होता है, जो श्रद्धावान हो।

आज इतना ही।

छठवां प्रवचन

जागरण

सूत्र:

महान सदगुरु गीजान के सान्निध्य में

तीन वर्षों के कठोर प्रशिक्षण के बाद भी

कोश सतोरी प्राप्त करने में समर्थ न हो सका था।

सात दिनों के विशिष्ट अनुशासन सत्र के प्रारम्भ में ही

उसने सोचा कि अंतिम रूप से उसके लिए यह अवसर आ पहुंचा है, वह मंदिर के द्वार की मीनार के ऊपर चढ़ गया।

और बुद्ध की प्रतिमा के सामने जाकर उसने यह प्रतिज्ञा की:

या तो मैं यहां अपने सपने को साकार करूंगा,

अथवा इस मीनार के नीचे गिरे, वे मेरे मृत शरीर को पाएंगे।

वह बिना भोजन किए बिना सोए निरंतर ' जा जेन ' करता रहता,

अपने मनोबल को ऊंचा उठाने को वह प्राय: चिल्लाते हुए इस तरह की बातें करता-ऐसे मेरे कौन से कर्म थे कि सभी प्रयासों के बावजूद भी मैं इस मार्ग को समझ नहीं पाता।

अंत में उसने अपनी हार स्वीकार कर ली

और अपने जीवन का अंत करने का दृढ़ निश्चय किया। वह मीनार पर चढ़ गया और रेलिंग से छलांग लगाने को धीमे से अपना पैर ऊपर उठाया

ठीक उसी क्षण उसे जागरण हुआ।

आनंद के अतिरेक में वह तेजी से सीढ़ियां फलांगता, गिरता-पड़ता

सदगुरु गीजान के कक्ष में गया। इससे पहले वह कुछ कह पाता, सदगुरु हर्षित होकर बोले:

वाह! बहुत खूब! आखिर तेरे लिए वह दिन आ ही गया।

मनुष्य अकेला ऐसा प्राणी है, जो आत्महत्या के बारे में

सोच सकता है, प्रयास कर सकता है,

अथवा वास्तव में आत्महत्या कर भी सकता है।

आत्महत्या करना एक बहुत विशिष्ट चीज है। यह एक मानवीय कृत्य है। जानवर जीते हैं, और वे मर जाते हैं लेकिन वे आत्महत्या नहीं कर सकते। वे जीते हैं, लेकिन वहां कोई भी समस्याएं नहीं होतीं,

उनका जीवन उनके लिए कोई भी दु:ख निर्मित नहीं करता।

उनके लिए जीवन में कोई व्यग्रता या उत्कंठा नहीं है-वे सामान्य रूप से जीते हैं।

और तब जितने सामान्य रूप से वे जीते हैं, उतनी ही सामान्यता से वे मर जाते हैं। जानवरों में मृत्यु के प्रति कोई चेतना नहीं होती।

वास्तव में वे न तो जीवन के प्रति सचेत होते हैं और न मृत्यु के ही प्रति, इसलिए आत्महत्या करने का उनके लिए कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

वे इसके प्रति सचेत हैं ही नहीं।
वे अचेतन की गहरी मूर्च्छा में जीते हैं।

केवल मनुष्य ही आत्महत्या कर सकता है।

इसका अर्थ है कि जीवन और मृत्यु के बारे में मनुष्य ही कुछ कर सकता है। इसका अर्थ है कि केवल मनुष्य ही जीवन के विरुद्ध खड़ा हो सकता है। यह सम्भावना वहां इसलिए है क्योंकि मनुष्य चेतन है।

लेकिन स्मरण रहे, कि जीवन की समस्याएं-जैसे व्यग्रता, तनाव, दुःख, और आत्महत्या करने का अंतिम निर्णय आदि

वे चेतना से नहीं आती हैं-
ये खण्डित चेतना से आती हैं।
यह गहराई से समझ लेने जैसा है

कि एक बुद्ध भी चेतन है, लेकिन वह आत्महत्या नहीं कर सकता,
वह उसके बारे में सोच भी नहीं सकता।
एक बुद्ध के लिए आत्महत्या, अस्तित्व में है ही नहीं,
लेकिन वह फिर भी चेतन है। क्यों?
सभी जानवर पूरी तरह अचेतन में हैं : बुद्ध पूरी तरह चैतन्य है।
सम्पूर्ण चेतना के साथ कोई समस्या नहीं होती
अथवा पूर्ण अचेतन के साथ भी कोई समस्या नहीं होती।
वास्तव में किसी भी तरह से अखण्ड होना, सभी समस्याओं के पार है।

एक मनुष्य की चेतना खण्डित होती है:
उसका एक भाग ही चेतन हुआ है।
यही पूरी समस्या उत्पन्न करता है।
शेष भाग, जो काफी बड़ा है, वह अचेतन ही रहता है।
मनुष्य इस तरह दो भागों में बंट गया है।
एक भाग चेतन है, और शेष पूरा भाग अचेतन है।
मनुष्य की निरंतरता खो गई है।
वह अखण्ड नहीं है। वह समग्र नहीं है। वह एक से दो हो गया है। उसमें द्वैतता आ गई है।
वह सागर में तैरते हुए उस हिमखण्ड की भांति है
जिसका एक बटा दस भाग पानी से बाहर है
और नौ बटे दस भाग उसके नीचे छिपा है।
यही अनुपात मनुष्य की चेतनता और अचेतनता में है:
उसका एक बटा दस अचेतन ही अभी चेतन बना है,
नौ बटे दस चेतना, अभी भी अचेतन है।
केवल उसके ऊपर की पर्त ही चेतन है, और शेष पूरा अस्तित्व अभी भी नीचे के अंधकार में ही रहता है।

निश्चित ही इससे समस्याएं खड़ी हो रही हैं
क्योंकि उसके अस्तित्व में संघर्ष उत्पन्न हो गया है।
तुम दो भागों में बंट गए हो; और चेतन भाग इतना अधिक छोटा है कि तुम लगभग शक्तिहीन हो।
यह भाग बातचीत कर सकता है, बहुत पारंगत हो सकता है, विचार कर सकता है;
लेकिन जब कुछ करने का क्षण आता है
तो अचेतन भाग की आवश्यकता होती है,
क्योंकि अचेतन के पास ही उसे करने की ऊर्जा है।
तुम यह निश्चय कर सकते हो कि फिर से क्रोध नहीं करोगे,
लेकिन यह निर्णय मन के शक्तिहीन भाग का होता है
जो भाग थोड़ा सा चेतन है,
जो यह देख सकता है कि क्रोध करना अर्थहीन है, हानिप्रद और विषैला है; जो पूरी स्थिति को देख सकता है और निर्णय करता है।

लेकिन इस निर्णय के पीछे कोई शक्ति नहीं होती, क्योंकि सारी शक्ति उस शेष पूरे भाग के पास है, जो अभी भी अचेतन है।

चेतन भाग निर्णय करता है, 'मैं अब फिर से क्रोध नहीं करूंगा;'
लेकिन जब स्थिति उत्पन्न होती है, तो ऐसा हो नहीं पाता।
जब स्थिति उत्पन्न होती है तो चेतन भाग को एक किनारे धकेल कर अचेतन भाग सतह पर आ जाता है।
यह शक्तिशाली है, ऊर्जावान और महत्वपूर्ण है;
और अचानक वह तुम पर अधिकार जमा लेता है।

चेतन भाग थोड़ी बहुत कोशिश तो कर सकता है, लेकिन वह
उस ज्वार के विरुद्ध कुछ भी न होकर, केवल व्यर्थ ही होती है।
जब अचेतन एक ज्वार-भाटा बन जाता है
और स्थिति को अपने अधिकार में ले लेता है, तो तुम असहाय हो जाते हो, तुम और अधिक अपने स्व में नहीं रह पाते, जिसे तुम स्वयं अपना जानते थे, तुम्हारा वह अहंकार दूर फेंक दिया जाता है।

तुम्हारे चेतन के द्वारा लिए गए सभी निर्णय
पूरी तरह से महत्वहीन हैं :
यह अचेतन ही है, जो सभी कुछ करता है।
फिर जब वह स्थिति चली जाती है, तो अचेतन पीछे लौट जाता है,
और चेतन फिर सिंहासन पर वापस आकर विराजमान हो जाता है।
चेतन तभी सिंहासन पर आ पाता है
जब वहां अचेतन नहीं होता।
वह ठीक एक सेवक की भांति है।

जब सम्राट नहीं होता वहां, तो सेवक ही सिंहासन पर बैठकर
आदेश देने लगता है।

लेकिन वास्तव में वहां कोई भी नहीं होता सुनने के लिए वह अकेला ही होता है।

जब सम्राट आ जाता है

तो सेवक को पूरी तरह सिंहासन छोड़ देना होता है

और सम्राट की आज्ञा सुननी होती है।

तुम्हारी चेतना का बड़ा भाग हमेशा ही सम्राट बना रहता है,

और छोटा भाग एक सेवक की भांति रहता है।

तभी अधिक संघर्ष उत्पन्न होता है।

क्योंकि चेतना का जो भाग निर्णय लेता है, उसे कर नहीं सकता,

और जो भाग कर सकता है, वह निर्णय नहीं ले सकता।

एक खण्ड जो सभी चीजों को देखता है, उनके बारे में विचार कर सकता है, लेकिन उसके पास ऊर्जा नहीं है;

और वह भाग जो देख नहीं सकता, जो पूरी तरह अंधा है

सारी शक्ति उसी के पास है।

जानवरों में वहां दो खण्ड नहीं होते

केवल अचेतन ही होता है उनके पास और वह सोचता नहीं, कार्य करता है। वहां कोई समस्या होती ही नहीं, क्योंकि वहां कोई अंतर्संघर्ष नहीं होता। एक बुद्ध में भी दूसरे छोर पर ऐसा ही होता है:

उसका अचेतन पूर्ण सचेतन हो जाता है।

बुद्धत्व, सतोरी और समाधि का यही अर्थ होता है।

तुम फिर से एक पशु की भांति एक ही खण्ड बन गए हो।

अब बुद्ध जो भी निर्णय करता है, स्वत: वैसा ही होता भी है,

क्योंकि अब उसके अन्दर कोई भी उसके विरुद्ध नहीं है,

वहां कोई भी बेखबर नहीं है।

उसके घर में कोई दूसरा है ही नहीं।

बुद्ध अपने घर में अकेला ही रहता है,

इसलिए बुद्ध को संघर्ष करने की आवश्यकता ही नहीं है।

वह एक स्थिति को देखता है, निर्णय लेता है और कार्य करता है।

वास्तव में बुद्ध के अन्दर निर्णय लेना और क्रिया करना दो कार्य नहीं होते उसका निर्णय ही क्रिया होती है।

वह पूरी तरह से देखता है कि क्रोध करना व्यर्थ है, और क्रोध विलुप्त हो जाता है।

वैसा करने के लिए वह बलपूर्वक कुछ भी उस पर थोपने का प्रयास नहीं करता।

एक बुद्ध सहज, सरल और विश्राममय रहता है।

तुम सहज, सरल और विश्राममय होना गवारा नहीं कर सकते,

क्योंकि जिस क्षण तुम विश्राममय और सहज होते हो अचेतन आ धमकता है।

तुम्हें अपने आपको नियंत्रित करना होता है,

और तुम जितना अधिक उसे नियंत्रित करते हो, उतने अधिक तुम नकली बन जाते हो।

एक सभ्य मनुष्य प्लास्टिक के एक फूल की भांति होता है,

उसमें न तो जीवन स्कूर्ति होती है और न कोई ऊर्जा-

और जब वहां कोई ऊर्जा नहीं होती तो वहां कोई आनंद भी नहीं होता। अंग्रेजी साहित्य के एक महान कवि विलियम ब्लैक ने,

इस बारे में एक बहुत सुन्दर काव्य पंक्ति लिखी है, जिसमें गहरी अंर्तदृष्टि है। वह कहता है "ऊर्जा ही है खुशी, और यहां कोई दूसरी खुशी है ही नहीं। वही प्रामाणिक जीवन स्कूर्ति है, वही प्रामाणिक अस्तित्वगत आनंद है

और वही है प्रसन्नता और परमानंद। केवल शक्तिहीनता और असहायता ही दुःख और दुर्बलता है और द्वंद्व ही इस शक्तिहीनता को उत्पन्न करता है।"

तुम्हें दो में विभाजित करने के बाद

जो कुछ भी थोड़ी-सी ऊर्जा बच जाती है,

वह भी अंतर्संघर्ष में व्यर्थ नष्ट हो जाती है।

और तुम निरंतर अन्दर संघर्ष ही करते रहते हो,

निरंतर किसी चीज का दमन करते रहते हो,

निरंतर किसी अन्य चीज को विवश करने का प्रयास करते रहते हो। क्रोध आता है, और तुम अक्रोध में बने रहना चाहते हो;

लोभ जागता है और तुम अलोभ में बने रहना चाहते हो;

परिग्रह आता है और तुम अपरिग्रही बने रहना चाहते हो;

हिंसा उत्पन्न होती है और तुम अहिंसक बने रहना चाहते हो;

वहां कुरता जागती है और तुम उस पर करुणा आरोपित किए जाते हो;

वहां बहुत अधिक कोलाहल और शोर है,

और तुम मौन और शांत बने रहना चाहते हो;

अन्दर कुछ और चल रहा है,

और तुम उस पर कोई चीज थोपते चले जाते हो;

और निरंतर संघर्ष बची हुई ऊर्जा को भी बिखेर देना चाहता है,

और यह सभी कुछ चलता ही रहता है, जब तक तुम फिर से एक न हो जाओ।

इस बिंदु पर एक बनने के दो रास्ते हैं-

या तो पतित होकर तुम पीछे लौटकर एक पशु बन जाओ,

अथवा ऊंचे उठकर तुम एक बुद्ध बन जाओ।

वस्तुत: पीछे लौटकर अचेतन में गिरना बहुत सरल है।

इसमें प्रयास करने की भी कोई जरूरत नहीं है।

तुम सामान्य रूप से सरक कर पीछे गिर सकते हो।

यह पहाड़ से नीचे आना जैसा है, जिसमें किसी प्रयास की कोई जरूरत नहीं है। और पहाड़ के ऊपर चढ़ना कठिन है।

इसीलिए लाखों-करोड़ों मनुष्य पहाड़ से नीचे आने का मार्ग चुनते हैं।

जहां तक चेतना का सम्बन्ध है, यह पहाड़ से नीचे आने का मार्ग है क्या? ड्रग्ज, शराब, सेक्स, यह चेतना के शिखर से नीचे आने के मार्ग हैं।

संभोग की गहरी प्रक्रिया में तुम फिर से एक पशु बन जाते हो,

तुम मनुष्य नहीं रह जाते। मनुष्य और पशु के अंतर पर तुम पुल बना देते हो; संभोग के गहरे आनंद में यह द्वैतता मिट जाती है,

संभोग के कृत्य में वहां नियंत्रण करने वाला कोई भी नहीं रहता,

तुम्हारा पूरा शरीर एक इकाई बनकर कार्य करने लगता है।

फिर वहां न तो मन रहता है और न अहंकार बचता है,

नियंत्रण और नियंत्रक दोनों ही नहीं रह जाते वहां,

क्योंकि संभोग का कृत्य अनैच्छिक है।

इसमें तुम्हारी इच्छा शक्ति की कोई जरूरत नहीं है, और न तुम्हारे संकल्प की। तुम अपनी संकल्प शक्ति का समर्पण कर देते हो,

अचानक तुम प्राकृतिक पशु जगत में वापस आ जाते हो,

तुम फिर से ईडेन के उद्यान में प्रविष्ट हो गए हो,

तुम एक सभ्य मनुष्य न होकर, फिर से आदम और ईव हो गए है।

यही कारण है कि सभी समाज सेक्स की निंदा करते हैं। वे उससे डरते हैं। यह ईडेन के उद्यान में प्रविष्ट होने का पिछला दरवाजा है।

सभी सभ्यताएं सेक्स से भयभीत हैं। भय होता ही है,

क्योंकि एक बार तुम बिना नियंत्रण वाले अस्तित्व को जान लेते हो,

तब फिर तुम जरा से भी नियंत्रण में नहीं रहना चाहते।

तुम एक विद्रोही बन सकते हो।

तुम सभी नियमों और कानूनों को फेंककर हवा में उड़ा सकते हो,

तुम कनफ्यूशियस और उसकी नैतिक मान्यताओं को कूड़ेदान में फेंक सकते हो।

तुम फिर से एक पशु बन सकते हो;

और सभ्यता को इससे भय लगता है।

लेकिन फिर भी सेक्स करने की अनुमति दी जाती है,

क्योंकि यदि इसकी अनुमति नहीं दी गई, तो भी यह मुसीबतें खड़ी करेगा। जैविक शरीर में यह मूल प्रवृत्ति, तुम्हारे शरीर विज्ञान और बहुत गहरे में तुम्हारे रसायन में इतनी गहरी जड़ें जमाए हुए है,

कि यदि इसकी अनुमति नहीं दी जाती है

तो यह विकृतियां उत्पन्न करेगी,

तुम पागल हो सकते हो।

इसलिए समाज, होम्योपैथी की हल्की खुराक की भांति

इसे लेने की अनुमति देता है।

विवाह का यही अर्थ है, विवाह होम्योपैथी की हल्की खुराक जैसी है

जो तुम्हें एक विशिष्ट तरीके से नियंत्रित करती है।

तुम्हें समाज के बाहर झांकने की एक छोटी-सी खिड़की से अनुमति दी जाती है, लेकिन फिर भी समाज एक बाहरी नियंत्रण की व्यवस्था करती है।

विवाह है प्रेम-कानून-

प्रेम के साथ कानून का यह जोड़ ही तुम्हें चारों ओर से नियंत्रित करता है।

यदि बिना किसी कानून या नियम के प्रेम करने की अनुमति दी जाती है, तो भय यही है कि मनुष्य फिर से पशु जगत में गिर जाएगा।

और यह भय ठीक प्रतीत होता है; यह भय अर्थपूर्ण है।

प्रेम के द्वारा मनुष्य का पतन भी हो सकता है,

क्योंकि प्रेम के द्वारा ही उसका उत्थान भी हो सकता है,

उसके द्वारा मनुष्य का पतन भी हो सकता है, क्योंकि सीढ़ी वही एक है, चाहे तुम उससे ऊपर जाओ अथवा नीचे उतरी।

प्रेम तुम्हें उन्हीं ऊंचाइयों तक उठा सकता है, जिसके लिए जीसस कहते हैं: प्रेम ही परमात्मा है।

और प्रेम तुम्हें नीचे अनंत गहराइयों में भी ले जा सकता है

इसीलिए समाज निरंतर निरीक्षण करता रहता है,

सूक्ष्म रूप से पुलिस और मजिस्ट्रेट तुम्हें चारों ओर से बैठे घेरे रहते हैं। प्रेम में स्वतंत्रता नहीं है।

क्यों? प्रेम में मनुष्य इतने नीचे क्यों गिर जाता है?

क्योंकि प्रेम में नियंत्रण नहीं रह जाता, और उस खाई पर पुल बनाना होता है, तुम फिर से एक बन जाते हो-

लेकिन तुम पशु जगत में पीछे लौटकर चले जाते हो।

प्रेम ही तुम्हें दिव्यता की और भी ले जा सकता है,

लेकिन तब प्रेम को बहुत-बहुत ध्यानपूर्ण होना होगा।

तब प्रेम को 'प्रेम, ध्यान' बनना होगा।

इसी को तंत्र कहता है-'प्रेम पूर्ण ध्यान।'

तुम अपने अस्तित्व को पूर्ण रूप से स्वतंत्र होने की अनुमति देते हो लेकिन फिर भी तुम गहरे में अपने केंद्र पर साक्षी बने रहते हो।

यदि साक्षी खो गया तो तुम फिर नीचे की ओर गिर पड़ोगे

और यदि साक्षी बना रहा तब प्रेम की वही सीडी-

तुम्हें सर्वोच्च स्वर्ग की ओर ले जाएगी।

शराब.. .सभी सामाजिक संगठन इसके विरुद्ध रहे हैं,

लेकिन फिर भी उन्हें इसकी अनुमति देनी पड़ी,

क्योंकि वे जानते हैं

कि बिना इसकी अनुमति दिए बहुत अधिक अव्यवस्था फैल जाएगी,

शराब लेने की उन्हें अनुमति देनी पड़ी, लेकिन बहुत कम मात्रा में,

दवा की खुराक की तरह, कानूनी रूप से उसकी स्वीकृति देनी ही पड़ी। क्यों? क्योंकि लोगों को इससे चैन मिलता है, वह शांत करती है, नींद लाती है। और लोगों के अन्दर इतने अधिक दुःख और पीड़ाएं हैं;

कि उन्हें ऐसी किसी चीज की आवश्यकता है, जिसे लेकर वे शांत हो जाएं। अन्यथा वे पागल बनकर एक दूसरे से लड़ने लगेंगे।

इसलिए कोई भी समाज शराब के बारे में स्वतंत्रता देना गवारा नहीं कर सकता,

लेकिन कोई भी समाज पूरी तरह इस पर पाबंदी भी नहीं लगा सकता।

ऐसा करना सम्भव नहीं है। नहीं तो व्यवस्था करना कठिन हो जाएगा।

शराब एक जरूरत है लोगों की।

यह जरूरत इसलिए है क्योंकि लोगों के अन्दर बहुत बड़ा तनाव है,

और उसकी वजह से तुम पागल भी हो सकते हो।

और तब बहुत तरह की नशीली दवाएं और ड्रग्ज उत्पन्न हो गए-

और ऐसा कोई पहली बार नहीं हुआ, ऐसा हमेशा ही से होता रहा है

ऋवेद के समय सोमरस से लेकर एलएसडी. 25 तक..

हमेशा ही से ऐसा ही रहा है।

नशीली दवाएं या रसायन बार-बार धमाका करते रहे हैं

हर बार उन पर रोक और प्रतिबंध लगाए जाते हैं, उनकी आदत को कुचला जाता है और समाज उन्हें भुला देना चाहता है।

लेकिन वे फिर वापस लौट आते हैं। उनकी कहीं एक गहरी जरूरत दिखाई देती है।

और जरूरत है

चेतन और अचेतन के मध्य एक पुल बनाने की जरूरत है।

जब तक कि एक व्यक्ति एक निष्ठावान ध्यानी न बन जाए

नशीली दवाओं की आवश्यकता बनी ही रहेगी।

जब तक तुम ऊपर की ओर नहीं उठते, तुम्हें नीचे की ओर गिरना ही होगा।

तुम स्थिर होकर नहीं बने रह सकते।

अस्तित्व के गूढ़ नियमों में से यह एक नियम है- कोई भी स्थिर नहीं बना रह सकता,

या तो उसे ऊपर उठना होगा, अथवा उसे नीचे की ओर गिरना होगा।

ऊर्जा विश्राम में नहीं रह सकती, वह केवल गतिशील होना ही जानती है। क्योंकि जीवन या तो तुम आगे की ओर बढ़ो,

अन्यथा तुम पीछे फेंक दिए जाओगे;

लेकिन तुम यह नहीं कह सकते कि तुम अपनी स्थिति में ही थिर बने रहोगे-न तो तुम ऊपर की ओर जाओगे और न नीचे की ओर।

नहीं, ऐसा होना सम्भव ही नहीं है।

यदि तुम ऊपर की ओर नहीं बढ़ रहे हो, तो तुम पहले ही से नीचे गिर रहे हो-

तुम उसे जान भी सकते हो और नहीं भी जान सकते हो।

केवल एक ध्यानपूर्ण समाज ही शराब के नशे से मुक्त हो सकता है

नशीली दवाएं और रसायन इस खाई को पाटने के पुल की भांति हैं।

तुम अधिक सजग बने रहकर भी इस खाई या अंतराल का सेतु बन सकते हो, इसी कारण सजग, सचेत, साक्षी और निरीक्षण कर्त्ता बने रहने पर

मैं इतना अधिक जोर देता हूं।

क्यों? क्योंकि तुम जितने अधिक सजग बने रहोगे,

तुम्हारा उतना ही अधिक अचेतन, चेतन बनता है।

केवल यही एक मार्ग है।

यदि तुम अधिक सजग बनते हो, यदि तुम होशपूर्वक चलते हो,

यदि तुम होशपूर्वक बात करते और सुनते हो,

यदि तुम होशपूर्वक ही भोजन और स्नान करते हो

किसी यंत्र की भांति, तुम कार्यों को नींद में चलने वाले मनुष्य की भांति नहीं, और दूसरी चीजों के बारे में सोचते हुए

जो एक तरह की मूर्च्छा ही है

यदि होशपूर्वक और पूरे ध्यान से करते हो,

तो अचेतन की एक मोटी पर्त का रूपांतरण चेतना में हो जाता है,

और धीमे- धीमे सागर में डूबा तैरता हुआ हिमखण्ड

अधिक से अधिक अंधकारमय जल से बाहर आता जाता है।

जब तुम्हारा पूरा अस्तित्व अंधकार से बाहर आ जाता है

तो यही समाधि है और यही बुद्धत्व है,

यही बुद्ध अथवा अर्हत की स्थिति होती है:

एक वह, जिसके अन्दर अब अचेतन रह ही नहीं गया,

एक वह, जिसके अस्तित्व के किसी कोने में अब अंधकार रहा ही नहीं, और उसका पूरा घर ही प्रकाशित हो उठा है।

अब तुम एक इकाई बने, अब तुम्हारी बिखरी तरल चेतना

एकीकृत होकर एक ठोस हीरा बन गई।

फिर से एक पशु की भांति तुम एक इकाई बने, लेकिन उच्च तल पर। इसलिए बुद्ध भी शुद्ध रूप से एक पशु की भांति सरल और साधारण हो जाता है, वह एक पशु की भांति ही निर्दोष हो जाता है-

लेकिन पूरी तरह एक पशु के समान नहीं होता।

पशु में निर्दोषिता उसके अज्ञान के कारण होती है,

और एक बुद्ध के पास जो निर्दोषता होती है,

वह उसके बोध की पूर्ण चेतना के कारण होती है।

उसका पूरा कारण ही परिवर्तित होता है।

इस बोध कथा में प्रवेश करने से पूर्व, यह है पहली बात,

कि कोई मनुष्य जब ऐसे बिंदु पर आ जाता है,

जहां उसे यह अनुभव होना शुरू हो जाता है

कि इस गड़बड़ की पूरी स्थिति में से बाहर जाने का केवल मात्र मार्ग आत्महत्या ही है।

यह बिंदु प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आता है,

जब तुम पूरा संघर्ष करते हुए थक जाते हो,

जब तुम अपने से पूरे प्रयास करने के बाद पूरी तरह ऊब जाते हो।

स्मरण रहे, आत्महत्या के विचार के साथ, ऊब होना भी बहुत विशिष्ट है, यह भी मनुष्योचित है। कोई भी पशु कभी भी नहीं ऊबता।

घास चरते हुए किसी भैंस को देखो, प्रत्येक दिन वह वही घास बैठी हुई चबाती रहती है, चबाती रहती है और कभी भी ऊबती नहीं।

तुम उसकी ओर देखते हुए ही ऊब जाते हो: लेकिन वह नहीं ऊबती।

कोई भी पशु कभी ऊबता ही नहीं, तुम किसी पशु को 'बोर' नहीं कर सकते। उसका मन बहुत मोटा और उस्स होता है- तुम उसे कैसे उबा सकते हो?

ऊबने के लिए एक बहुत-बहुत उच्च संवेदनशीलता की आवश्यकता है। जितनी ही उच्चकोटि की तुम्हारी संवेदनशीलता होगी,

उतनी ही ऊंची और उतनी ही अधिक तुम्हारी ऊबाहट भी होगी।

बच्चे नहीं ऊबते

वे अभी भी मनुष्य के संसार से कहीं अधिक पशु जगत में हैं,

वे मनुष्य के रूप में पशु ही हैं।

वे अभी भी साधारण सामान्य चीजों को पाकर खुश हो जाते हैं और ऊबते नहीं;

प्रतिदिन वे तितलियों को पकड़ने बाहर जा सकते हैं;

और वे कभी भी इससे ऊबेंगे नहीं-

वे प्रतिदिन बाहर जाने के लिए पहले ही से तैयार रहते हैं।

क्या तुमने कभी बच्चों से बातचीत की है, उन्हें कभी कोई कहानी सुनाई है? वही एक कहानी, और वे कहेंगे: फिर से सुनाओ उसे।

और तुम उसे फिर से सुनाते हो, और वे फिर कहेंगे: फिर से सुनाओ।

तुम बच्चों को 'बोर ' नहीं कर सकते। तुम पशुओं को बोर नहीं कर सकते।

ऊबाहट मनुष्यों का वास्तव में एक बहुत बड़ा गुण है

क्योंकि यह केवल चेतना के उच्च तल पर ही होता है।

जब कोई भी बहुत अधिक संवेदनशील होता है, वह ऊब का अनुभव करता है-

जीवन अर्थहीन दिखाई देता है, जीने का कोई कारण ही-

नहीं दिखाई देता, और उसे ऐसा लगता है जैसे मानो-

वह केवल एक संयोग ही से यहां है,

तुम चाहे यहां रहो या नहीं, उससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता।

ऐसा क्षण जब आता है तो कोई भी बुरी तरह ऊब जाता है

और वह आत्महत्या करने के बारे में सोचना शुरू कर देता है।

आत्महत्या है क्या?

यह सामान्य रूप से अपने को हारा मानकर, नीचे गिर पड़ना है। वह केवल यह कहना है कि बस अब बहुत हो चुका

मैं अब वही खेल फिर से नहीं खेलना चाहता।

मैं अब पूरे खेल से बाहर हो जाना चाहता हूं।

जब तक यह बिंदु नहीं आ जाता, धर्म की सम्भावना ही नहीं है;

क्योंकि इसी बिंदु पर आने पर ही तुम या तो आत्महत्या कर सकते हो, अथवा अपना रूपांतरण कर सकते हो।

यही वह चौराहा है।

इसलिए यही मेरा निरीक्षण है

जो लोग समय से पूर्व या असामयिक ही धार्मिक बन जाते हैं

वे पूरी तरह से अपना समय नष्ट ही करते हैं।

समय से पूर्व धार्मिक बनने का अर्थ है

वास्तव में जीवन से अभी भी तुम हारे नहीं हो,

वास्तव में अभी भी तुम ऊबे नहीं हो।

जीवन के सांसारिक खेल के प्रति अभी भी तुममें कुछ आकर्षण है,

वह सेक्स हो सकता है, वह धन हो सकता है।

वह राजनीति और शक्ति या सत्ता हो सकती है।

लेकिन जीवन में अभी भी कुछ ऐसा है, जिसमें आकर्षण है,

तब तुम समय से पूर्व ही धार्मिक बन गए हो,

और इससे तुम्हें कोई भी सहायता नहीं मिलेगी, तुम पूरी तरह अपना समय नष्ट ही करोगे।

कोई भी जब पूरी तरह ऊब जाता है,

उसके लिए जब जीवन में कोई आकर्षण नहीं रह जाता,

जब उसके सारे सपने बिखर जाते हैं,

जीवन के जब सारे इंद्र धनुषी रंग मिट जाते हैं

जब वहां और अधिक फूल नहीं, केवल कांटे ही रह जाते हैं;

जब तुम उसके साथ से संतप्त हो जाते हो, तो स्मरण रहे

तब वहां तुम्हें अपने से, उसे छोड़ने या त्यागने का कोई प्रयास करना ही नहीं होता,

यदि उसे छोड़ने या त्यागने का कोई प्रयास करना होता है

तो इसका अर्थ है कि अभी भी थोड़ा-सा आकर्षण बचा है,

अन्यथा प्रयास करने की जरूरत ही क्या है?

जब किसी चीज से तुम्हारा जी भर जाता है, तब क्या तुम उसे छोड़ते हो?

नहीं। उसका त्याग करने या छोड़ने की कोई जरूरत होती ही नहीं, वह तो पहले ही से छूट जाती है।

यदि तुम संसार से पलायन कर जंगल में जाते हो,
तो तुम किससे कर रहे हो पलायन?
तुम उन थोड़े से आकर्षणों से दूर भाग रहे हो, जिनसे तुम अभी भी हिलगे हुए हो,
अन्यथा क्यों, और कहां जाओगे तुम उन्हें छोड्कर?
उन्हें छोड़ने में ही तुम यह प्रदर्शित कर रहे हो
कि तुम अभी भी किसी चीज से बंधे हुए हो।
यही इसका नियम है, इसे स्मरण रखें:

तुम जहां से कुछ छोड्कर कहीं जाते हो, तो वहां तुम्हारा अभी आकर्षण है। यदि तुम स्त्री से भागकर जा रहे हो, तो स्त्री तुम्हारा आकर्षण है।

यदि तुम राजनीति से भागकर कहीं जा रहे हो, तो राजनीति में तुम्हारी आसक्ति है,
यदि तुम जितनी अधिक तेजी से भागकर जा रहे हो,
तुम्हारा आकर्षण उतना ही अधिक बढ़ा है।
अभी यह समय से पूर्व है। तुम फिर वापस लौटोगे।

तुम हिमालय पर जा सकते हो, लेकिन तुम सोचोगे, और सपना देखोगे, कि तुम्हें देश का राष्ट्राध्यक्ष चुन लिया गया है।

हिमालय की अकेली गुफा में बैठे हुए तुम पाओगे
कि बहुत सी सुन्दर स्त्रियां और स्वर्ग की अप्सराएं आ रही हैं।
यह तुम्हारे ही मन द्वारा उत्पन्न की हुई संतानें हैं
कोई भी तुम्हारे लिए किसी अप्सरा को नहीं भेज रहा है,
यह उस स्त्री के कारण है जिसे तुम छोड्कर यहां आ गए हो।
समय से पूर्व, असामयिक मन से कोई संन्यास या आत्म-त्याग होता ही नहीं।

पूर्ण विकास या परिपक्वता आवश्यक है,
और परिपवक्ता या विकसित होने का अर्थ है,
कि तुमने जीवन को जी भरकर जी लिया।
तुमने उसे बहुत गहराई से जान लिया, और उसमें कमी पाई।
उसमें वहां तुमने कुछ भी तो नहीं पाया, यात्रा पूरी हो गई।

अब तुम बाजार के बीच भी रह सकते हो, अथवा तुम आश्रम में भी जा सकते हो, इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता, सब कुछ एक जैसा ही है।

जीवन में कहीं कोई आकर्षण नहीं रह गया है,
तुम जहां कहीं भी हो, उससे कोई भी अंतर नहीं पड़ता।
यही बिंदु है, आत्महत्या करने का बिंदु।
और यही वह बिंदु अथवा स्थान है, संन्यास लेने का।
आत्महत्या अथवा संन्यास: यह दो ही विकल्प हैं

और जब तक तुम्हारा संन्यास, आत्महत्या करने का विकल्प नहीं है
वह बहुत अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।
यही वह बिंदु है, जहां तुम एक धार्मिक और अधार्मिक चित्त के मध्य होने वाले अंतर का अनुभव कर सकते हो।
अधार्मिक चित्त या मन के पास कोई विकल्प होता ही नहीं,
जब वह जीवन से ऊब जाता है, तो केवल आत्महत्या करने का ही
मार्ग रह जाता है,
कोई दूसरा विकल्प होता ही नहीँ।
एक नास्तिक व्यक्ति आखिर करेगा क्या, जब वह जीवन से ऊब जाए? वह आत्महत्या कर सकता है।

यही कारण है कि पश्चिम में लोग इतनी अधिक आत्महत्याएं करते हैं। इसी वजह से स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक आत्महत्या करते हैं।
उनकी संख्या लगभग दो गुनी है, क्योंकि स्त्रियों की तुलना में पुरुष कहीं अधिक नास्तिक और कहीं अधिक कम धार्मिक हैं।
पूरब में कम से कम लोग आत्महत्या करते हैं,
जबकि पश्चिम में अधिक से अधिक लोग।
तुम पश्चिम की ओर बढ़ो, तो समझो, तुम आत्महत्या के अर्द्ध गोलार्द्ध की ओर बढ़ रहे हो।

महान विचारक, दार्शनिक और तार्किक लोग
सामान्य मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक आत्महत्या करते हैं

क्योंकि सोच विचार के साथ संदेह और उलझन बढ़ जाती है,
और एक व्यक्ति जो वास्तव में संदेह करता है,
उसका नास्तिकता में विश्वास हो जाता है।
तुम संदेह में नहीं बने रह सकते, क्योंकि संदेह में रिक्तता है।
तुम्हें किसी न किसी विश्वास के साथ बंधना होगा-या तुम परमात्मा में विश्वास करो, अथवा मानो कि कहीं कोई परमात्मा नहीं है,
या तो मानो कि भविष्य में अगला जीवन है,
अथवा भविष्य में जीवन की किसी भी सम्भावना से इंकार करो,
या तो अज्ञात का सत्य मानकर, उच्चतम तल पर विश्वास करो
अथवा उच्चतम तल पर जाने की बात निरर्थक मानो।
लेकिन तुम्हें निर्णय लेना ही पड़ेगा,
तुम संदेह में ही नहीं बने रह सकते।
मैंने आज तक ऐसा कोई व्यक्ति देखा ही नहीं, जो संदेह में रहता हो।
वह अपने आपको संदेही या नास्तिक कह सकता है:
पर नहीं, नास्तिकता ही उसका विश्वास है

वह अपने को नास्तिक कहते हुए कह सकता है
मैं परमात्मा पर कोई भी विश्वास नहीं करता-
लेकिन वह अपने अविश्वास पर विश्वास करता है।
वह किसी आस्तिक की भांति ही अपने विश्वास पर गर्व करता है:
और वह अपने विश्वास की रक्षा करने के लिए
किसी आस्तिक की भांति ही पहले से ही तर्क द्वारा
यह सिद्ध करने को तैयार बैठा है।
कोई भी व्यक्ति संदेह ही में नहीं जी सकता।
इसलिए यहां दो तरह के मन हैं: अधार्मिक और धार्मिक मन।
पहले इन दोनों के बीच के अंतर को समझना ठीक होगा।
एक अधार्मिक मन, जो कुछ प्रकट और प्रत्यक्ष सामने है,
उस पर विश्वास करता है, जिसे वह देख सके,
एक धार्मिक चित्त न केवल प्रत्यक्ष दीखने वाली वस्तु पर ही,
बल्कि अस्पष्ट और अज्ञात सत्य पर भी विश्वास करता है।
एक धार्मिक चित्त वह है, जो कहता है कि आंखे वास्तविक सत्य को देखने में सक्षम नहीं हैं।

जो कुछ आखें देख सकती हैं, वास्तविक सत्य उससे कहीं अधिक है। हाथ सभी कुछ को पकड़कर अपने में बांध नहीं सकते, सत्य कहीं अधिक विराट है।

कान वह सभी कुछ नहीं सुन सकते: सत्य उससे कहीं अधिक है।

एक धार्मिक चित्त कहता है:

तुम जो कुछ भी जानते हो, वह केवल उसका एक खण्ड है-

यह जीवन ही सब कुछ नहीं, 'वह' उसके पार है।

वहां जीवन से कहीं अधिक कुछ और भी है, और उसके अनेक द्वार हैं। एक अधार्मिक चित्त चारों ओर से बंद मन है,

जब कि धार्मिक चित्त के द्वार खुले होते हैं, वह हमेशा आगे बढ़ने में,

हमेशा जांच और परीक्षण करने में, और अज्ञात की ओर यात्रा करने में पहले ही से तैयार रहता है।

यदि तुम्हारे पास एक अधार्मिक चित्त है, तो यह नहीं कहा जा सकता,

कि तुम कब इस जीवन से ऊब जाओ।

क्योंकि तुम वह सभी कुछ भोग चुके हो, जो कुछ जीवन तुम्हें दे सकता था। और तुमने उसे व्यर्थ और निरर्थक पाया।

एक खिलौना तुम्हें आखिर कब तक और कितनी देर तक
उलझा कर व्यस्त रख सकता है?
तब एक ऐसा क्षण आता है जब तुम विकसित हो जाते हो,
और खिलौना अलग फेंक दिया जाता है।
फिर उसमें कुछ भी आकर्षण नहीं रह जाता।

यह जीवन जो सब कुछ था, अब वह बुरा और व्यर्थ समझ कर

उससे मुक्त होने का मन होता है।

तुम आत्महत्या कर सकते हो। अब वहां तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं रह जाता। केवल आत्महत्या करने के इस क्षण में ही

कोई एक धर्म के इस मनोरम जगत के बारे में जान पाता है।

और धर्म का आखिर क्या अर्थ होता है, केवल तभी उसका अनुभव होता है। क्योंकि इस जीवन में तो सब कुछ समाप्त हो चुका, लेकिन यह सृष्टि विराट है, एक आयाम तो समाप्त हो चुका,

लेकिन वहां लाखों आयाम हैं।

इस अस्तित्व में आत्मा की पर्त दर पर्त, अनेक पर्तें हैं

इसका वहां कोई अंत ही नहीं है।

एक खुला हुआ चित्त ही धार्मिक चित्त होता है,

सम्भावनाओं के इस विस्तार का अर्थ ही परमात्मा है।

परमात्मा में ही तुम्हारे विकसित होने की अनंत सम्भावनाएं हैं।

जब एक दिशा बंद हो जाती है, तो दूसरी दिशा खुलती है।

वास्तव में जब एक दरवाजा बंद हो जाता है, तो तुरंत ही दूसरा दरवाजा खुल जाता है।

आत्महत्या के इस क्षण में ही, एक व्यक्ति उस दोराहे पर अपने को खड़ा पाता है,

जहां या तो वह स्वयं को मिटा दे अथवा अपने लिए एक नए मार्ग का सृजन करे।

पुराने जीवन का अब और कुछ भी अर्थ नहीं रह जाता,

या तो अपने आपको पूरी तरह नष्ट कर दिया जाए आत्महत्या कर ली जाए- अथवा वह अपने लिए पूरी तरह से एक नए मार्ग का सृजन करे, जिससे वह एक नए जीवन और एक नूतन प्रेम के संसार में प्रविष्ट हो जाए।

एक अधार्मिक चित्त पूरी तरह से विध्वंसक होता है,

और एक धार्मिक चित्त सृजनात्मक होता है।

धार्मिक चित्त कहता है कि एक संसार समाप्त हो चुका।

तो सामान्य रूप से उसने यह दिखा दिया कि जिस तरह से तुम जी रहे थे, तुम्हारे जीवन का वह आधार ही सार्थक न होने से समाप्त हो गया।

अब तुम दूसरी तरह से जी सकते हो,

तुम्हारे अस्तित्व के लिए दूसरी जीवन शैली भी सम्भव है। उस नई शैली का सृजन करो।

तुम अभी तक अपने को शरीर मानकर ही जीते रहे हो,

अब तुम अपने को आत्मा मानकर जी सकते हो।

अभी तक तुम भौतिकतावादी जीवन ही जीते रहे हो,

अब तुम आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हुए जी सकते हो।

अभी तक तुम लोभ, क्रोध, सेक्स, ईर्ष्या और परिग्रह भरा जीवन जीते रहे हो,

अब अपरिग्रह और करुणा के भिन्न मार्ग पर जीकर देखो।

अभी तक तुम लोभ को जीवन का आधार बनाकर जीते रहे हो,

अब सहभागी बनकर जीयो, तुम्हारा पूरा अस्तित्व दूसरों के साथ सहभागिता में जीये।

तुम अभी तक सोच विचार कें साथ जीते रहे, और वह ढंग असफल हो गया।

अब एक ध्यानी बनकर परमानंद में जीकर देखो।

अभी तक तुम बाहर और केवल बाहर ही बाहर भटकते रहे

अब वापस लौटकर अपने अन्दर जाकर देखो।

धर्मांतरण का यही अर्थ है:

पीछे मुड़कर अपने स्रोत की ओर गतिशील होना।

बाहर की यात्रा समाप्त हो चुकी, अब वहां जो अन्दर है, उसी ओर जाना है। तभी एक नूतन अस्तित्व का जन्म होता है।

हिंदू इस बिंदु को, पुनर्जन्म का बिंदु कहते हैं।

एक जन्म तो माता-पिता द्वारा दिया जाता है-

यह जन्म भौतिक संसार का है।

दूसरा जन्म तुम स्वयं अपने को देते हो-

यह जन्म ही प्रामाणिक जन्म है, यह तुम्हारी आत्मा का जन्म है।

हिंदू इसे पुनर्जन्म कहकर पुकारते हैं

और उस व्यक्ति के लिए जिसने उसे प्राप्त किया है

उनके पास एक विशिष्ट नाम है-

वे उसे द्विज बनना कहते हैं-दूसरा जन्म हुआ तुम्हारा।

अपने ही गर्भ से वह अब स्वयं ही एक नया जन्म लेता है।

एक नूतन आयाम का द्वार खुलता है: एक अर्थपूर्ण और महत्वपूर्ण आयाम और एक शाश्वत महत्व के आयाम का।

लेकिन ऐसा तभी होता है

जब तुम जीते हुए ऊबाहट की एक ऐसी स्थिति तक आ जाते हो,

कि तुम अपने जीवन को समाप्त करने का निश्चय कर लेते हो।

अब हम इस सुन्दर जेन बोध कथा में प्रवेश करेंगे। महान सद्गुरु गीजान के सानिध्य में

तीन वर्षों के कठोर प्रशिक्षण के बाद भी

कोश सतोरी तक को प्राप्त करने में समर्थ न हो सका था।

सतोरी, समाधि होती है, पहली समाधि,

समाधि में प्रामाणिक रूप से, एक अन्य जगत में प्रवेश है,

जो तुम्हारे लिए पूरी तरह से अनजाना और अज्ञात है

जो तुम्हारे लिए पूरी तरह से अकल्पनीय है,

जिसका तुम्हारे द्वारा कभी सपना तक नहीं देखा गया है।

इस जगत का तुम्हारे संसार की बगल में ही अस्तित्व है।

वास्तव में तुम्हें उसके लिए एक कदम भी नहीं उठाना होता,

ठीक तुम्हारे संसार की ही बगल में, ठीक उसके अन्दर ही उसका अस्तित्व है। केवल तुम्हें अपना दृष्टिकोण बदलना होता है।

अचानक जब तुम इस नूतन दृष्टिकोण से इसी संसार को देखते हो तो एक दूसरा ही जगत प्रकट होता है।

यह संसार तुम्हारा ही एक दृष्टिकोण है, वह और कुछ भी नहीं है।

यह संसार इसलिए कुरूप और भद्दा लगता है, क्योंकि तुम्हारा दृष्टिकोण ही गलत है।

यदि यह संसार केवल एक दुःख अथवा एक नर्क है

तो केवल इसलिए क्योंकि तुम्हारा दृष्टिकोण ही गलत है।

वास्तव में यह संसार ऐसा है नहीं। जो तुम्हें नर्क लगता है:

वह तुम ही हो, जो अपने चारों ओर एक नर्क सृजित कर लेते हो, वह तुम्हारे ही मन का प्रक्षेपण है।

यह संसार तो तटस्थ है, यह एक फिल्म के पर्दे की तरह है- श्वेत, कोरा और शुद्ध।

और तब यह निर्भर करता है कि तुम उस पर क्या प्रक्षेपित करते हो।

तुम उस पर नर्क भी प्रक्षेपित कर सकते हो और स्वर्ग भी- अथवा तुम सभी प्रक्षेपणों को गिरा देते हो,

तुम कोई भी चीज प्रक्षेपित ही नहीं करते, यही मोक्ष है,

यही है अंतिम मुक्ति।

महान सदगुरु गीजान के सानिध्य में

तीन वर्षों के कठोर प्रशिक्षण के बाद भी

कोश सतोरी तक को प्राप्त करने में समर्थ न हो सका था।

यहां कुछ बात समझने जैसी है।

यदि तुम कोई भी प्रयास नहीं करते, तुम कभी भी उसे प्राप्त न कर सकोगे, लेकिन तुम अत्यधिक प्रयास भी कर सकते हो, और चूक जाओगे।

कभी-कभी तुम आवश्यकता से अधिक प्रयास कर सकते हो,

और यह अत्यधिक नाजुक मामला है-

कि कैसे संतुलन बनाकर मध्य में रहा जाए?

कुछ भी न करना सरल है

और आवश्यकता से अधिक करना भी सरल है,

लेकिन सबसे अधिक कठिन बात है

ठीक अनुपात में मध्य में बने रहना।

अहंकार के लिए पराकाष्ठाओं पर पहुंचना आसान है।

कोई भी कार्य न करना भी बहुत आसान है,

तब अत्यधिक करना भी आसान है।

जिन लोगों के शरीरों में चर्बी अधिक होने से वे मोटे हो गए हैं

वे लोग मेरे पास आकर पूछते हैं कि आखिर क्या किया जाए?

क्या उन लोगों को उपवास करना चाहिए?

और मैं जानता हूं

या तो वे लोग बहुत अधिक भोजन कर सकते हैं
क्योंकि उनके मन में हर समय भोजन ही घूमता रहता है
अथवा वे लोग उपवास कर सकते हैं। दोनों ही आसान हैं।
लेकिन यदि तुम उनसे कहो कि वे जितना भोजन करते हैं, उसका आधा कर
तो उनके लिए वैसा करना कठिन है।
वे लोग भूखे रह सकते हैं, वह उनके लिए कठिन न होकर आसान है। वे लोग हंस-हंस कर गले तक खा सकते हैं, यह भी आसान है उनके लिए क्योंकि दोनों ही तरह से वे अपने शरीर को हानि पहुंचा रहे हैं।
उनका शरीर को मारने का गुणात्मक व्यवहार ठीक वही रहता है।
वे बहुत अधिक खा सकते हैं, जो एक तरह की हिंसा या स्वयं को मारने
जैसा है। तब वे दूसरी तरह की भी हिंसा कर सकते हैं:
वे उपवास पर जा सकते हैं।
ये दोनों ही दो पराकाष्ठाएं हैं, और दोनों ही गलत हैं
कोई भी पराकाष्ठा हमेशा गलत ही होती है।
मध्य में बने रहना ही हमेशा ठीक होता है।

यह कोश भी जरूर आवश्यकता से अधिक ध्यान करता रहा होगा।
और जब तुम किसी सद्गुरु के पास जाते हो, तो ऐसा हमेशा होता है,
तुम बहुत अधिक उद्दीस हो जाते हो।
जब तुम एक सद्गुरु के निकट होते हो, तुम उसके अस्तित्व के प्रति इतने अधिक आकर्षित हो जाते हो,
कि तुम एक छलांग लगाना चाहते हो,
तुम उसके ही समान बनना चाहते हो
तुम कोई भी काम करने के लिए तैयार रहते हो,
तुम्हारे क्रियाकलाप जैसे ज्वरग्रस्त हो जाते हैं-
और तुम बहुत अधिक शीघ्रता में होते हो।
कोश ने जरूर ही बहुत अधिक श्रम किया होगा,
अन्यथा गीजान जैसे सद्गुरु के साथ
तुम यदि सामान्य रूप से उसके निकट बैठे ही रहते
तब भी सतोरी घट सकती थी।
तीन वर्षों के कठोर प्रयासों के बाद भी वह क्यों चूक रहा था?
क्योंकि उसने आवश्यकता से अधिक प्रयास किया।
जब तुम एक खास कार्य को आवश्यकता से अधिक करते हो,
तो व्यग्रता उत्पन्न होती है,
जब तुम किसी विशिष्ट कार्य को आवश्यकता से अधिक करते हो,
तो अन्दर एक उपद्रव और कोलाहल उत्पन्न हो जाता है
तुम असंतुलित हो जाते हो, तुम शांति से नहीं रह सकते।
और सतोरी केवल तभी घटती है जब तुम अपने घर में होते हो,

वास्तव में सतोरी घटती ही तभी है,

जब तुम प्रामाणिक रूप से-विश्राममय होते हो।

केवल उतना ही कार्य करो, जो विश्राममय होने में सहायक हो।

उसे आवश्यकता से अधिक मत करो।

और एक व्यक्ति को अपने अनुभव से ही अपने कार्य करने का ढंग निश्चित करना होता है, क्योंकि इसके लिए कोई थिर नियम नहीं दिया जा सकता, क्योंकि यह प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव पर-निर्भर करते हुए अलग-अलग होता है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपना संतुलन स्वयं बनाना होता है,

और धीमे-धीमे ही एक व्यक्ति अपने संतुलन के प्रति सजग बनता है।

संतुलन, चित्त की वह दशा है, जहां तुम मौन और शांत हो जाते हो,

इस तरह या उस तरह कोई प्रयास नहीं करना होता।

जब तुम आलसी बनकर कुछ भी नहीं करते,

तब तुम्हारी ही ऊर्जा तुम्हारे ही अन्दर एक विप्लव बन जाती है।

क्योंकि अन्दर अधिक ऊर्जा का होना भी एक बेचैनी उत्पन्न करता है,

बच्चे हमेशा बेचैन रहते हैं

क्योंकि उनके अस्तित्व से बहुत अधिक ऊर्जा बाहर आ रही है,

और वे नहीं जानते कि उस ऊर्जा का क्या किया जाए और उसे कहां फेंका जाए?

यदि तुम आलसी हो

तो बहुत अधिक ऊर्जा तुम्हारे अन्दर उपद्रव खड़ा करेगी,

तुम्हारी अपनी ही ऊर्जा तुम्हारे लिए दुश्मन बन जाएगी।

और यदि तुम बहुत अधिक सक्रिय बनकर बहुत अधिक कार्य करते हो, यदि तुम किसी विशिष्ट चीज को बहुत अधिक करते हो

जो तुम्हारी ऊर्जा को बहाकर बाहर ले जाती है

तो तुम एक रिक्तता और थकावट का अनुभव करते हो।

तब फिर तुम बेचैन हो जाओगे,

क्योंकि तुम्हें अपने अन्दर ऊर्जा के एक विशिष्ट तल की आवश्यकता होती है। या तो बहुत अधिक ऊर्जा बेचैनी उत्पन्न करेगी

अथवा बहुत अधिक ऊर्जा के बाहर बह जाने से तुम अशांत हो जाओगे।

एक सद्गुरु के साथ हमेशा ऐसा ही होता है।

उसके अन्दर एक चुम्बकीय केंद्र होता है,

तुम उसके प्रेम में पड़कर उद्दीप्त हो! जाते हो।।

यह एक प्रेम प्रसंग के समान है-

जब तुम प्रेम में पड़ते हो तब तुम जैसे ज्वरग्रस्त हो जाते हो।

प्रेम एक तरह का बुखार ही होता है जिसमें तापक्रम बढ़ जाता है।

कोश के साथ ऐसा ही जरूर हुआ होगा

क्योंकि तीन वर्षों बाद भी उसे कुछ भी नहीं घटा।

सात दिनों के विशिष्ट अनुशासन-सत्र के प्रारम्भ ही में उसने सोचा कि अंतिम रूप से उसके लिए यह अवसर आ पहुंचा है।

प्रत्येक वर्ष, अथवा प्रत्येक छ: माह, अथवा प्रत्येक तीन माह के बाद जेन मठों में सात दिनों का एक विशेष अनुशासन-सत्र चलता है, जिसे जा-जेन कहते हैं। इन सात दिनों में एक-एक व्यक्ति को और कुछ भी न करते हुए केवल ध्यान करना होता है।

इसमें ही निरंतर सात दिनों तक पूरी ऊर्जा लगानी होती है,

केवल भोजन के लिए-वह भी बहुत थोड़े से समय के लिए और रात में केवल दो या तीन घंटे की नींद के लिए ही ध्यान रुकता है।

शेष बचे बीस घंटों में प्रत्येक को ध्यान और केवल ध्यान ही करना होता है। किसी को तो निरंतर एक ही ध्यान मुद्रा में छ: घंटे बैठकर ध्यान करना होता

और जब वह पूरी तरह थक जाता है और नींद आने लगती है

और वह और अधिक नहीं बैठ सकता,

तब उसे होशपूर्वक धीमे- धीमे चलते हुए ध्यान करना होता है।

और इस सात दिनों के सत्र में

सद्गुरु अपना डंडा लिए तुम्हारे चारों ओर तुम्हारे साथ होता है,

क्योंकि जब तुम निरंतर तीन से चार घंटे ध्यान करते हो

तो किसी को भी नींद आने के लिए आधे घंटे का समय ही पर्याप्त होता हे। इसलिए सद्गुरु अपने डंडे से तुम्हारे सिर पर चोट करता है।

जो कोई उनींदा सा होगा, उस पर तुरंत डंडे से चोट कर

उसे ध्यान में वापस लाना होगा।

सात दिनों का यह बहुत ही ऊर्जा पूर्ण उत्साही प्रयास...

यह आलसी लोगों के लिए सहायक होता है।

लेकिन इस कोश के लिए तो यह सत्र पूरी तरह उसके प्रतिकूल रहा होगा,

ऐसा सत्र उसकी कोई सहायता नहीं कर सकता,

एक विशिष्ट प्रयास भी उसके लिए सहायक न होगा-

क्योंकि वह तो पहले ही तीन वर्षों से ऐसा करता आ रहा था।

वास्तव में उसे तो एक विशेष तरह के ध्यान की आवश्यकता थी- सात दिनों के परिपूर्ण विश्राम की।

जेन अनुशासन में इसका अस्तित्व है ही नहीं, जो होना चाहिए।

क्योंकि यहां दो तरह के लोग होते हैं-

आलसी लोग और आवश्यकता से अधिक सक्रिय लोग।

आलसी लोगों के लिए यह ठीक है कि कुछ दिनों तक उन्हें,

अधिक से अधिक प्रयास करना चाहिए।

ऐसे सुस्त लोगों के लिए यह अच्छा है, और ऐसे लोग निन्यानबे प्रतिशत हैं। यही कारण है कि एक प्रतिशत सक्रिय लोगों की कोई भी, फिक्र नहीं करता। ऐसे एक प्रतिशत लोगों के लिए जो पहले ही से बहुत अधिक कर रहे हैं, उन्हें इस सत्र से कोई भी सहायता नहीं मिलेगी।

लेकिन...
अनुशासन के सात दिनों के इस विशेष सत्र के प्रारम्भ ही में
उसने सोचा कि उसके लिए अब अंतिम अवसर आ पहुंचा है।
अब वह सब कुछ वही करेगा, जितना कि वह कर सकता है,
वह लगभग चौबीस घंटे ध्यान ही करता रहेगा
अब सतोरी उसकी पकड़ से कैसे दूर भाग सकती है?
वह बुद्ध मंदिर के द्वार पर बनी मीनार के ऊपर चढ़ गया
और अर्हत की प्रतिमा के आगे जाकर उसने यह प्रतिज्ञा की
या तो मैं यहां अपने सपने को साकार करूंगा
अथवा वे इस मीनार के नीचे गिरे मेरे मृत शरीर को देखेंगे।
अब उसने अपनी पूरी ऊर्जा ध्यान में ही लगानी चाही,
और वह बहुत गम्भीर और निष्ठावान था,
वह सच्चे हृदय से चाहता था कि उसे सतोरी लगे।
यदि इसके लिए उसे अपना जीवन भी गंवाना पड़े, तो वह इसके लिए भी तैयार था।
उसने मीनार में बुद्ध की प्रतिमा के सामने कहा:

या तो मैं यहां अपने सपने को साकार करूंगा
अथवा वे इस मीनार के नीचे पडे मेरे मृत शरीर को देखेंगे।
वह आत्महत्या कर अपना जीवन समाप्त कर लेगा।
ऐसा बिंदु जीवन में आने वाला बहुत दुर्लभ क्षण होता है
जब तुम वास्तव में इतनी अधिक ईमानदारी से
इतना सब कुछ देने के लिए तैयार हो जाते हो।
तब आत्महत्या अथवा समाधि-केवल इनमें से एक ही विकल्प बचता है। वह बिना सोए निराहार रहा,
इन सात दिनों में उसने न तो भोजन किया, और न सोया,
और निरंतर अपने आप को ' जा जेन ' ध्यान में लगाए रहा
बुद्ध की मुद्रा में केवल शांत और मौन बैठे रहना ही ' जा जेन ' है,
कोई भी कार्य न करते हुए पूरी तरह से सचेत बने रहना,
न कोई भोजन, न कोई नींद, चौबीस घंटे केवल बैठे रहना।
अंतिम रूप से वह जितना भी अधिक से अधिक कर सकता था वह उसे श्रेष्ठतम रूप में कर रहा था।
प्राय: वह प्रलाप करते हुए चीखता...
मेरे कैसे कर्म हैं कि सभी प्रयासों के बावजूद भी मैं अपना मार्ग नहीं पा सका?

प्रत्येक खोजी के जीवन में ऐसा क्षण आता है, जब वह महसूस करता है, कि वह जितना कुछ भी कर सकता है, वह सभी कुछ कर रहा है

उससे कुछ और कर पाना सम्भव ही नहीं है।

मेरे ऐसे कौन-से कर्म थे कि इन सभी प्रयासों के बावजूद भी मैं उसे प्राप्त न कर सका।

लेकिन वास्तव में अपने इन प्रयासों के द्वारा ही

वह सतोरी तक जाने वाले मार्ग को आत्मसात् न कर सका। अपने कर्मों के कारण नहीं, अपने प्रयासों के कारण ही...! पहली समस्या है आलस्य,

तुम अपने आलस्य और सुस्ती से कैसे बाहर आ सको? तब दूसरी समस्या है, मध्य में बने रहने में,

तुम्हारी किस तरह सहायता की जाए?

तुम्हें अत्यधिक सक्रियता के विपरीत ध्रुव की ओर न बढ़ते हुए संतुलन बनाए रखना है।

कोश ने आवश्यकता से अधिक प्रयास किया,

लेकिन इसने उसकी एक अलग तरह से सहायता की, उसने जाना, कि उसके द्वारा वह सतोरी तक कभी नहीं पहुंच सकता,

उसके द्वारा वह समाधि को उपलब्ध नहीं हो सकता।

उसने अंत में अपनी असफलता स्वीकार की, और अपने जीवन का अंत करने का निश्चय किया

अब कुछ भी तो नहीं रह गया था वहां

वह जितना कुछ भी प्रयास कर सकता था, उसने कर लिया था।

इससे अधिक वह कर भी नहीं सकता था,

वहां इससे अधिक करने को कुछ था भी नहीं।

इसलिए अब कोई भी आशा बची ही नहीं थी,

आखिर अब प्रतीक्षा भी किसके लिए की जाए?

अंत में उसने अपनी हार स्वीकार कर ली...

यह हार कोई साधारण हार नहीं थी, यह मात्र असफलता ही नहीं थी,

यह बहुत सी असफलताओं को स्वीकार करना था, यह स्वयं की हार थी।

जब तुम किसी एक चीज में असफल होते हो, तो इससे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता।

क्योंकि वहां बहुत सी अन्य चीजें हैं, जिनमें तुम सफल हो सकते हो।

जब तुम एक प्रयास में असफल होते हो,

तुम जानते हो कि तुम दूसरा प्रयास कर सकते हो।

लेकिन यह असफलता तो उसे सब कुछ करने के बाद मिली थी।

जो कुछ भी किया जा सकता था, उसने वह सभी कुछ किया था,

उससे अधिक कुछ और किया ही नहीं जा सकता था।

और अब वहां अन्य कुछ भी नहीं बचा था,

जीवन के साथ निराश होकर वह पहले ही मिट चुका था,

अब जीवन में कुछ घट सकता है, ऐसी कोई आशा नहीं रह गई थी,

खेल पूरी तरह समाप्त हो चुका था।

जितना कुछ भी करने के लिए वह सोच सकता था, उसने वह सभी कुछ किया था

उसने अपनी पराजय स्वीकार कर ली थी

क्योंकि उसे सतोरी नहीं घटी थी।

और अब सब कुछ समाप्त करने का उसने पक्का इरादा कर लिया... अब केवल अंतिम सम्भावना आत्महत्या करना ही था।

समाधि वहां उसके लिए थी ही नहीं,

वह केवल आत्महत्या ही कर सकता था।

.. .वह मीनार पर लगी रेलिंग पर गया, और धीमे से नीचे छलांग

लगाने को उसने अपना पैर ऊपर उठाया।

उसी. प्रामाणिक क्षण में अचानक उसका जागरण हुआ।

अचानक उसके आगे समाधि के विस्तृत मुक्ताकाश का द्वार खुल गया, और सतोरी घटित हुई।

यह भली- भांति समझ लेना है, क्योंकि ऐसा ही तुम्हारे साथ भी हो सकता है। यह केवल एक ही प्रकरण या घटना नहीं है, बहुत से मामलों में ऐसा ही हुआ है।

जब तुम असफल होते हो, पूरी तरह से असफल, तो तुम्हारे साथ बहुत सी चीजें घटती हैं- अहंकार भाप की तरह उड़ जाता हैं।

जा जेन में भी सात दिनों तक बिना भोजन किए और बिना सोये

शांत और मौन बैठे रहने पर भी, वहां अहंकार था।

वास्तव में कौन मांग कर रहा है समाधि या सतोरी की?

कौन है वहां, जो कह रहा है कि समाधि घटनी चाहिए?

यह अहंकार का अंतिम प्रयास है

वह उसे दृढ़ता से पकड़ना चाहता है, और यही अवरोध है।

जब उसने अपनी असफलता स्वीकार कर ली, अहंकार विसर्जित हो गया। क्योंकि अहंकार केवल सफलता के साथ ही रहता है।

सफलता ही उसका भोजन है, वही वह प्रामाणिक तत्व है, जिस पर अहंकार जीवित रहता है।

यदि तुम वास्तव में असफल हो गए पूरी तरह हार गए

फिर वहां अहंकार कैसे रह सकता है?

अंतिम रूप से असफल हो जाने पर अहंकार रह ही नहीं सकता।

अहंकार विसर्जित हो गया, और अहंकार के साथ ही

आलस्य और अत्यधिक सक्रियता दोनों ही जाती रहीं।

बिना अहंकार के ही तुम संतुलित होते हो।

अचानक प्रत्येक चीज ठीक और अनुकूल बन जाती है और संतुलन सध जाता है।

बिना अहंकार के, वहां कोई पराकाष्ठा नहीं होती, वह रह ही नहीं सकती, अहंकार के प्रयास से ही पराकाष्ठा या चरमसीमा अस्तित्व में होती है।

जब अकस्मात् अहंकार नहीं होता वहां, तब तुम मध्य में होते हो।

और अब आत्महत्या का प्रामाणिक प्रयास ही प्रामाणिक संतुलन ला देता है। अंत में उसने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और अपने जीवन का अंत करने का दृढ़ निश्चय किया,

वह धीमे-धीमे चलता हुआ रेलिंग तक गया और अपने पैर को ऊपर उठाया। धीमे-धीमे चलते हुए ही क्यों? अब आत्महत्या वास्तव में एक विचार मात्र नहीं रह गया था

वह उसे करने जा रहा था।

आत्महत्या अब ऐसी बात थी, जो उसे घटने जा रही थी।

संसार उसके लिए समाप्त हो चुका था, इसलिए अब कोई शीघ्रता भी न थी, क्योंकि उसे अब कहीं भी जाना नहीं था।

अब वह पूरी तरह अपने को नीचे गिराकर अस्तित्वहीन होने जा रहा था। अब उसे कोई जल्दी ही नहीं थी।

बहुत खामोशी से धीमे-धीमे वह रेलिंग पर आया।

वास्तव में यह अत्यंत गहन, प्रामाणिक और सुन्दर क्षण था।

यह आत्महत्या पहले से ही कुछ अलग तरह की है।

तुम बहुत अधिक बड़े तनाव में आत्महत्या कर सकते हो

लोग बहुत अधिक तनाव के क्षणों में ही आत्महत्या करते हैं

यदि वे केवल एक क्षण की भी देर कर दें,

फिर वे आत्महत्या नहीं करेंगे।

वह केवल तभी की जा सकती है, जब तुम पूरी तरह से पागल बन गए हो, यह तभी की जा सकती है, जब तुम वास्तव में इतने अधिक तनाव में हो, कि तुम यह नहीं जानते कि तुम क्या कर रहे हो?

इसलिए यदि तुम एक क्षण के लिए भी, आत्महत्या करने में देर कर दोगे, फिर वह कभी घटेगी ही नहीं।

मेरा एक मित्र था।

वह एक स्त्री के प्रेम में पड़ गया था, और उस स्त्री ने उन्हें अस्वीकार कर दिया था, इसलिए एक भावुक कवि होने के कारण उसने आत्महत्या करने का विचार किया।

उसका पूरा परिवार बहुत अधिक परेशान हो गया।

उन सभी ने उसे समझाने की बहुत कोशिश की, लेकिन उन्होंने जितना अधिक प्रयास किया, वे उतना ही अधिक स्वयं समझ गए-.

कि वह आत्महत्या करने ही जा रहा है। ऐसा होता ही है।

यह न जानते हुए कि अब आखिर क्या किया जाए उन्होंने दरवाजे पर ताला लगा दिया।

उसने दरवाजे से अपना सिर फोड़ना शुरू कर दिया।

वे सभी लोग बहुत अधिक भयभीत हो गए। आखिर अब क्या किया जाए?

अचानक उन्हें मेरा स्मरण आया और उन्होंने मुझे बुलाया। मैं वहां गया। वह दरवाजे से अपना सिर पीट रहा था।

वह वास्तव में बहुत अधिक क्रोध में था ओर पूरी तरह दृढ़प्रतिज्ञ था। मैं दरवाजे के पास गया और उसने कहा:

तुम आखिर इतना अधिक दिखावा क्यों कर रहे हो?

यदि तुम आत्महत्या करना ही चाहते हो, तो शौक से करो।

लेकिन इतना अधिक शोर क्यों कर रहे हो?

और क्यों अपना सिर फोड़ रहे हो?

केवल दरवाजे से अपना सिर पीट कर तुम मरोगे नहीं।

इसलिए मेरी बात सुनो और मेरे साथ चलो।

हम नदी की ओर चल सकते हैं, जहां एक सुन्दर स्थान है,

जहां मैं हमेशा ध्यान करता रहा हूं।

यदि कभी मुझे आत्महत्या करनी होगी, तो वही है वह स्थान।

तुम मेरे साथ चलो, यह एक अच्छा अवसर है।

क्योंकि मैं आत्महत्या के विरोध में कुछ भी नहीं कह रहा था,

वह कुछ ठंडा पड़ा शांत हुआ। अब वह अपना सिर नहीं फोड़ रहा था। वह वास्तव में उलझन में पड़ गया, क्योंकि तुम कभी भी यह आशा नहीं कर सकते-

कि तुम्हारा मित्र ही आत्महत्या करने में तुम्हारी सहायता करेगा।

इसलिए मैंने उससे कहा: तुम स्वयं अपने को मूर्ख मत बनाओ,

और न यहां भीड़ को इकट्ठा होने में सहायक बनो। तुम दरवाजा खोलो। इस बारे में इतना अधिक प्रदर्शन करने की जरूरत क्या है?

तुम सामान्य रूप से मेरे साथ चलो और अपने आप को नदी में गिरा दो। वहां नदी एक प्रपात के रूप में गिरती है,

तुम उसमें पूरी तरह विसर्जित हो जाओगे।

इसलिए उसने दरवाजा खोला, और मेरी ओर देखने लगा।

वह बहुत बड़ी उलझन में पड़ गया था।

मैंने उसका हाथ पकड़ा और उसे अपने साथ घर ले गया।

उन्होंने पूछा: हम लोग वहां कब चल रहे हैं?

लेकिन वह थोड़े सा भयभीत था।

अब जब मैं उसे साथ ले जाने को पहले से तैयार था, तो मैं उसके लिए खतरनाक था।

इसलिए मैंने उससे कहा: आज पूर्णिमा की चांदनी रात है और जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं।

जब कोई मरना ही चाहता है, तो उसे शुभ मुहूर्त का चुनाव करना चाहिए। इसलिए हम लोग आधी रात वहां चलेंगे।

तब पूरे चंद्रमा की भी वहां चांदनी फैली होगी,

और मैं तुमसे आखिरी सलाम कर सकता हूं और तुम तुरंत वहां से कूद सकते हो

वह और भी अधिक भयभीत हो उठा।

मैं सामान्य रूप से इसमें देरी लगा रहा था, और समय को टाल रहा था।

दस बजे हम लोग बिस्तरे पर सोने गए।

मैंने घड़ी में बारह बजे का अलार्म लगा दिया। और उससे कहा: कभी ऐसा हो जाता है कि मुझे अलार्म सुनाई नहीं पड़ता,

इसलिए यदि पहले वह उसे सुनें तो मुझे जगा दें।

जब ठीक वक्त पर अलार्म बजने लगा तो उसने उसे बंद कर दिया। मैंने कुछ मिनटों तक प्रतीक्षा करने के बाद उससे कहा:

तुम प्रतीक्षा क्यों कर रहे हो? मुझे जगा क्यों नहीं दिया?

वह अचानक नाराज होकर बोला: तुम मेरे मित्र हो या मेरे दुश्मन हो? ऐसा लगता है कि तुम मुझे मार देना चाहते हो।

मैंने कहा: मैं अपने से कोई भी निर्णय नहीं ले रहा हूं।

यदि तुम मरना चाहते हो, और चूंकि मैं तुम्हारा मित्र हूं

तो मुझे तुम्हारी सहायता करते हुए तुम्हें सहयोग देना चाहिए।

यदि तुम नहीं मरना चाहते हो, तो यह तुम्हारा निर्णय होगा।

इसलिए मुझे साफ-साफ बतलाओ। मैं तो तटस्थ व्यक्ति हूं।

कार तैयार खड़ी है। मैं उसे चलाकर तुम्हें उस स्थान तक ले चलूंगा, रात बहुत सुन्दर है और चारों ओर चांदनी बिखरी हुई है।

अब यह सब कुछ तुम्हारे ऊपर है।

उसने कहा: मुझे मेरे घर ले चलो। मैं अब मरने नहीं जा रहा हूं।

और तुम आखिर होते कौन हो, जो मुझे मरने के लिए विवश कर सको। मैं किसी को भी विवश नहीं कर रहा था।

केवल उस क्षण को थोड़ी देर के लिए टाल दो,

और कोई भी व्यक्ति अपने होश में आ जाता है।

लेकिन यह उस तरह की आत्महत्या नहीं थी।

मैं तुम्हें यह भी जरूर बताना चाहता हूं कि संसार भर में अकेला एक-ऐसा भी धर्म है, जो आत्महत्या करने की अनुमति देता है-वह है जैन धर्म। यह एक दुर्लभ बात है, केवल महावीर आत्महत्या करने की अनुमति देते हैं। वह कहते हैं कि यदि तुम बिना किसी भावुकता या भावावेश के

बहुत शांति से मर सकते हो, तो यह बहुत सुन्दर है,

इसमें गलत कुछ भी नहीं।

लेकिन इसे करने में बहुत अधिक समय लगाना है

अन्यथा तुम इसका महत्व नहीं जान पाओगे।

इसलिए तुम्हें भोजन लेना बंद करना होगा, सब कुछ बस इतना ही करना है। बिना भोजन लिए एक मनुष्य को मरने के लिए लगभग तीन माह चाहिए

इन तीन महीनों में शरीर अपने अन्दर संरक्षित ऊर्जा, भोजन और प्रत्येक चीज का उपयोग करते हुए जीता है।

कोई भी हड्डियों के ढांचे पर मढ़ी खाल जैसा बन जाता है

और उसे मरने में लगभग तीन माह लगते हैं।

इसलिए महावीर कहते हैं कि यदि तुम मरना ही चाहते हो,

और यदि यह आत्महत्या, धार्मिक रूप से शरीर से मुक्त होने की है

तो इसे करने में जल्दबाजी मत करो।

इसे प्रामाणिक रूप से करो, क्योंकि तुम्हारे पास विचार करने के लिए तीन माह का समय है

और तुम वापस भी लौट सकते हो, कोई ऐसा करने से तुम्हें विवश नहीं कर रहा है।

और अतीत में वहां ऐसे बहुत से लोग हुए हैं, जिन्होंने ऐसा किया भी है। तीन माह तक पूरी तरह से शांत लेटे और ध्यान करते हुए ही वे अस्तित्व में लीन हो गए।

तब इस तरह की आत्महत्या, तुम्हारे सामान्य जीवन से कहीं अधिक सुन्दर है, क्योंकि वे लोग वास्तव में अपने आप को मार नहीं रहे थे, वे किसी दूसरे साम्राज्य की ओर बढ़ रहे थे।

यह कोश बहुत धीमे- धीमे आगे बढ़ा, वह किसी भी जल्दी में न था।

वास्तव में जब जीवन का ही तुम्हारे लिए कुछ भी अर्थ नहीं रह जाता तो मृत्यु का भी तुम्हारे लिए कुछ भी अर्थ नहीं रह जाता।

जब जीवन ही व्यर्थ हो गया, फिर मृत्यु भी अर्थहीन है,

क्योंकि मृत्यु और कुछ भी नहीं, बल्कि जीवन की ही पराकाष्ठा है।

मृत्यु का तुम्हारे लिए जितना अधिक अर्थ है, क्योंकि जीवन का भी तुम्हारे लिए उतना ही अधिक अर्थ है।

यह हमेशा समान अनुपात में रहता है।

यदि जीवन तुम्हारे लिए अत्यधिक अर्थपूर्ण है,

तो तुम्हें मृत्यु से भय लगेगा।

जब जीवन अर्थहीन है तो वास्तव में मृत्यु भी अर्थहीन है।

फिर शीघ्रता किस बात की?

वह रेलिंग के पास आया

वह रेलिंग की ओर धीमे-धीमे गया और उसके ऊपर अपना पैर उठाया? और उसी क्षण जरा इस चित्र की ओर दृष्टिपात करें-एक बौद्ध भिक्षु

मीनार पर खड़ा हुआ धीमे- धीमे रेलिंग पर अपने पैर को ऊपर उठा रहा है, और अचानक वहां वह सभी कुछ घट गया, जो वह हमेशा से चाहता था। बिजली की कौंध की भांति अचानक सतोरी घट गई।

उस क्षण हुआ क्या?

आत्महत्या करने के लिए जब उसने धीमे से अपना पैर ऊपर उठाया तो जीवन उसके लिए पूरी तरह खत्म हो चुका था,

अब वहां मन में कोई भी लोभ नहीं था, स्तोरी का भी नहीं।

मन में कोई भी अहंकार नहीं था,

यहां तक कि किसी धार्मिक उपलब्धि का भी।

भविष्य पूरी तरह गिर चुका था

क्योंकि वह केवल इच्छाओं के ही साथ रहता है।

कामना का होना ही भविष्य है, इच्छा करना ही भविष्य है।
उसके अन्दर केवल एक सतोरी की ही कामना थी,
और वही कामना भविष्य और समय निर्मित कर रही थी
वही कामना अंतिम अवरोध थी
अब वह अंतिम बाधा भी गिर गई।
अब वहां न कोई कामना थी और न कोई भविष्य।
केवल वह क्षण ही अस्तित्व में था।
जिस क्षण कोश ने धीमे से अपना पैर ऊपर उठाया,
समय ही रुक गया-न कोई भी अतीत रहा और न कोई भी भविष्य:
अतीत इसलिए नहीं, क्योंकि अनुभव से जीवन की व्यर्थता जानी,
और भविष्य इसलिए नहीं, क्योंकि वहां अब कोई भी कामना नहीं थी, सतोरी की भी नहीं।

जैसे ही उसने पैर ऊपर उठाया, समय रुक गया।
पैर ऊपर उठाते ही मन विसर्जित हो गया।
क्योंकि अब वहां न तो कुछ पाने को था, और न कुछ सोचने को। उसी क्षण वह समय के पार हो गया।
उस क्षण वह समय का अतिक्रमण कर गया।
उसी क्षण उसका अस्तित्व ऊर्ध्वगामी और लम्बवत हो गया,
अब वह पृथ्वी के समानान्तर नहीं रहा।
न फिर कोई अतीत रहा और न फिर भविष्य रहा। सभी व्यर्थता विसर्जित हो गईं।
उस ऊपर उठाने के क्षण में, केवल उसका पैर ही ऊपर नहीं उठा,
उसका पूरा अस्तित्व ही ऊपर की ओर उठ गया।
ऊपर की ओर जाने वाले ऊर्ध्वगामी आयाम का जैसे वातायान खुल गया। और तभी अचानक सतोरी घट गई।
अचानक उसी क्षण, उसका जागरण हुआ।
हमेशा ऐसा ही होता है:

स्वयं बुद्ध को भी इसी तरह से घटा।
उन्होंने महल छोड़ दिया, सुन्दर पत्नी छोड़ दी, नवजात शिशु को छोड़ दिया, पूरा साम्राज्य और पूरा संसार छोड़ दिया।
संसार उनके लिए अब और अर्थपूर्ण नहीं रह गया था।
तब छ वर्षों तक वह प्रयास और प्रयास करते रहे,
और उन्होंने अत्यधिक प्रयास किया।
वह उस प्रत्येक शिक्षक और प्रत्येक उस गुरु के पास गए
जिसके बारे में भी उन्होंने सुना कि वह जानता है,
और उन्होंने कहा: आप जो कुछ भी कहें, मैं करने को तैयार हूं
लेकिन मैं जानना चाहता हूं कि जीवन क्या है और मैं हूं कौन?

और उन छ: वर्षों में उन गुरुओं और बहुत से सद्गुरुओं ने उनसे बहुत सी साधनाएं करने का कहा और उन्होंने उन सभी को किया।

और उन्हें इतनी अधिक पूर्णता और निष्ठा से किया

कि कोई भी गुरु उनसे यह न कह सका-

कि वह इसलिए नहीं घट रहा है क्योंकि तुम उसे ठीक से नहीं कर रहे हो। वैसा होना असम्भव था-

यहां तक कि सद्गुरु भी उतने पूर्ण निर्दोष और विकसित नहीं थे,

जितना कि शिष्य था।

इसीलिए सभी गुरुओं ने अपनी असफलता स्वीकार करते हुए कहा:

कि वे केवल इसी सीमा तक उनकी सहायता कर सकते थे,

और इसके पार वे स्वयं कुछ नहीं जानते।

इसलिए उन्हें कोई अन्य सद्गुरु खोजना चाहिए।

और तब सभी गुरु उनके लिए जैसे समाप्त हो गए।

तब उन्होंने स्वयं ही साधना करना शुरू किया,

और उन्होंने वे प्रत्येक उपाय किए जो सदियों से भारत में प्रचलित थे।

उन्होंने हठयोग और राजयोग की सभी विधियों से प्रयास किया।

उन्होंने वह सभी कुछ किया जो प्राप्य था, आवश्यकता से अधिक किया।

उनकी निष्ठा ही उनके अन्दर एक तनाव बन गई,

और वह उपलब्ध न हो सके।

तब एक दिन बोध गया के निकट निरंजना नदी को पार करते हुए

उपवास के कारण उनका शरीर इतना अधिक निर्बल हो गया था,

कि वे उसे पार नहीं कर सके।

उसकी बहुत छोटी सी धारा थी, लेकिन वह उसे तैर कर पार नहीं कर सके, और अपना जीवन बचाने के लिए उन्होंने एक वृक्ष की जड़ पकड़ ली। वह बहुत अधिक निर्बल थे उस समय।

उसी क्षण उन्होंने विचार किया:

मैंने अभी तक किया क्या? मैंने अपने शरीर को बरबाद कर दिया,

और मुझे किसी भी आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ,

और मेरा पूरा प्रयास ही एक मूर्खता थी।

उसी क्षण उन्होंने सभी प्रयास छोड़ दिए।

संसार उनके लिए पहले ही व्यर्थ हो चुका था,

और प्रयासों से भरा अध्यात्म का संसार भी उनके लिए व्यर्थ हो गया। उस दिन उन्होंने एक वृक्ष के नीचे विश्राम किया।

वही बोधि-वृक्ष बन गया,

जिसके नीचे वह बुद्धत्व को उपलब्ध हुए।

उन्होंने विश्राम किया। वह विश्राम परिपूर्ण और समग्र था।

पहली बार ही, वहां प्राप्त करने को कुछ भी नहीं था:

प्राप्त करने वाला मन ही विदा हो गया।
उन्होंने प्रत्येक कार्य किया था और इससे अधिक और कुछ भी किया ही नहीं जा सकता था।
इसलिए अब करने को बचा क्या था? वह सामान्य रूप से सो गए।

उस रात कोई भी स्वप्न नहीं आया,
क्योंकि जब वहां कोई कामना ही नहीं थी, तो वहां स्वप्न भी नहीं थे।
सपने तो कामनाओं की छायाएं होते हैं,
सपने ही कामनाएं हैं जो तुम्हारी नींद में भी घूमते रहते हैं।
वह पूरी रात यों गुजर गई, जैसे मानो वह केवल एक क्षण था।
और सुबह के समय
जब आखिरी सितारा डूब रहा था
उन्होंने अपने नेत्र खोलकर शुक्र के तारे की ओर देखा।
वह ठीक वैसी ही स्थिति में थे, जैसी स्थिति कोश की थी।
जब कोश ने धीमे से अपना पैर ऊपर उठाया, वह अपने को मीनार से नीचे गिराने जा रहा था।
अंतिम तारे के अस्त होते ही-उन्होंने अपने अन्दर, अमनी दशा में, बिना किसी कामना के अपने नेत्र खोले।
समय रुक गया- और अकस्मात, 'वह' वहां प्रकट हो गया।
उनकी कामना ही अवरोध बन गई थी।

इसलिए किसी एक को लम्बी अवधि तक कठिन प्रयास करना होगा,
और उसे हर सम्भव प्रयास करने होंगे,
और उसे घूमते- भटकते हुए उसे खोजना और तलाशना होगा,
किसी भी एक को वह सभी कुछ करना होगा, जो वह कर सकता है,
और तभी उसे सभी कुछ गिरा देना होगा।
तुम ठीक अभी उसे नहीं गिरा सकते,
क्योंकि तुम्हारे पास गिराने को कुछ है ही नहीं।
पहले तुम्हें प्रयास करना होगा, तुम तभी उसे गिरा सकते हो।
तब तुम किसी मीनार पर चढ़कर, अपना पैर छलांग के लिए ऊपर उठा सकते हो।
बहुत आहिस्ते-आहिस्ते। लेकिन इससे कुछ भी घटेगा नहीं।
क्योंकि यह प्रश्न किसी बाह्य मुद्रा बनाने का नहीं है-
तुमने अपने अंतस के लिए वह सभी कुछ नहीं किया है, जो किया जाना था।
तुम एक बोधि वृक्ष के नीचे जाकर परिपूर्ण विश्राम में लेट सकते हो,
ठीक सुबह उसी समय, जब भोर का तारा अस्त हो रहा हो,
और तब तुम अपने नेत्र खोल सकते हो। कुछ भी नहीं घटेगा।
प्रत्येक को समग्र और परिपूर्ण विश्राम के लिए कठोर प्रयासों से होकर गुजरना होगा।
तभी 'वह' अकस्मात घटता है।

वास्तव में 'वह' सदा से ही तुम्हारे चारों ओर रहा है,

केवल तुम ही नहीं थे वहां। तुम वहां उपस्थित ही नहीं थे।

तुम अपने मन में उठती हुई कामनाओं में, भविष्य और अतीत में

स्मृतियों और विचारों में भटक रहे थे।

तुम उनके घुमड़ते बादलों से नाता जोड़ बैठे थे,

इसी कारण तुम उस निरभ्र आकाश को न देख सके।

वह सदा से ही वहां था,

वास्तव में आकाश में बादल तो आवारा बने घूम ही रहे थे।

समाधि तुम्हारे चारों ओर है, समाधि तो एक विराट सागर जैसी है।

और तुम हो उसमें रहने वाली एक मछली-लेकिन तुम उपस्थित नहीं हो। आनंद के अतिरेक से उछलता हुआ वह तेजी से सीढियां फलांगता

गिरता-पड़ता, सदगुरु गीजान के कक्ष में गया।

इससे पहले वह कुछ कह पाता, सद्गुरु हर्षित होकर बोले:

वाह! बहुत खूब! आखिर तेरे लिए वह दिन आ ही गया।

जो सतोरी को उपलब्ध हुआ,

उस व्यक्ति में एक गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है।

उसे कुछ बताने की आवश्यकता ही नहीं है-कम से कम सद्गुरु को- उसे यह कहने की आवश्यकता ही नहीं: कि मैंने उसे पा लिया है।

क्योंकि जिसने पा लिया है उसका पूरा अस्तित्व ही पूर्ण रूप से बदलकर तरंगित और झंकृत होने लगता है।

वह कुछ कह पाता, इससे पहले ही सद्गुरु ने कहा:

वाह वाह! बहुत खूब! तो तूने उसे पा लिया। वह घट गया तुझे?

उसके बारे में बात करने की कोई जरूरत थी ही नहीं।

एक बार वह घट जाता है, जो उसे जानते हैं, वह उसे देख ही लेंगे। जो नहीं भी जानते हैं, उन्हें भी कुछ अनुभव होना शुरू हो जाएगा।

अज्ञात के बारे में कुछ भी अनुभव किए बिना, अज्ञात के रहस्यमय संसार की पगध्वनि सुने बिना, तुम एक बोध को उपलब्ध व्यक्ति के पास आ ही नहीं सकते।

रहस्य उसे चारों ओर से घेरे हुए है,

उसी की घनी छांव में एक पावन महिमामय महान आत्मा निवास करती है। उसकी प्रत्येक गतिविधि में पवित्रता और प्रसाद होता है,

क्योंकि वह पूर्ण और समग्र है।

सतोरी तुम्हें पूर्ण बनाती है, समाधि तुम्हें खण्ड से अखण्ड बनाती है।

अब वहां चेतन और अचेतन के मध्य कोई भी विभाजन नहीं रह जाता। अचानक वह सेतु द्वारा एक हो जाता है।

पूरा अचेतन चेतन हो जाता है।

अखण्ड चैतन्य!

इसकी महिमा कुछ इस तरह की होती है:

जैसे रात में तुम कोई मकान देखो, जिसके अन्दर कोई भी प्रकाश न हो। तभी कोई व्यक्ति उसके अन्दर प्रकाश कर दे

उस घर की पूरी शोभा, महिमा और सौंदर्य बदल जाता है।

उस सड़क से गुजरने वाले लोग भी अचानक देखते हैं

कि घर प्रकाशवान हो रहा है।

उस मकान के गुण बदल गए वह महिमामय हो उठा।

उसकी खिड़कियों से, उसके दरवाजों से, उसकी संदों से

प्रकाश चमकता और छनता हुआ बाहर आ रहा है।

उस घर में अब कोई अंधेरा रहा ही नहीं।

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

मैं अभी मरा नहीं हूं

सूत्र:

एक भूतपूर्व सम्राट ने सद्गुरु गूडो से पूछा:

एक बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति को मृत्यु के बाद क्या घटता है? गूडो ने उत्तर दिया:

मैं इसे कैसे जान सकता हूं?

भूतपूर्व सम्राट ने कहा:

आपको इस वजह से जानना चाहिए- क्योंकि आप एक सद्गुरु हैं। गूडो ने उत्तर दिया:

वह तो ठीक है श्रीमान्!

लेकिन मैं अभी मरा ही नहीं हूं।

मनुष्य सत्य के प्रति अनजान और अज्ञानी है।

और सत्य को जानना भी कठिन है,

क्योंकि सत्य को जानने के लिए पहले तुम्हें प्रामाणिक और सच्चा बनना होगा।

केवल समान ही समान को जान सकता है।

मनुष्य झूठा और नकली है, वह गहरे में छली और बहानेबाज है।

वह स्वयं अपने लिए ही प्रामाणिक नहीं है।

उसका मौलिक चेहरा पूरी तरह से मिट चुका है।

उसके पास कई चेहरे हैं, वह अनेक चेहरों का प्रयोग करता है,

लेकिन वह स्वयं अपने ही मौलिक चेहरे के प्रति सचेत नहीं है।

मनुष्य अनुकरण करने वाला एक प्राणी है।

वह दूसरों का अनुकरण किए चले जाता है,

और धीमे- धीमे वह यह भूल ही जाता है

कि उसके अपने स्वयं के पास एक अद्वितीय और अनूठा अस्तित्व है।

सत्य को केवल तभी जाना जा सकता है जब तुम सच्चे और प्रामाणिक बनो। इसके लिए अत्यधिक प्रयास करना होगा,

पहाड़ पर चढ़ने जैसा इसका पथ दुर्गम है,

इसलिए मनुष्य चालाकी करने की कोशिश करता है।

वह सत्य के सम्बन्ध में विचार करना शुरू कर देता है। सत्य के बारे में, दार्शनिकता से विचार करना, बौद्धिक और सैद्धांतिक व्यवस्थाएं निर्मित करना, यही है सब कुछ दर्शन शास्त्र: एक व्यक्ति द्वारा सत्य के सम्बन्ध में न जाकर, अपने अज्ञान के बारे में स्वयं को धोखा देने वाली मन की एक चाल। इसी कारण दार्शनिक विचार-धाराओं की बाढ़ सी आई हुई है। और पूरा संसार धारणाओं और सिद्धान्तों में जी रहा है। हिंदू मुस्लिम, ईसाई, जैन और बौद्ध लोगों की यहां लाखों विचारधाराएँ हैं। और वे सभी बहुत सस्ती हैं, तुम्हें अपने आपको बदलने की जरूरत नहीं है।

तुम्हें केवल सामान्य बुद्धि के औसत दर्जे के मन की जरूरत है।

उच्च बौद्धिक क्षमता की कोई आवश्यकता नहीं है,

तुम कोई भी विचारधारा चुन सकते हो, इसमें कहीं कोई भी कठिनाई नहीं है, और स्वयं अपने आप से, अपने अज्ञान को छिपा सकते हो।

दर्शनशास्त्र, इसे केवल छिपाने की ही एक विधि है:

एक व्यक्ति को बिना कुछ भी जाने हुए यह अनुभव होना शुरू हो जाता है, कि वह जानता है।

बिना पहला कदम ही उठाए हुए एक व्यक्ति को यह अनुभव होना शुरू हो जाता है, कि वह पहुंच गया है।

दर्शनशास्त्र, सबसे बड़ी एक बीमारी है,

और एक बार तुम उसके जाल में पड़ गए तो उससे बाहर आना बहुत

कठिन होता है,

क्योंकि वह इतनी अधिक सघनता से अहंकार की प्रतिपूर्ति करता है कि एक व्यक्ति को जब अपने अज्ञान के बारे में पता चलता है, तो उसे बहुत चोट लगती है।

और अज्ञान है पूरी तरह सम्पूर्ण: तुम कुछ भी नहीं जानते।

तुम पूरी तरह से अज्ञान के अंधेरे में भटक रहे हो, और यही बात चोट करती है। एक व्यक्ति कम से कम कुछ तो जानना ही चाहता है

और दर्शनशास्त्र तुम्हें सांत्वना देता है, क्योंकि उसके पास सिद्धांत हैं,

और यदि तुम्हारे पास एक सामान्य बुद्धि भी है, तो उससे काम चल जाएगा तुम उन सिद्धांतों को सीख सकते हो,

तुम्हारे पास तुम्हारी अपनी दार्शनिक व्यवस्था हो सकती है,

और तभी तुम्हें चैन मिलेगा।

तब न केवल तुम जानते हो, बल्कि तुम दूसरों को भी सिखा सकते हो,

दूसरों को परामर्श दे सकते हो,

तुम दूसरों के आगे अपने ज्ञान का प्रदर्शन किए चले जाते हो,

अइरि प्रत्येक चीज स्थाई हो जाती है, अज्ञान को भुला दिया जाता है।

दर्शनशास्त्र का अर्थ है-सत्य के बारे में एक तर्कपूर्ण ढांचा तैयार करना। यह केवल उसके बारे में, उसके ही सम्बन्ध और उसके बारे में होता है।

यह कभी वास्तविक और प्रामाणिक नहीं होता।

यह उसके चारों ओर गोल-गोल घूमना भर होता है,

झाड़ी के चारों ओर जमीन पर यह चोट करने जैसा होता है,

लेकिन यह चोट सत्य के केंद्र तक कभी नहीं पहुंचती।

वह ऐसा कर भी नहीं सकती, और दर्शनशास्त्र के लिए ऐसा करना सम्भव भी नहीं है।

ऐसा करना सम्भव क्यों नहीं है?

क्योंकि दर्शनशास्त्र तर्क पर आधारित है

और सत्य है तर्क के पार, अतर्क्य।

तुम्हें इसे थोड़ा और गहराई से समझना होगा।

तर्क की खोज है नियमितता और स्थायित्व की,

और अस्तित्व नियमित और जड़ नहीं है।

अथवा, वह इतना अधिक सघनता से नियमित है

कि विपरीत भी उसके साथ विरोधी नहीं होता।

सत्य, विरोधाभासी है। वह इतना अधिक विराट है,

कि उसमें सभी विपरीतताएं आकर मिलती हैं और उसी में समाहित हो जाती है।

तर्क है संकरा, तर्क है-किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख, एक संकरी सड़क की भांति।

सत्य है, बिना लक्ष्य का वह विराट शून्य, जो पहले ही से वहां है,

जो एक साथ सभी आयामों में गतिशील है

और जिसके लिए कहीं भी जाना नहीं है।

तर्क केवल एक आयाम होता है, जबकि सत्य है, बहुआयामी।

तर्क कहता है, 'अ ' 'अ' है, और वह कभी भी 'ब' नहीं हो सकता: यही नियमितता और स्थायित्व है तर्क की।

और वास्तविक यथार्थ में, 'अ' है तो 'अ' ही, लेकिन निरंतर गतिशील होने से वह 'ब' भी हो जाता है।

तर्क कहता है: जीवन जीवन है और वह कभी भी मृत्यु नहीं बन सकता। जीवन, मृत्यु कैसे हो सकता है?

लेकिन वास्तविक यथार्थ अथवा सत्य यही है-

कि जीवन प्रत्येक क्षण मृत्यु की ओर बढ़ रहा है,

और जीवन मृत्यु भी है।

तर्क कहता है : प्रेम, प्रेम है, और वह कभी भी घृणा नहीं बन सकता लेकिन प्रेम प्रत्येक क्षण गतिशील होकर घृणा बन रहा है

और घृणा प्रत्येक क्षण गति करती हुई प्रेम बन रही है।

तुम उसी व्यक्ति से प्रेम करते हो, और तुम उसी व्यक्ति से घृणा करते हो। जितना गहरा प्रेम होता है, उतनी ही गहरी घृणा होती है।

घृणा और प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

क्या तुम किसी व्यक्ति को प्रेम किए बिना, घृणा कर सकते हो?

तुम एक व्यक्ति से बिना प्रेम किए कैसे घृणा कर सकते हो?

पहले तुम्हें प्रेम करना होगा, केवल तभी तुम घृणा कर सकते हो।

घृणा के पहले कदम के लिए प्रेम जरूरी है।

तुम किसी व्यक्ति के साथ यदि कभी मित्र बनकर नहीं रहे हो,

तो कैसे उसके प्रति शत्रुतापूर्ण हो सकते हो?

केवल तर्क में ही मित्र और शत्रु अलग होते हैं,

वास्तविक सत्य यही है कि वे एक साथ ही होते हैं।

यदि तुम गहराई से अपनी घृणा में खोजो, तो यहां छिपा हुआ प्रेम पाओगे। जिस क्षण तुम जन्म लेते हो, मृत्यु का जन्म भी तुम्हारे ही साथ हो जाता है। जन्म है मृत्यु का प्रारम्भ,

और मृत्यु है जन्म की ओर निरंतर आगे बढ़ना।

हेराक्लाईटिस कहता है:

परमात्मा जन्म भी है और मृत्यु भी।

वह ग्रीष्म भी है और शरद ऋतु भी।

वह भूख भी है और तृप्ति भी।

वह अच्छा भी है और बुरा भी।

वह सदा दोनों एक साथ है।

और परमात्मा ही सत्य है। वही अखण्ड अस्तित्व भी है।

यदि तुम सत्य की ओर देखो, तो देखोगे कि उसमें सभी विपरीताएं मिल रही हैं। सत्य विरोधाभासी है, और तर्क है संगत।

तर्क है सीधा सपाट और स्पष्ट, और सत्य है बहुत जटिल।

अथवा वह गणित की कोई समस्या नहीं है-उसके बहुत से आयाम हैं। और वे सभी अंतर्संबंधित हैं, उसमें सभी विरोधाभास एक साथ हैं

दिन, रात में बदल रहा है, रात फिर दिन में बदल रही है।

सुबह और कुछ भी नहीं, बल्कि शाम के आने का संकेत है।

युवावस्था, वृद्धावस्था में बदल रही है। सुंदरता, कुरूपता में परिवर्तित हो रही है। प्रत्येक वस्तु बदल रही है, और बदल कर ठीक उससे विपरीत बन रही है।

इसे बहुत गहराई से समझ लेना है,

क्योंकि दर्शनशास्त्र और धर्म के मध्य यही मौलिक अंतर है।

दर्शनशास्त्र तर्कप्रधान है, जब कि धर्म ऐसा नहीं है।

दर्शनशास्त्र, तार्किक निष्पत्ति है, जब कि धर्म सत्य है, एक वास्तविकता है। दर्शनशास्त्र को समझना कठिन नहीं है जब कि धर्म को समझना लगभग

असम्भव है।

तर्कशास्त्र, सीधी और स्पष्ट भाषा में बात करता है, जब कि धर्म बोल नहीं सकता, क्योंकि धर्म को सत्य की भाषा प्रयुक्त करनी होती है।

तर्कशास्त्र, अस्तित्व से मन के द्वारा चुना गया एक खण्ड है,

वह पूर्ण नहीं है।

धर्म अखण्ड अस्तित्व को स्वीकार करता है, और वह जैसा है, उसे वैसे ही जानना चाहता है।

तर्कशास्त्र बुद्धि के द्वारा तैयार की गई एक इमारत है।

दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र और विज्ञान, ये सभी बुद्धि के ही निर्माण हैं,

और यह सभी तर्क पर आधारित हैं।

धर्म है, मन के पूरे निर्माण को गिरा देना, और दर्शनशास्त्र है सत्य के बारे में मन का निर्माण, एक व्यवस्था का सृजन।

मन वहीं रहते हुए तुम्हें चुनाव करने, प्रक्षेपण करने और खोजने में सहायता

करता है।

धर्म में तुम्हें मन के निर्माण को ध्वस्त करना होता है।

सत्य जैसा है, वैसा ही बना रहता है।

तुम सत्य के साथ कुछ भी नहीं करते-तुम पूरी तरह से मन को गिरा देते हो

सत्य, तार्किक निष्पत्ति की भांति नहीं है और तुम तब देखते हो,

यदि मन रहेगा वहां, तो अखण्ड को देखने की तुम्हें अनुमति ही न देगा।

मन नियमितता से ग्रसित है

वह विरोधाभासों को अनुमति नहीं दे सकता।

इसलिए तुम जब भी एक बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति के निकट आते हो,

तुम्हारा मन कठिनाई में पड़ जाएगा।

तुम्हें उसमें बहुत से विरोधाभासों का अनुभव होगा।

तुम्हारा मन कहेगा

यह व्यक्ति कुछ कहता है और फिर उसका विरोध करता है,

और कभी-कभी वह जो कहता है, और तभी फिर कोई दूसरी विरोधी बात कहने लगता है जो असंगत होती है।

एक धार्मिक मनुष्य का वास्तविक स्वभाव ही विरोधाभासी होता है

उसे ऐसा ही होना होता है,

क्योंकि वह किसी नियमितता की खोज न करता हुआ सत्य की खोज में है। वह प्रामाणिक अस्तित्व की खोज कर रहा है। वह जैसा भी है- वह इसके लिए प्रत्येक चीज छोड़ने को तैयार है

सत्य के लिए उसके पास कोई पूर्व निश्चित ढांचा नहीं है-

उसके पास ऐसा कोई विचार या धारणा भी नहीं है कि सत्य ऐसा ही होना चाहिए।

यदि वह अनियमित है, तो अनियमित है। वह ठीक है।

उसके पास उस पर आरोपित करने के लिए कुछ भी नहीं है।

एक धार्मिक चित्त, सत्य को सामान्य रूप से प्रकट होने की अनुमति देता है। उसके पास कोई विचार होता ही नहीं, कि वह कैसा होना चाहिए?

एक धार्मिक व्यक्ति निष्क्रिय होता है,

और एक तार्किक, दार्शनिक और वैज्ञानिक मनुष्य सक्रिय होता है।

उसके अन्दर कोई विचार उठता है और उस विचार के द्वारा वह सत्य का निर्माण करता है।

उस विचार के चारों ओर वह उस सत्य को खोजने का प्रयास करता है। वह विचार ही तुम्हें सत्य को खोजने की अनुमति नहीं देता-

वह पूरा विचार ही बाधा बन जाता है।

इसलिए पहला मार्ग है तर्कशास्त्र और दूसरा मार्ग है काव्य।

कविता, तर्कशास्त्र के विरुद्ध है।

तर्कशास्त्र, विचारशील है और कविता है अतार्किक

तर्कशास्त्र, तर्कपूर्ण है और कविता है एक कल्पना,

और यह अंतर स्मरण रखने जैसा है

क्योंकि न तो धर्म न तो तर्कशास्त्र है न ही कविता।

तर्क भी मन करता है और कविता भी मन से ही उमगती है।

एक कवि, सत्य की कल्पना करता है। एक तर्कशास्त्री के सत्य की तुलना में निश्चित ही उसका सत्य कहीं अधिक रंगीन और सुन्दर होता है,

क्योंकि वह कल्पना करता है और भयभीत नहीं होता।

वह अपनी कल्पना करने में पूरी तरह स्वतंत्र होता है,

उसे किसी विचार का अनुसरण नहीं करना होता है,

वह सत्य के बारे में पूरी तरह से स्वप्न ही देखता है, लेकिन वह फिर भी, 'किसी के बारे में' होता है।

वह सत्य अथवा पूर्ण अस्तित्व के बारे में ही स्वप्न देखता है।

वह अपने सपनों के द्वारा एक सुन्दर पूर्ण अस्तित्व का निर्माण करता है। वह बहुरंगी होता है, क्योंकि नीचे गहराई में वह एक कल्पना है।

तर्कशास्त्र है सीधा, सपाट, रंगहीन और लगभग भूरा सा,

उसमें कोई भी काव्य नहीं होता,

क्योंकि वहां कोई कल्पना भी नहीं होती।

कविता में लगभग विरोधाभास होते हैं, क्योंकि वह एक कल्पना है।

और वह इसकी फिक्र भी नहीं करती।

तुम एक कवि से कभी भी नियमित बनने के लिए नहीं कह सकते।

यदि एक कवि एक कविता आज लिखता है, तो कल दूसरी लिखता है, और स्वयं ही विरोधाभासी हो जाता है, लेकिन कोई भी उसकी चिंता नहीं करता।

लोग कह देते हैं-यह तो आखिर एक कविता है।

यदि एक चित्रकार आज एक चित्र उकेरता है

तो कल ठीक उसका विरोधी चित्र बना देता है।

तुम उससे नियमित होने के लिए यह नहीं कहते

तुम यह क्या कर रहे हो? कल तुमने चंद्रमा को पीला चित्रित किया था

और आज तुम लाल रंग का चंद्रमा चित्रित कर रहे हो?

तुम आखिर यह कर क्या रहे हो? तुम विरोधामासी हो।

नहीं! कोई भी नहीं पूछता उससे। वह कैनवास पर उकेरा गया काव्य है।

चित्रकला एक कविता है, मूर्तिकला भी एक कविता है,

और तुम कलाकार को पूरी स्वतंत्रता उपभोग करने की अनुमति देते हो।

लेकिन काव्य एक कल्पना है।

मन के दो केंद्र होते हैं।

एक है विचार करना और दूसरा है कल्पना करना।

लेकिन दोनों का केंद्र मन ही है-

और धर्म है-दोनों के भी पार सभी के पार,

उसका केंद्र मन में तो है ही नहीं।

यह न तो विज्ञान है और न कविता अथवा यह दोनों एक साथ है।

इसी कारण कविता की अपेक्षा धर्म कहीं अधिक गूढ़ रहस्यवाद है।

वह मन को उसके सभी केंद्रों के साथ गिरा देता है,

और तब वह निरीक्षण करता है।

यह ठीक ऐसे ही है, जैसे मानो तुम अपना धूप का चश्मा उतार कर अलग रख दो और तब देखो।

मन को उठाकर एक ओर रखा जा सकता है क्योंकि वह एक यांत्रिक प्रणाली

तुम मन नहीं हो।

मन ठीक एक खिड़की की तरह है।

तुम वहां खड़े हुए खिड़की के द्वारा बाहर देख रहे हो,

तब खिड़की की चौखट या फ्रेम ही, पूरे अस्तित्व अथवा सत्य का फ्रेम बन

जाता है,

तुम खिड़की से बाहर देखते हो,

चंद्रमा उदित हुआ है और आकाश बहुत सुन्दर दिखाई दे रहा है,

लेकिन तुम्हारा आकाश खिड़की के फ्रेम के आकार का सीमित आकाश होगा।

और यदि खिड़की पर किसी खास रंग के शीशे लगे हुए हैं,

तब खिड़कियों के शीशे का रंग ही तुम्हारे आकाश को उसी रंग का बना देगा।

धर्म है, सामान्य रूप से घर से पूरी तरह बाहर आकर

उस विराट अस्तित्व अथवा सत्य को देखना,

किसी खिड़की या दरवाजे के द्वारा नहीं,

चश्मों, शीशों अथवा किन्हीं धारणाओं के द्वारा नहीं,

लेकिन वह जैसा है, उसे पूरी तरह से वैसे ही मन को अलग हटाकर देखना। और यही है इस पूरे धर्म की कार्य-प्रणाली।

सभी तरह के योग, तंत्र और ध्यान की सभी विधियां और कुछ भी न होकर, केवल मन को एक ओर उठाकर रख देने की ही विधियां हैं।

मन के साथ इस तादात्म्य को कैसे तोड़ा जाए और तब निरीक्षण किया जाए। तब जो कुछ भी है सत्य, वह प्रकट होगा।

'जो' वास्तव में है, वह उद्‌घाटित होगा। इसे सदा स्मरण रखें।

कभी-कभी धर्म तर्क की भाषा में भी बोलेगा,

तब यह धर्मशास्त्र बन जाता है।

कभी-कभी धर्म कविता की भाषा में भी बात करेगा,

तब यह ताजमहल की तरह वस्तुगत कला बन जाती है।

यदि तुम पहली बार ताजमहल को देखने जाओ

तो तुम समझोगे कि वस्तुगत कला क्या होती है।

ताजमहल की भांति यदि तुम वस्तुगत कला के किसी भी नमूने को बैठकर पूरी तरह से देखते हुए उसका निरीक्षण करो,

तो अचानक एक मौन तुम्हें चारों ओर से घेर लेता है, और तुम पर एक शांति उतर आती है।

ताजमहल का पूरा निर्माण ही

तुम्हारे अस्तित्व के अंतस से संबंधित है।

केवल उसकी आकृति की ओर देखते हुए ही, तुम्हारे अन्दर

कुछ चीज जैसे बदलने लगती है।

यहां दो तरह की कलाएं हैं।

पहली तरह की कला है वैयक्तिक, उदाहरण के लिए पिकासो की कला। यदि तुम पिकासो के चित्र की ओर देखो-

तो तुम समझ सकते हो कि पिकासो का मन किस तरह का होना चाहिए

क्योंकि उसके चित्र, उसके ही मन को चित्रित करते हैं।

उसे निश्चित रूप से दुस्वप्नों में जीने वाला व्यक्ति होना चाहिए

क्योंकि उसके सभी चित्र स्तब्ध कर देने वाले भयानक उत्पीड़न को चित्रित करते हैं। तुम बिना रुग्णता और पागलपन का अनुभव किए उन चित्रों की ओर अधिक देर तक नहीं देख सकते।

यह उसके अपने अन्दर का पागलपन है, जिसे उसने रंगों द्वारा

कैनवास पर उड़ेल दिया है।

और यह छूत की बीमारी की भांति है।

यह है वैयक्तिक कला-

तुम जो कुछ भी करते हो, तुम उसमें अपने मन को ले आते हो।

वस्तुगत कला में तुम्हें अपने मन को उसमें नहीं लाना होता,

बल्कि कुछ पदार्थगत नियमों का अनुसरण करना होता है,

जिससे वह व्यक्ति जो उसकी ओर देखेगा, उस पर ध्यान करेगा, बदल जाएगा।

पूरब की सारी कला ने वस्तुगत होने का प्रयास किया।

कलाकार, अपनी कृति में उपस्थित नहीं है।

चित्रकार को भुला दिया जाता है मूर्तिकार का विस्मरण कर दिया जाता है। वास्तुकार, शिल्पकार सभी विस्मृत हो जाते हैं, क्योंकि वे उससे संबंधित नहीं हैं।

वे केवल कुछ निश्चित पदार्थगत नियमों का अनुसरण कर रहे है

कला के एक ऐसे उत्कृष्ट नमूने का सृजन करने के लिए

जिससे सदियों बाद भी, जब कभी भी कोई उनकी ओर देखे तो ध्यान जैसी कुछ चीज उनमें घटे।

पूर्णिमा की चांदनी रात में कोई भी बातचीत न करते हुए

ताजमहल के निकट मौन बैठकर केवल उस पर ध्यान करने से

समय रुक जाता है और समयहीनता का क्षण घटता है,

और तब अचानक वहां बाहर ताजमहल भी नहीं रह जाता, कोई चीज तुम्हें अन्दर से बदलती है।

कभी-कभी धर्म, मन के इस सत्य को इस संसार के सम्मुख लाने के लिए वस्तुगत कला के सम्बन्ध में बात करता है।

कभी-कभी वह तर्क के सम्बन्ध में बात करता है।

तब वह धर्मशास्त्र बन जाता है, तब वह तर्क वितर्क करता है।

लेकिन यह दोनों ही इस संसार के साथ किए गए समझौते हैं।

यह समझौते, औसत दर्जे के सामान्य मन के मनुष्यों तक

धर्म को लाने के लिए किए गए हैं।

जब धर्म अपनी परिपूर्ण शुद्धता में कुछ कहता है तो वह विरोधाभासी होता

लाओत्से के ताओ-ते-चिंग की भांति,

अथवा हेराफ्लाईटस के वचन, अथवा ये जेन बोध-कथाएं।

अपनी शुद्धता से धर्म, तर्क ओर कल्पना दोनों का अतिक्रमण कर देता है। वह पूरी तरह से सभी के पार होता है।

अब थोड़ी सी बात, 'पूरी तरह से सभी के पार' के बारे में- तभी हम इस बोध कथा में प्रवेश करेंगे।

यह बहुत छोटा सा, एक बीज के समान सूक्ष्म है।

लेकिन यदि तुम हृदय की भूमि को अनुमति दो

तो यह विकसित होकर एक विशाल वृक्ष बन सकता है।

यदि तुम इसकी आकृति की ओर देखो, तो यह बहुत नन्हा-सा है

लेकिन यदि तुम इसके अन्दर छिपे हुए अरूप को देखो

तो उसकी कोई सीमाएं ही नहीं, वह अनंत है।

इस 'सभी के पार' के बारे में कुछ चीजों की बाबत सचेत बनना है- पहली बात यह कि यह ' पूरी तरह सभी के पार

अज्ञात को ही सत्य मानने से बहुत अस्पष्ट और जटिल है,

इसके लिए तुम्हारे रूपांतरण की आवश्यकता है

अन्यथा तुम इसे समझने में सफल न हो सकोगे।

इसके लिए आवश्यकता है-तुम्हारी समझ अथवा बोध में स्पष्टता हो। यह प्रश्न अकेली बुद्धि का नहीं है, क्योंकि हो सकता है

कि एक अति विद्वान भी इसे समझने में समर्थ न हो सके

और कभी एक सामान्य देहाती भी इसे समझ जाए।

कभी-कभी आइन्व्हीन भी इससे चूक सकता है।

क्योंकि यह प्रश्न निपुणता और बुद्धि का है ही नहीं-

यह प्रश्न है सुस्पष्ट निर्मल समझ का, किसी चतुरता या कुशलता का नहीं।

सुस्पष्टता एक भिन्न चीज है।

कुशलता, सत्य के साथ चालबाज बनने का एक तरीका है,

यह मक्कारी है।

सुस्पष्टता, पूरी तरह इससे भिन्न है:

यह मक्कारी या चालबाजी न होकर, बच्चे जैसी निर्दोषता होती है।

तुम्हारे पास मन नहीं होता, खिड़की पूरी तरह खुली हुई होती है।

तुम्हारे पास कोई विचार नहीं होते।

क्योंकि विचारों से भरा हुआ मन स्पष्टता और निर्मलता खो देता है,

वह ठीक बादलों से भरे हुए एक आकाश जैसा होता है।

विचारों से भरा हुआ मन पारदर्शी नहीं होता, वह एक कबाड़खाना होता है। और इस कूड़े कबाड़ से भरे मन के द्वारा तुम यह अनुभव नहीं कर सकते, तुम देख नहीं सकते कि सत्य क्या होता है?

एक व्यक्ति को अपने आप को निर्मल और शुद्ध करना होता है।

गहरे तक सफाई करने की आवश्यकता होती है

उसे बहुत सी ध्यान विधियों से होकर गुजरना होता है

जिससे धीमे- धीमे तुम्हारा मन इस तरह सुस्पष्ट और कोरा हो जाए

जैसे बिना बादलों के आकाश होता है।

इसलिए यह प्रश्न किसी बुद्धिगत समझ का न होकर

एक भिन्न तरह के अस्तित्व का प्रश्न होता है,

जो कोरे आकाश की भांति सुस्पष्ट और निर्मल हो।

दूसरी बात जो स्मरण रखने की है,

वह यह है कि धार्मिक चित्त कभी भी इस क्षण के पार नहीं जाता,

क्योंकि जैसे ही तुम इस क्षण के पार जाते हो,

तुम मन के द्वारा कार्य करना प्रारम्भ कर देते हो।

यहां भविष्य है ही नहीं, इसलिए तुम उसकी ओर कैसे देख सकते हो? तुम केवल उसके बारे में विचार कर सकते हो।

तुम भविष्य केबारेमें केवल विचार करसकते हो, तुम उसे देख नहीं सकते। केवल वर्तमान क्षण ही देखा जा सकता है, जो पहले ही से यहां है।

इसलिए धार्मिक चित्त इसी क्षण में जीता है,

तुम धार्मिक चित्त को इस क्षण के पार जाने के लिए विवश नहीं कर सकते, क्योंकि धार्मिक चित्त जिस क्षण भविष्य के बारे में सोचने लगता है,

वह धार्मिक ही नहीं रह जाता।

तुरंत ही उसके चित्त या मन की गुणात्मकता बदल जाती है।

एक धार्मिक चित्त 'अभी और यहीं' में रहता है,

और रहने का केवल यही एक तरीका है।

यदि तुम भविष्य के बारे में अथवा उस क्षण के बारे में सोचते हो,

जो यहां है ही नहीं, तो तुम पहले ही मन के जाल में फंस जाते हो,

और तुम विचारों को उत्पन्न होने की अनुमति देते हो,

क्या कभी तुमने इसका निरीक्षण किया है, कि वर्तमान में कोई विचार होते ही नहीं?

ठीक अभी, कैसे विचार का अस्तित्व हो सकता है?

वर्तमान क्षण में कभी कोई विचार रहा ही नहीं है,

वह हमेशा अतीत अथवा भविष्य में रहता है।

या तो तुम अतीत के बारे में सोचते हो-तब वहां तुम कल्पना करते हो, अथवा तुम भविष्य के बारे में सोचते हो-तब वहां तर्क-वितर्क होता है। तुम वर्तमान में कैसे सोच सकते हो?

तुम केवल उसमें हो सकते हो।

और यह क्षण इतना अधिक सूक्ष्म, इतना अधिक छोटा और आणविक होता है, कि उसमें किसी विचार के होने का स्थान होता ही नहीं।

विचार के लिए स्थान की, चारों ओर से घिरे एक ऐसे स्थान की आवश्यकता होती है, जिसमें वह रह सके,

और वर्तमान में विचार को ऐसा कोई स्थान मिलता ही नहीं।

केवल अरूप आत्मा ही वहां रह सकती है।

इसलिए तुम जब कभी वर्तमान में होते हो, विचार रुक जाते हैं,

अथवा यदि तुम विचार प्रक्रिया रोक दो, तो तुम वर्तमान में होंगे।

एक धार्मिक चित्त की भविष्य के बारे में कोई उत्सुकता होती ही नहीं, वह उसके और न सम्बन्ध में होती है, जो अतीत में हो चुका है।

वह इसी क्षण में जीते हुए एक क्षण से दूसरे क्षण में जाता है।

जब यह क्षण चला जाता है तो दूसरा क्षण आता है:

धार्मिक मनुष्य उसमें चला जाता है। वह एक नदी की भांति होता है।

एक बहुत-बहुत गहरी बात यह स्मरण रखने योग्य है कि एक धार्मिक चित्त, एक धार्मिक मनुष्य और एक धार्मिक अस्तित्व हमेशा एक प्रक्रिया होता है, वह सदा गतिशील और प्रवाहमान होता है।

निश्चित रूप से वह गतिशीलता बिना किसी उद्देश्य के होती है।

वह किसी लक्ष्य के पीछे गतिशील नहीं होता,

वह सामान्य रूप से, बस गतिशील होता है

क्योंकि अस्तित्व का स्वभाव ही गतिशीलता है। वह अस्तित्व के साथ ही गतिशील होता है

ठीक उस तरह जैसे कोई नदी के साथ बहता है।

वह समय की सरिता के साथ प्रवाहित होता है।

वह क्षण- क्षण जीता हुआ गतिशील होता है।

वह कोई भी कार्य नहीं कर रहा है, वह प्रामाणिक रूप से उस क्षण को जी रहा है।

जब वह क्षण चला जाता है, तो दूसरा क्षण आता है, और वह उस क्षण को जीने लगता है।

एक धार्मिक मनुष्य के पास प्रारम्भ का तो अनुभव होता है, पर अंत का नहीं। जागरण से ही उसका प्रारम्भ होता है, लेकिन अंत नहीं।

वह होता ही जाता है, और बढ़ता ही जाता है।

अज्ञान के साथ मामला ठीक इसके विपरीत होता है-

अज्ञान के पास प्रारम्भ का अनुभव नहीं होता, लेकिन अंत का होता है। क्या तुम कह सकते हो कि तुम्हारा अज्ञान कब से शुरू हुआ?

उसका कोई प्रारम्भ होता ही नहीं।

बुद्ध को अज्ञान के अनुभव का प्रारम्भ कब से हुआ?

उसका कोई प्रारम्भ नहीं था, लेकिन उसका अंत हुआ।

एक विशेष पूर्णिमा की रात्रि को पच्चीस शताब्दियों पूर्व उसका अंत हुआ। अज्ञान का अंत होता है, लेकिन प्रारम्भ नहीं:

बुद्धत्व का शुभारम्भ होता है, लेकिन उसका अंत नहीं होता।

और इस तरह से यह चक्र पूरा हो जाता है।

जब एक अज्ञानी मनुष्य बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो यह चक्र पूरा हो जाता है।

अज्ञान को प्रारम्भ का कोई अनुभव नहीं होता, लेकिन अंत का होता है, बुद्धत्व को बोध के प्रारम्भ होने का अनुभव होता है, लेकिन उसका कोई अंत नहीं होता।

अब यह चक्र पूरा हो जाता है।

अब यहां वह निर्दोष अस्तित्व है, जिसका चक्र पूरा हो चुका।

लेकिन चेतना के इस चरम उत्कर्ष का अर्थ किसी स्थिरता से नहीं है,

क्योंकि बुद्धत्व का कभी अंत होता ही नहीं।

बोध सदा बढ़ता ही जाता है, बढ़ता ही जाता है, वह शाश्वत हो जाता है।

अब बीज की भांति इस सुन्दर बोध कथा को समझने का प्रयास करें: एक भूतपूर्व सम्राट ने सद्गुरु गूडो से प्रश्न किया:

मृत्यु के बाद बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति के साथ क्या घटता है? यदि उसने यह प्रश्न दार्शनिकों से पूछा होता,

तो उन्होंने बहुत से उत्तर दिए होते,

क्योंकि शास्त्र ऐसे उत्तरों से भरे पड़े हैं।

बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति को मृत्यु के बाद क्या घटता है?

बुद्ध से भी यही प्रश्न बार-बार पूछा गया था।

और वह कभी-कभी इस प्रश्न को सुनकर सामान्य रूप से हंस पड़ते थे। एक बार ऐसा हुआ कि शाम के झुटपुटे का समय था

और बुद्ध के निकट एक छोटा सा मिट्टी का दीया जल रहा था।

किसी व्यक्ति ने फिर यही प्रश्न पूछा:

बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति के साथ मृत्यु के बाद क्या घटता है? बुद्ध ने दीये की ज्योति बुझा दी और पूछा:

'अब उस ज्योति का क्या हुआ, जो अब है ही नहीं?'

वह कहां चली गई? वह अब है कहां?

एक क्षण पहले ही वह यहां थी, अब वह कहां चली गई?'

ठीक ऐसा ही बोध को उपलब्ध व्यक्ति के साथ मृत हो जाने पर होता है। यह उत्तर नहीं है।

वह व्यक्ति जरूर ही असंतुष्ट होकर यह अनुभव करते हुए लौटा होगा।

कि बुद्ध ने उसके प्रश्न को टाल दिया।

जिन लोगों ने भी 'उसे' जाना है, उन्होंने सदा उससे बचने की कोशिश की है

लेकिन जो लोग नहीं जानते, उन लोगों के पास बहुत से उत्तर हैं। तुम विद्वानों और पंडितों से पूछो

और वे तुम्हें बहुत से उत्तर उपलब्ध करा देंगे।

तुम अपनी पसंद का उनमें से कोई भी उत्तर चुन सकते हो।

गूडो ने उतर दिया

मैं इसे कैसे जान सकता हूं?

तुम कोई चीज भविष्य के बारे में पूछ रहे हो, और मैं यहीं और अभी हूं। मेरे लिए वहां कोई भी भविष्य नहीं है।

केवल इस क्षण का ही अस्तित्व है, और यहां कोई दूसरा क्षण है ही नहीं। तुम एक बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति की मृत्यु के बाबत पूछ रहे हो,

जो या तो कहीं भविष्य में है, अथवा कहीं अतीत में है।

बुद्ध के साथ क्या हुआ था?

इसी वजह से गूडो ने कहा: मैं इसे कैसे जान सकता हूं?

उसके कहने का अर्थ है:

मैं अभी और यहीं हूं न मेरे लिए अतीत अर्थपूर्ण है और न भविष्य।

वह कह रहा है

ठीक अभी, मेरी ओर देखो। बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति तुम्हारे सामने बैठा है।

वह कह रहा है

मेरी ओर देखो। तुम्हारी उत्सुकता मृत्यु में क्यों है?

एक बार ऐसा हुआ कि एक व्यक्ति गड़ो से भेंट करने आया,

जो उस समय का सर्वाधिक प्रसिद्ध सद्गुरु था, क्योंकि वह सम्राट का भी सद्गुरु था।

और वह व्यक्ति बहुत बूढ़ा, लगभग नब्बे वर्ष का था,

जो बौद्धों के एक विशिष्ट सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता था।

उसने कहा: मैं बहुत दूर से चलकर आया हूं

और मेरा जीवन अब लगभग समाप्त होने को है,

और मैं सदा से यह प्रतीक्षा करता रहा हूं कि कब आपसे मिलने का अवसर पा सकूं।

इसलिए मरने से पहले मैं आपके पास आया हूं

क्योंकि मेरे पास आपसे पूछने के लिए एक प्रश्न है।

लगभग पचास वर्षों से मैं बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन कर रहा हूं

और मैं अब सब कुछ जानता हूं

केवल एक चीज मुझे परेशान करती है, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है'

वृक्ष और चट्टानें भी बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएंगी।

मैं इस बात को कभी समझ ही नहीं पाता, वृक्ष और चट्टानें भी?

गूडो ने कहा: मुझे एक बात बतलाओ,

क्या तुमने कभी स्वयं अपने बारे मैँ सोचा है, कि तुम-

बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकते हो अथवा नहीं?

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया है तो यह बात अजीब,

लेकिन मैं जरूर यह स्वीकार करूंगा कि मैंने कभी इसके बारे में सोचा ही नहीं।

वृक्ष और चट्टानें कैसे बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकते हैं?

इस बात के बारे में वह पचास वर्षों से सोचता आ रहा था,

और इसी प्रश्न को गूडो से पूछने के लिए इतनी अधिक दूर से आया था, और उसने कभी भी स्वयं के बारे में सोचा ही नहीं था।

लोग यह न जानकर, कि ठीक अभी वे जीवित हैं

मृत्यु के बारे में बातचीत करते हैं।

जीवन यही है, पहले इसे जानें और उसे समग्रता से जीएं।

तुम मृत्यु के बारे में बात करते ही क्यों हो?

लोग, मृत्यु के बाद क्या होगा, इस बारे में बात करते हैं।

इस बारे में सोचना कहीं अधिक अच्छा होगा, कि तुम्हारे साथ जन्म के बाद से अब तक क्या घटा है और जब आएगी मृत्यु हम उससे भी मिल लेंगे। पहले जीवन से मिलो, जो यहीं और अभी है।

और यदि तुम जीवन से भेंट कर सकते हो, तो तुम मृत्यु से भी मिलने में समर्थ हो सकोगे।

कोई भी व्यक्ति जो ठीक तरह से जी सकता है, वह ठीक तरह से मरेगा। कोई भी व्यक्ति जो चेतना और पूरे होश से क्षण- क्षण सजग होकर समृद्ध जीवन जीता है, वही व्यक्ति, निश्चित रूप से जब मृत्यु भी आती है, तो वह वैसा ही करता है

वह उसे भी जीएगा, क्योंकि वह उस गुणात्मस्कता को जानता है, कि वर्तमान में कैसे जीया जाए। जब मृत्यु भी उसके लिए वर्तमान का क्षण बन जाती है, तो वह जियेगा लेकिन लोगों की उत्सुकता जीवन के बारे में कम और मृत्यु के बारे में अधिक होती है।

लेकिन यदि तुम जीवन को ही नहीं जानते,

तो यह कैसे मान लिया जाए कि तुम मृत्यु के बारे में भी जानने में समर्थ हो सकोगे?

मृत्यु जीवन से पृथक नहीं है

वह उसकी ही प्रामाणिक पराकाष्ठा है।

यदि तुम जीवन से ही चूक गए तो तुम मृत्यु को देखने में भी समर्थ न हो सकोगे।

मृत्यु आएगी, लेकिन तुम अचेत बने रहोगे।

यही सब कुछ हो भी रहा है।

लोग गहन अचेतावस्था और कोमा में मर जाते हैं।

वे अपना पूरा जीवन मूर्च्छा में ही गुजारते हैं,

और जब तुम जीवन के साथ ही अचेत बने जीते रहे

तो तुम यह कल्पना भी कैसे कर सकते हो

कि तुम मृत्यु के पूर्व भी होशपूर्ण होने में समर्थ हो सकोगे?

मृत्यु तो एक क्षण में हो जाएगी,

और जीवन है सत्तर अथवा अस्सी वर्ष की एक प्रक्रिया।

यदि तुम अस्सी वर्ष में भी सचेत न बन सके,

यदि तुम्हें होशपूर्ण बनने के लिए अस्सी वर्ष भी पर्याप्त नहीं हैं,

तो तुम एक क्षण में होशपूर्ण होने में कैसे समर्थ हो सकोगे?

केवल वही व्यक्ति, जो क्षण- क्षण जीता रहा है

मृत्यु का साक्षात्कार करने में समर्थ हो सकेगा,

क्योंकि जब उसने जीवन को क्षण- क्षण जीया है

तो मृत्यु भी उससे बचकर नहीं खिसक सकती।

उसके पास ऐसी सुस्पष्टता, और इतनी सघन पारदर्शिता होती है कि उस अकेले क्षण में भी जब मृत्यु चलकर आती है

वह उसे देखने में समर्थ हो सकेगा।

एक व्यक्ति जो जीवन को देखने में समर्थ हो चुका है

वह स्वचालित रूप से मृत्यु को देखने में भी समर्थ होगा- और तब कोई एक यह जान पाता है

कि वह न तो जीवन है और न मृत्यु

वह तो केवल साक्षी है।

जब कोई व्यक्ति, बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति के बाबत यह पूछता है-कि मृत्यु के बाद उसे क्या घटता है?

तो यह निश्चित है कि वह स्वयं बोध को उपलब्ध नहीं है।

और इसीलिए अपने गहरे अज्ञान से वह यह पूछ रहा है, इसलिए उत्तर देना कठिन है।

यह ठीक उसी तरह है कि जैसे एक अंधा व्यक्ति पूछे

कि सुबह सूरज के निकलने पर क्या होता है?

उसे कैसे यह स्पष्ट किया जाए?

उसके साथ संवाद कैसे हो? यह असम्भव है।

एक बार ऐसा हुआ कि एक अंधा व्यक्ति, जो केवल अंधा ही न होकर एक बहुत बड़ा दार्शनिक भी था,

पूरा गांव, उससे परेशान था, क्योंकि उसने तर्कपूर्ण ढंग से यह सिद्ध किया था कि यहां, प्रकाश जैसी कोई भी चीज होती ही नहीं।

वह कहता था : मेरे पास हाथ हैं। मैं उनसे स्पर्श कर सकता हूं।

और महसूस कर सकता हूं इसलिए मुझे दिखाओ, प्रकाश है कहां?

यदि ऐसी कोई भी वस्तु अस्तित्व में है, तो उसका स्पर्श किया जा सकता है, यदि कोई चीज वास्तव में है और तुम उस पर किसी चीज से चोट करो, तो मैं उसकी आवाज सुन सकता हूं।

और गांव वाले उससे बहुत अधिक परेशान थे,

क्योंकि वे अपने समर्थन में कोई भी प्रमाण न जुटा सकते थे।

उसके पास चार इन्द्रियां थीं, और वह कहता था:

मेरे पास चार ज्ञानेन्द्रियां हैं। तुम मेरे सामने प्रकाश लाओ,

और मैं अपनी चारों इन्द्रियों द्वारा उसे देखूंगा

कि वास्तव में वह है भी अथवा नहीं?

और वे लोग कहते थे: चूंकि आप अंधे हैं, इसलिए आप देख नहीं सकते। वह हंस पड़ता था और कहता था: ऐसा लगता है, जैसे तुम सपना देख रहे हो। आंखें आखिर होती क्या हैं? और तुम कैसे सिद्ध कर सकते हो,

कि तुम्हारे पास आखें हैं और मेरे पास नहीं हैं।

तुम अपने प्रकाश के बारे में मुझे बतलाओ वह होता क्या है।

उसे स्पष्ट करो।

ऐसा वे लोग कर नहीं सकते थे।

लेकिन वे लोग बहुत निराशा का अनुभव करते थे

क्योंकि यह व्यक्ति तो अंधा था, और उन लोगों के पास आंखें थीं।

तभी उस कस्बे में बुद्ध का आगमन हुआ।

वे सभी लोग, इस अंधे पागल दार्शनिक को बुद्ध के पास ले गए

और उन लोगों ने बुद्ध से निवेदन किया:

कृपया आप ही इसे स्पष्ट करने का प्रयास करें, हम लोग तो हार गए।

और इस व्यक्ति के पास कुछ ऐसा है, जिससे उसने सिद्ध किया है, कि प्रकाश जैसी कुछ चीज है ही नहीं, क्योंकि उसका स्पर्श नहीं किया जा सकता, उसे सूंघा नहीं जा सकता, उसका स्वाद नहीं लिया जा सकता,

और उसे सुना नहीं जा सकता,

फिर वह अस्तित्व में कैसे हो सकता है?

अब आप यहां पधारे हैं, आप ही उसे स्पष्ट कर सकते हैं।

बुद्ध ने कहा:

तुम लोग मूर्ख हो। एक अंधे व्यक्ति को प्रकाश के बारे में कुछ भी बताया ही नहीं जा सकता, किए गए सारे प्रयास व्यर्थ हैं।

लेकिन मैं एक व्यक्ति को जानता हूं जो बहुत बड़ा चिकित्सक है

तुम इस व्यक्ति को उसके पास ले जाओ, वह इसकी आखें ठीक कर देगा। उस व्यक्ति को उस चिकित्सक के पास ले जाया गया,

उसकी आखों का उपचार किया गया। वह व्यक्ति वास्तव में अंधा नहीं था। छ: महीनों में उसे दिखाई देने लगा।

तब वह दौड़ता हुआ बुद्ध के निकट आया, जो उस समय एक दूसरे कस्बे में थे। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और उसने कहा:

आपकी करुणा से अब मैं जान सकता हूं कि प्रकाश क्या होता है।

अब मैं समझ पा रहा हूं कि वे बेचारे गांव वासी उसे सिद्ध क्यों नहीं कर पाते थे, और अब मैं समझता हूं कि आपने मुझे चिकित्सक के पास भेजकर बहुत ठीक किया। मुझे उपचार की आवश्यकता थी-न कि प्रकाश के बारे में दार्शनिक सिद्धांतों की।

जब एक अज्ञानी व्यक्ति पूछता है,

कि बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति के साथ मरने के बाद क्या घटता है? इसे छोड़े,

यहां यह भी स्पष्ट नहीं किया जा सकता

कि एक जीवित बुद्ध के साथ क्या घटता है?

क्या घटा मेरे साथ? मैं इसे कैसे स्पष्ट कर सकता हूं?

इसकी कोई सम्भावना ही नहीं है। यह असम्भव है, जब तक कि तुम स्वयं देखना शुरू न कर दो, जब तक तुम्हारी आंखें न खुल जाएं?

यदि तुम स्वयं ही नहीं बदलते, तो कुछ भी नहीं समझाया जा सकता।

संवाद होना ही असम्भव है।

क्योंकि इस अस्तित्व में बुद्धत्व की पूर्ण रूप से भिन्न एक अलग गुणात्मकता है-

और तुम उसके प्रति पूरी तरह अंधे हो!

तुम विश्वास कर सकते हो कि मैं बुद्ध हूं लेकिन तुम देख और समझ नहीं सकते।

वह विश्वास ही सहायता करेगा, क्योंकि वह विश्वास ही तुम्हें खुले रहने की अनुमति देगा।

वह श्रद्धा ही तुम्हारी सहायता करेगी।

क्योंकि तुम इंकार कर सकते हो, तुम कह सकते हो,

नहीं, मैं विश्वास नहीं कर सकता। मैं कैसे करूं विश्वास?

मैं जब उसे जानता ही नहीं, फिर मैं कैसे विश्वास कर सकता हूं?

वह तुम्हारे हृदय के द्वार बंद कर देगा, तब वहां कोई भी सम्भावना नहीं है। यही कारण है कि धर्म का आग्रह श्रद्धा पर है।

जब लोग कहते हैं कि प्रकाश का अस्तित्व है,

तो अंधा व्यक्ति उस पर विश्वास और श्रद्धा कर सकता है।

और यदि वह श्रद्धा रखता है, तभी उसके लिए कोई सम्भावना है।

यदि वह श्रद्धा ही नहीं रखता, तब वह अपने उपचार करने की भी अनुमति

न देगा।

वह कहेगा: तुम कर क्या रहे हो? प्रकाश की कोई सत्ता है ही नहीं,

और आंखें जैसी कोई चीज है ही नहीं। मैं तुम पर विश्वास ही नहीं करता, इसलिए जाओ, और कृपया मेरा समय नष्ट मत करो।

निस तल से उच्च तल पर, विचार और भाव सम्प्रेषित करना असम्भव है, इसमें कोई व्यवस्था कार्य नहीं कर सकती।

तुम्हें अस्तित्व के उस उच्च तल तक स्वयं उठना होगा

केवल तभी, अचानक तुम देख और समझ सकते हो।

और जब तुम देखते, समझते और अनुभव करते हो, तभी श्रद्धा पूर्ण होती है। पर देखने और समझने से पहले, किसी को आस्था और श्रद्धा करनी होगी, अपना रूपांतरण होने देने की अनुमति देनी होगी।

गूडो ने उत्तर दिया: मैं कैसे जान सकता हूं?

मृत्यु अभी तक मेरे पास आई नहीं। जब उसे आना है वह तभी आएगी। तब मैं उसे जान लूंगा और आपको सूचित कर दूंगा

लेकिन ठीक अभी तो मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं जानता।

एक बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति तुम्हें कोई सिद्धांत नहीं देगा,

वह तुम्हें सिद्धांत न देकर, अंतर्दृष्टि देना चाहेगा।

अंतर्दृष्टि का तुम्हारे अन्दर उत्पन्न होना एक बहुत गहरी घटना है। सिद्धांत होता है, उधार लिया हुआ।

वह उत्तर भी दे सकता था, क्योंकि एक बुद्ध के साथ क्या घटता है, इसके बारे में वहां बहुत से सिद्धांत और मत हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के बाद वह एक तल पर पहुंचता है, जिसे मोक्ष कहा जाता है, जहां वह शाश्वत रूप से निवास करता है। कुछ लोगों के वक्तव्य और भी अधिक इन्द्रधनुषी हैं,

वे कहते हैं कि वह परमात्मा के राज्य में प्रवेश करता है

और शाश्वत रूप से परमात्मा के ही साथ रहता है।

ठीक उसी तरह, जैसे जीसस परमात्मा के सिंहासन के दाईं और बैठे हुए फरिश्तों के साथ नाचते गाते उत्सव और आनंद मनाते रहते हैं।

इस बारे में यहां लाखों तरह के सिद्धांत हैं,

लेकिन वे सभी लोगों को सांत्वना देने के लिए धर्मशास्त्रियों के द्वारा सृजित किए गए हैं।

आपने पूछा है-इसलिए किसी न किसी व्यक्ति को तो इसका उत्तर देना ही होगा

लेकिन बुद्धों को नहीं: वे सभी उसके बारे में मौन रहे हैं।

उनकी इसके प्रति कोई उत्सुकता ही नहीं है।

जीसस कहते हैं? मैदान में खिले लिली के फूलों की ओर देखो।

वे केवल यहीं और अभी में रहते हैं।

वे आने वाले कल की चिंता ही नहीं करते,

कल स्वयं उनकी फिक्र करेगा।

कोई व्यक्ति बाइबिल के नए टेस्टामेंट को साथ लेकर

एक जेन सद्गुरु के पास आया और कुछ वाक्यों को,

विशेष रूप से इस वाक्य को पढ़कर सुनाया:

'मैदान में खिले लिली के पुष्पों पर जरा विचार करो, वे कोई श्रम नहीं करते, वे आने वाले कल के बारे में नहीं सोचते

और वे यहीं और अभी में खिले हुए इतने अधिक सुन्दर हैं

कि महान सम्राट सोलोमन भी, जो अपने गौरव के शिखर पर पहुंचा हुआ है, वह भी ऐसी सुन्दरता को देखकर वस्त्र पहनना तक भूल जाता है। '

जब वह इसे पड़ रहा था, तो जेन सद्गुरु ने कहा;

रुको! जो कुछ कहा गया है, यही बुद्धत्व है।

वह न तो जीसस के बारे में ही कुछ जानता था, और न ईसाइयत के बारे में। ईसाइयत जापान में कुछ दिनों पहले ही पहुंची थी।

सद्गुरु ने कहा : रुको! अब कुछ और पढ़ने की जरूरत ही नहीं है।

जो कुछ कहा गया है, वह किसी बुद्ध का ही वचन है।

सभी बुद्धों ने इसी क्षण में बने रहने का ही आग्रह किया है।

इसी वजह से गूडो ने कहा: मैं उसे कैसे जान सकता हूं? भूतपूर्व सम्राट ने कहा:

"आपको इस वजह से जानना चाहिए

क्योंकि आप एक सद्गुरु हैं।

एक सद्गुरु से हम उत्तरों की अपेक्षा रखते हैं।"

लेकिन वास्तव में एक सद्गुरु कभी कोई उत्तर देता ही नहीं।

वह पूरी तरह से तुम्हारे सभी प्रश्नों को नष्ट करता है।

इन चीजों के बीच वहां एक बहुत बड़ा अंतर है।

एक सद्गुरु से हम अपने प्रश्नों के उत्तर पाने की अपेक्षा करते हैं,

लेकिन यदि प्रश्न ही मूर्खतापूर्ण हैं, तो उत्तर भी उससे बेहतर नहीं हो सकते। तुम एक मूर्खता भरे प्रश्न का उत्तर, प्रज्ञापूर्ण ढंग से कैसे दे सकते हो? पूरा प्रश्न ही मूर्खतापूर्ण है।

कोई व्यक्ति आता है और पूछता है:

हरे रंग का स्वाद कैसा होता है?

प्रश्न निरर्थक है, क्योंकि वहां चीजों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है।

लेकिन भाषा की दृष्टि से प्रश्न पूरी तरह ठीक है।

तुम पूछ सकते हो: हरे रंग का स्वाद कैसा होता है?

वाक्य की संरचना में भाषा की दृष्टि से कोई भी दोष नहीं है।

कई कारणों से ठीक इसी तरह जब कोई पूछता है:

बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति जब मर जाता है, तो उसके साथ क्या घटता है? पहली बात तो यह, कि वह कभी मरता ही नहीं।

एक बुद्ध, ऐसा व्यक्ति होता है, जिसने शाश्वत जीवन को जाना है।

वह कभी मरता ही नहीं

और दूसरी बात यह, एक बुद्ध, एक व्यक्ति रह ही नहीं जाता।

उसका अहंकार विसर्जित हो चुका है, इसी कारण वह बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ है।

इसलिए पहली बात तो यह है, कि वह कभी मरता ही नहीं,

और दूसरी बात यह कि वह पहले ही से मरा हुआ है,

क्योंकि वह अब और अधिक रहा ही नहीं।

बुद्धत्व को उपलब्ध होने के चालीस वर्ष बाद तक, बुद्ध भ्रमण करते रहे,

लेकिन इन चालीस वर्षों में,

जब कि वह एक गांव से दूसरे गांव में, बिहरते हुए

लोगों से निरंतर बातचीत करते रहे,

उन्हें वह सभी कुछ देते रहे, जो उन्होंने प्राप्त किया था,

फिर भी यह कहा जाता है कि उन्होंने कभी भी एक शब्द तक का उच्चारण न किया,

और न उन्होंने कभी पृथ्वी पर एक भी कदम रखा।

आखिर इसका क्या अर्थ है?

यह ठीक ही कहा जाता है कि उन्होंने कभी भी एक शब्द तक का उच्चारण नहीं किया,

क्योंकि वह अब और रहे ही कहां थे?

जब तुम हो ही नहीं, फिर तुम कैसे किसी शब्द का उच्चारण कर सकते हो? यह कुछ ऐसे था, जैसे मानो, बुद्ध ने नहीं, स्वयं अस्तित्व ने ही उन शब्दों का उच्चारण किया,

क्योंकि अब बुद्ध, एक व्यक्ति रहे ही नहीं थे,

केवल कार्य करने की सुविधा और उपयोग के लिए उनका नाम भर रह गया था।

अन्यथा वहां उसकी भी कोई जरूरत नहीं थी।

उन्होंने कभी एक कदम तक पृथ्वी पर नहीं उठाया,

लेकिन वह निरंतर भ्रमण और भ्रमण करते ही रहे,

उनके बिहरने से पूरा प्रांत ही बिहार कहा जाने लगा।

बिहार का अर्थ ही होता है-बिहरना अथवा भ्रमण करना।

और चूंकि वहां वह भ्रमण करते रहे थे, इसलिए पूरा प्रांत ही बिहार के नाम से जाना जाने लगा।

और यह ठीक है-पूरी तरह से ठीक-

कि वे कभी एक कदम भी न चले।

मैं तुमसे बात करता हूं: मैं निरंतर तुमसे बातचीत करता हूं लेकिन फिर भी मैंने एक शब्द तक का उच्चारण नहीं किया है।

जब अहंकार ही नहीं होता वहां, तो कौन कर सकता है उच्चारण?

तब क्या होता है, जब मैं तुमसे बात करता हूं?

यह ठीक ऐसा है, जैसे वृक्षों में होकर हवा का एक झोंका गुजर जाता हो, यह ठीक ऐसा है, जैसे वर्षा का मौसम नदी को स्पर्श करता हुआ उसकी ओर बढ़ा आ रहा हो।

यह ठीक इस तरह है जैसे अचानक पुष्प खिल जाएं

लेकिन मैं वहां उपस्थित नहीं हूं।

और फूल यह दावा नहीं कर सकते कि वे स्वयं खिले हैं।

हवा का झोंका यह नहीं कह सकता, कि मैं इन वृक्षों से होकर गुजरा हूं क्योंकि हवा के झोंके के पास कुछ भी कहने के लिए अहंकार है ही नहीं। नदी यह नहीं कह सकती : मैं सागर की ओर बढ़ रही हूं।

नदी प्रवाहित हो रही है लेकिन वहां कोई भी नहीं है, जो नदी को गति दे रहा है।

मैं तुमसे बातचीत कर रहा हूं

लेकिन मैंने एक शब्द का भी उच्चारण नहीं किया है।

लेकिन ऐसी चीजों को प्रतिसंवेदित कैसे किया जाए?

एक बुद्ध एक अर्थ में पहले ही मर चुका है,

उसका अतीत मिट गया है, वह केंद्र ही न रहा वहां।

अब वह कहीं भी नहीं है-और वह हर कहीं है।

अब वह अखण्ड अस्तित्व के साथ हो गया है।

लहर स्वयं सागर में जाकर विलुप्त हो गई है।

इसलिए जब तुम एक बुद्ध को किसी स्थान पर खड़ा हुआ देखते हो,

उसका शरीर सम्पर्क साधने के लिए एक बिंदु मात्र है, केवल इतना ही। इसके अलावा वह और कुछ भी नहीं है। वह ठीक बिजली के एक बटन की भांति है,

यदि तुम उसे दबा दो, विद्युत ऊर्जा प्रवाहित होने लगती है,

अन्यथा विद्युत ऊर्जा तो हर कहीं है ही।

इसलिए जब एक बुद्ध वहां खड़ा हुआ है।

वह ब्रह्माण्ड के लिए ठीक एक सम्पर्क स्थापित करने वाला बिंदु है।

वह वहां अब और है ही नहीं, वह केवल एक द्वार का रास्ता है।

वह संसार सागर में एक लंगर की भांति उसके अस्तित्व रूपी जहाज को रोके हुए है, और जब लंगर उठा दिया जाता है

बुद्ध का शरीर रूपी जहाज भी सागर में खो जाता है।

तुम पूछते हो: मरने के बाद क्या होता है?

जब एक लहर बचती ही नहीं, तो होता क्या है? वह सागर ही बन जाती है। जब एक बुद्ध और अधिक रहता ही नहीं,

उसका शरीर उसी तरह मिट जाता है जैसे एक लहर सागर में समा जाती है।

बुद्ध पहले ही से मर चुका है, इसी कारण वह बुद्ध हुआ है।

और दूसरी बात यह भी है कि वह कभी भी मर नहीं सकता,

क्योंकि एक बार जब अहंकार मर जाता है, तो शाश्वत जीवन प्राप्त हो जाता है, अब बुद्ध कहीं भी नहीं है, और वह प्रत्येक स्थान में है।

जब तुम्हारे पास कोई केंद्र नहीं रह जाता,

तो पूरा अस्तित्व ही तुम्हारा केंद्र बन जाता है।

यह प्रश्न ही मूर्खतापूर्ण है

यह तर्कपूर्ण और अर्थपूर्ण तो दिखाई देता है, लेकिन है मूढ़तापूर्ण।

इसी वजह से गूडो ने उत्तर दिया: मैं कैसे जान सकता हूं?

इस उत्तर में बहुत सी चीजों की ओर संकेत किया गया है।

गूडो कह रहा है मैं हूं ही नहीं। फिर किसे जानना चाहिए? जब लहर सागर में खो गई, तो वह कैसे जान सकती है?

भूतपूर्व सम्राट ने कहा:

आपको इस वजह से जानना चाहिए

क्योंकि आप एक सद्गुरु हैं।

हम लोग एक सद्गुरु से उत्तर पाने की अपेक्षा करते हैं।

लेकिन उत्तर तो शिक्षकों द्वारा दिए जाते हैं, सद्गुरुओं द्वारा नहीं। सद्गुरु पूरी तरह से तुम्हारे मन को मिटाते हैं।

ऐसा लग भी सकता है, कि वह तुम्हें उत्तर दे रहे हों,

लेकिन वे उत्तर कभी देते नहीं। वे कभी भी पकड़ में नहीं आते। तुम किसी बात को पूछो, वह किसी दूसरी बात के बाबत बताने लगते हैं। तुम 'अ' के बारे में पूछो, वे बात करेंगे 'ब' के बाबत।

लेकिन वे तुम्हें बहुत समझा बुझा कर फुसलाते हैं।

वे 'ब' के बारे में बात करते हुए तुम्हें यह विश्वास दिलाते हैं,

कि हां! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया गया।

लेकिन तुम्हारे प्रश्न मूर्खतापूर्ण हैं उनका उत्तर नहीं दिया जा सकता।

वे असंगत हैं।

इसलिए एक सद्गुरु कभी तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता ही नहीं,

लेकिन वह तुम्हें यह अहसास कराता है कि वह तुम्हें उत्तर दे रहा है,

लेकिन वह पूरी तरह से तुम्हारे पैरों के नीचे की जमीन को ही खींचने का प्रयास कर रहा है।

उसका पूरा प्रयास ही यह होता है कि तुम्हारे मन को गिरा कर ध्वस्त कर दिया जाए।

यदि तुम एक सद्गुरु के निकट कुछ देर बने रहो

तो तुम मिटने लगोगे।

वह एक इतनी गहरी शून्यता की खाई है, कि तुम पूरी तरह उसमें खींच लिए जाओगे।

न वहां प्रश्न रहेंगे और न उत्तर।

केवल तभी, जब तुम्हारे अन्दर केवल मौन रह जाता है,

एक सद्गुरु तुम्हारे साथ सफल होता है।

उत्तर, फिर तुम्हारे मन को भर देंगे,

इसलिए एक सद्गुरु तुम्हें उत्तर कैसे दे सकता है? वे सिद्धांत बन जाएंगे? वे तुम्हें सत्य में प्रवेश करने की अनुमति ही नहीं देंगे।

एक सद्गुरु तुम्हारे प्रश्नों को वास्तव में काटता चला जाता है

जब तक कि धीमे-धीमे तुम पूछना बंद ही न कर दो।

और जब न पूछने का क्षण आता है

उत्तर केवल तभी दिया जाता है।

लेकिन वह उत्तर शाब्दिक नहीं होता

वह उत्तर उसके पूरे अस्तित्व से आता है।

तब सद्गुरु अपने आपको तुममें उडेलता है

वह एक वाहन होता है, जिसके द्वारा वह अपना पूरा अस्तित्व तुम्हारे अन्दर उडेलता है।

क्यों?

"आपको इस वजह से जानना चाहिए

क्योंकि आप एक सद्गुरु हैं।"

हम सोचते हैं कि एक सद्गुरु को बहुत अधिक ज्ञानी होना चाहिए

उसे प्रत्येक बात जाननी चाहिए।

वास्तव में एक सद्गुरु कुछ भी नहीं जानता:

वह अज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुंच कर ही सत्य को उपलब्ध हुआ है,

क्योंकि अज्ञान ही केवल निर्दोष हो सकता है, ज्ञान कभी भी निर्दोष नहीं होता।

ज्ञान हमेशा बेईमान और चालबाज होता है,

वह कभी भी निर्दोष हो ही नहीं सकता।

वह कुछ भी नहीं जानता, यही अज्ञान की पराकाष्ठा है।

उसने सारी जानकारी गिरा दी। वह है, लेकिन वह जानने वाला नहीं है। और वह जो कुछ भी कह रहा है, वह उसके ज्ञान या जानकारी से नहीं, वह उसकी निर्दोषता से ही निःसृत हो रहा है।

वह लाखों बातें कह सकता है, क्योंकि उसकी निर्दोषता,

शक्ति और ऊर्जा का एक सागर है,

वह वर्षों तक बोले चला जाता है-बुद्ध चालीस वर्षों तक बोलते रहे।

अब विद्वान कहते हैं कि एक व्यक्ति के लिए चालीस वर्षों तक निरंतर बोले चले जाना, और वह भी इतनी अधिक चीजों के बारे में, असम्भव है।

यह उन लोगों के लिए बहुत कठिन प्रतीत होता है,

क्योंकि वे यह नहीं जानते कि निर्दोषता का भंडार कभी चुकता ही नहीं। ज्ञान चुक जाएगा

यदि मैं किसी के-, को जानता हूं तो वह जानना सीमित है,

और तब मैं निरंतर बोले ही चले नहीं जा सकता।

और यदि तुम सुनने का तैयार हो, तो मैं अनंत समय तक बोले चले जा सकता हूं

क्योंकि यह सभी कुछ जानकारी से बाहर नहीं आ रहा है,

बल्कि यह निर्दोषता की पराकाष्ठा के शून्य से आ रहा है।

निर्दोषता और अज्ञान की यह पराकाष्ठा तुम्हारे अज्ञान जैसी नहीं है:

तुम्हारा अज्ञान और निर्दोषता चरम सीमा तक विकसित नहीं है।

तुम जानते हो-और वास्तव में तुम बहुत अधिक जानते हो।

तुम ऐसा कोई भी निर्दोष व्यक्ति नहीं खोज सकते जो जानता न हो।

वह कम जाने या अधिक, लेकिन वह जानता है,

वह गलत अथवा ठीक कुछ भी जान सकता है, लेकिन वह जानता है। यहां तक कि एक मूर्ख भी जानता है, और वह इस बात पर जोर देता है कि वह उसे बिल्कूल ठीक से जानता है।

केवल एक बुद्ध ही जानने से इंकार करता है।

सुकरात ने कहा है: जब में युवा था,

मैं बहुत सी बातें जानता था, वास्तव में मैं सब कुछ जानता था।

जब में थोड़ा अधिक विकसित हुआ, तो मुझे यह अनुभव होना शुरू हो गया, कि मैं अधिक न जानकर, बहुत थोड़ा सा ही जानता हूं।

और जब मैं पूरी तरह से आ हो गया।

तब मैं पूरी चीज केवल यही समझा

कि अब मैं केवल एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता।

जब वह युवा था, उसने बहुत सी चीजें जानी थीं

युवावस्था को अपने पर बहुत अभिमान होता है।

केवल अल्प विकसित लोग ही अधिक जानकारी रखने वाले होते हैं। विकसित होना, निर्दोष होने जैसा है,

जो कुछ भी नहीं जानती।

अथवा वह केवल यही जानती है, कि वह कुछ भी नहीं जानती।

गूडो ने उत्तर दिया

मैं उसे क्यों जान सकता हूं? मुझे क्यों जानना चाहिए उसे?

भूतपूर्व सम्राट ने कहा:

'आपको इसलिए जानना चाहिए

क्योंकि आप एक सद्गुरु हैं।'

उत्तरों की अपेक्षा है।

उन्हें जानना ही चाहिए। यदि वह ही नहीं जानते, तब दूसरा कौन जानेगा? और गूडो ने कितनी सुन्दर बात कही-

उसने कहा-'जी हां! श्रीमान, लेकिन मैं अभी मरा नहीं हूं।

मैं एक सद्गुरु हूं लेकिन अभी मृत नहीं हुआ हूं।

प्रतीक्षा कीजिए। जब मैं मर जाऊंगा, तब मैं बताऊंगा, कि मरने के बाद बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति के साथ क्या घटता है।

मैं अभी जीवित हूं और आप मुझसे मृत्यु के बारे में पूछ रहे हैं।

मृत्यु अभी घटी नहीं है, इसलिए मैं उसे कैसे जान सकता हूं?

जब वह घटेगी, मैं आपको सूचित कर दूंगा।

बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति को मृत्यु कभी घटती ही नहीं।

गूडो वास्तव में चतुर है। बोध को उपलब्ध व्यक्ति की कभी मृत्यु नहीं होती, केवल अज्ञानी मनुष्य ही मरते हैं। केवल अहंकार की ही मृत्यु होती है। जब तुम्हारे अन्दर कोई केंद्र रहता ही नहीं, फिर कौन मर सकता है?

फिर कैसे मृत्यु सम्भव है?

अपने 'स्व' की अपने अहंकार की ही मृत्यु सम्भव है।

जहां 'स्व' बचा ही नहीं, उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है?

सभी बुद्ध सदियों से एक ही बात कहते रहे हैं:

अपने अहंकार को मार दो, जिससे तुम शाश्वतता को उपलब्ध हो सको। अहंकार को मर जाने दो
तब तुम्हारे लिए कोई भी मृत्यु होगी ही नहीं,
तुम मृत्यु के पार अमर हो जाओगे।

आठवां प्रवचन

गहरे नीले और बैंजली रंगों के पुष्पों की घाटी

सूत्र:

नीनागावा शिंजेमन, जो छंदबद्ध कविता का एक सुन्दर कवि और येन का श्रद्धालु था, उसके अन्दरसुप्रसिद्ध सद्गुरु इनका शिष्य बनने की इच्छा जागृत हुई,

जो उन दिनों नीले बैंजनी फूलों की घाटी मुस्कीनो में डेटोकूजी मठ का सद्गुरु था।

उसे इक्यू द्वारा बुलवाया गया,

और बुद्ध मंदिर के प्रवेशद्वार पर उनके मध्य निम्न संवाद हुआ।

इन- आप कौन हैं?

नीनागावा: मैं बौद्ध धर्म का एक श्रद्धालु उपासक हूं।

इक्यू: आप कहां के हैं?

नीनागावा: आपके ही क्षेत्र का।

इक्यू: ओह! और इन दिनों वहां कैसा क्या हो रहा है?

नीनागावा: कौवे 'कांव-कांव' करते हैं और गौरेया चहचहाती रहती हैं। इक्यू: आप अपने ख्यालों में अभी इस समय हैं कहां?

नीनागावा: नीले बैंजनी फूलों की सुन्दर घाटी में।

इक्यू: क्यों?

नीनागावा: क्योंकि यहां ' मिसकैंथस ' मार्निंग ग्लोरी, सूरजमुखी कुंवारे सुनहरे रंग के सुन्दर काइसनधेमम्स और आस्टर के चमकते फूलों की बहार है।

इक्यू: और जब वे बिदा हो जाएंगे, उसके बाद?

नीनागावा: यह मिफजीनो है-यह शरद ऋतु में चारों ओर खिलने वाले फूलों की घाटी तो रहेगी ही।

इक्यू: फिर घाटी में उन दिनों क्या होता है?

नीनागावा: झरने खिलखिलाते हंसते हुए बहते हैं और तेज हवा, अपने साथ सभी कुछ उड़ा कर ले जाती है। जैसे वह घाटी को बुहार देती है। नीनागावा के ज़ेन सदृश उत्तरों से विस्मयाभिभूत होकर सदगुरु इक्यू ने अपने कक्ष में साथ ले जाकर उसके सामने चाय प्रस्तुत की, और तभी उसके कंठ से आशु कविता के रूप में हाइकू फूट पड़ा।

मैं विविध व्यंजन परोसकर
आपका स्वागत करना चाहता हूं
लेकिन आह! इस झेन क्षेत्र में
मैं आपको 'कुछ नहीं' ही भेंट कर सकता हूं।"

इसे सुनकर आगंतुक ने उत्तर दिया :

"ओ करुणामय महान आत्मा!
मेरा इतना अधिक ख्याल रखते हुए ही

आप सर्वाधिक कमनीय सुन्दर भेंटो में जो अमूल्य भेंट 'कुछ नहीं' दे रहे हैं

वही तो मौलिक शून्यता है।"

बहुत गहरे में उसके उत्तर से संतुष्ट और प्रभावित होकर सद्गुरु ने कहा: मेरे वत्स! तुमने बहुत कुछ सीखा है।

कविता, धर्मशास्त्रों की अपेक्षा, धर्म के कहीं अधिक निकट है, तर्क की अपेक्षा कल्पना कहीं अधिक निकट है।

और वस्तुत: धर्म न यह है और न वह, दोनों के ही पार है।

लेकिन तर्क के द्वारा, धर्म की अनंत शून्यता में डूबना

थोड़ा कठिन है

क्योंकि तर्कशास्त्र इस बारे में सिद्धांतों में अटल है,

उसमें लचीलापन नहीं है, उसके द्वार खुले नहीं हैं, वे बंद हैं। उसमें उससे बाहर जाने के लिए न तो खिड़की हैं और न दरवाजे, वह एक कब के समान है।

कोई भी स्वयं में कैद होकर केवल मर तो सकता है

लेकिन वह जीवंत प्रक्रिया की ओर नहीं बढ़ सकता।

कोई भी उसके द्वारा और अधिक जीवंत नहीं बन सकता।

तर्कशास्त्र एक जिरहबख्तर की भांति है, जिसमें तुम स्वयं बंदी बन जाते हो। कविता, धर्म के कहीं अधिक निकट है,

क्योंकि वह तरल है, उसमें कहीं अधिक लचीलापन और प्रवाह है।

वह धर्म तो नहीं है

लेकिन तुम तर्कशास्त्र की अपेक्षा कहीं अधिक आसानी से उससे बाहर आ सकते हो।

उसमें खिड़की और दरवाजे हैं, एक खुलापन है-

और उनसे होकर ताजी हवा कवि के हृदय की गहराइयों में केंद्र तक पहुंच सकती है।

कविता में जड़ता नहीं है, वह थिर नहीं है, यदि तुम चाहो

तो तुम उससे बाहर हो सकते हो, वह तुम्हें बांधेगी नहीं।

और चूंकि वह कल्पनाशील है,

वह कभी भी अनजाने में अज्ञात से टकरा सकती है।

वह अंधेरे में टटोले जा सकती है- और यह अंधेरे में टटोलने जैसा ही है- और वह टटोले ही जा सकती है, वह खोज किए ही जा सकती है। वह हमेशा नए आयामों में गतिशील होने के लिए तैयार रहती है।

तर्क शास्त्र, विरोधी, अवरोधी और एक हठधर्मिता है।

तर्क शास्त्रियों से अधिक कट्टर व्यक्ति तुम कहीं और नहीं पा सकते। वे कभी नए आयाम के खुलने की बात सुनेंगे ही नहीं।

वे उसकी ओर देखेंगे भी नहीं।

वे केवल इतना ही कहेंगे कि यह सम्भव नहीं है।

वे लोग सोचते हैं कि जो कुछ भी सम्भव है वह पहले ही जाना जा चुका है, वह सब कुछ जो घट सकता था, पहले ही घट चुका है।

वे अज्ञात के प्रति सदैव संदेह ही करते रहते हैं।

कवि का हृदय सदा अज्ञात के प्रेम में डूबा रहता है।

वह किसी नूतन भाव या कल्पना के लिए अंधकार में टटोले जा रहा है- कुछ ऐसी चीज जो मौलिक हो, कुछ ऐसी चीज जिसका स्वाद अनजाना हो, कुछ ऐसी चीज जिसको अभी तक न तो जीया गया हो,

और जिसका न अभी तक अनुभव किया गया हो।

एक कवि टटोलता है

और जब कभी वह अज्ञात से टकरा सकता है।

वह धर्म की मौलिक शून्यता के अतल तल में गिर कर उसकी झलक पा सकता है।

कविता प्रतीकात्मक, और सांकेतिक है, वह विरोधाभासों से भरी होती है। ठीक यही भाषा धर्म की भी है।

वस्तुत: जब काव्यात्मक रूप में किसी प्रतीक का प्रयोग किया जाता है

तो उस बात का कुछ अलग अर्थ होता है

और जब धार्मिक मार्ग में उसका प्रयोग किया जाता है तो उसका अर्थ कुछ और होता है। दोनों प्रतीकों और विरोधाभासों का प्रयोग करते हैं। यही उनका मिलन-बिंदु है।

उनके अर्थ भिन्न हो सकते हैं, लेकिन उनकी विधियों का स्रोत एक ही है।

वे जुड़वां भाइयों जैसे दिखाई देते हैं।

उनमें अन्दर से बहुत बड़ा अंतर है, लेकिन कम से कम आकृति में अपनी सतह पर बाहर से वे धर्म शास्त्र और धर्म की अपेक्षा अधिक समान लगते

और इस समानता के कारण ही

धर्म ने हमेशा अपने को काव्यात्मक रूप से ही अभिव्यक्त किया है:

उपनिषद, वेद, कबीर, मीरा, और ज़ेन कवि

कुछ ज़ेन सदगुरु ने बहुत सुन्दर हाइकू लिखे हैं, इतने अधिक सघन

कि एक विराट काव्यात्मक संसार, एक हाइकू में एक बीज बनकर सिमट जाता है।

कभी वे इतने अधिक साधारण और सामान्य होते हैं

कि तुम तुरंत उनके महत्व को नहीं समझ सकते

लेकिन यदि तुम उन पर विचार करो और उन पर ध्यान करो

तब धीमे धीमे एक छोटा सा हाइकू ही एक द्वार बन जाता है।

कुछ ही दिनों पूर्व मैं बाशो का एक सुप्रसिद्ध हाइकू पड़ रहा था।

एक बहुत बहुत छोटी सी ज़ेन कविता, लेकिन तुम यदि तुम उस पर ध्यान करो, तो अकस्मात् एक द्वार खुल जाता है।

वह हाइकू है:

एक बहुत पुराने तालाब में

एक मेढक उछला
पानी में एक 'छपाक' की ध्वनि हुई।

अब मन में इस चित्र को उभारें
एक बहुत पुराने तालाब में, एक मेढक उछाल भरता है।
पानी में 'छपाक' जैसी ध्वनि होती है और सब कुछ समाप्त हो जाता है।
इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। पूरी स्थिति सघन हो जाती है।
यदि तुम इस पर ध्यान करो,
तो अचानक तुम्हें अनुभव होगा कि एक मौन तुम्हें चारों ओर से घेर लेता है।
कोई चीज तुम्हें अन्दर से बदल देगी।
यह वस्तुगत कला है।
ज़ेन कवि, सूफी रहस्यदर्शी, और हिंदू संत,
यह सभी अपने को काव्यात्मक भाषा के रूप में अभिव्यक्त करते रहे हैं और यदि कभी बुद्ध, महावीर और जीसस, काव्यात्मक भाषा में न भी बोले हों, फिर भी उसमें वहां काव्य है, भले ही वह काव्यात्मक अभिव्यक्ति न हो।

यदि तुम उनके वचनों को सुनो, तो तुम्हें उनके उन शब्दों के नीचे एक विशिष्ट काव्यात्मक गुणात्मकता का अनुभव होगा।

गद्य तो केवल सतह पर है। उसका रूप गद्य का है, लेकिन उसकी आत्मा में काव्य है।
वास्तव में एक व्यक्ति, जो बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ हो, इससे अन्यथा हो ही नहीं सकता।
यदि गद्य में ही बोलना जरूरी हो, तो वह वैसा कर सकता है,
लेकिन वह काव्य की उपेक्षा नहीं कर सकता।
कविता वहां होगी ही, केवल वह सतह के नीचे होगी।
यदि तुम्हारे पास जरा सी थोड़ी भी अंतर्दृष्टि है, तो तुम देख सकोगे:
वह वहां जीवंत बना धड़क रहा है।
धर्म और कविता की भाषा एक जैसी ही होती हैं
उनके शब्द भिन्न हो सकते हैं लेकिन कहीं न कहीं वे एक ही बिंदु पर मिलते हैं।

और वह मिलन-बिंदु ही इस बोध कथा का विषय है।
एक कवि एक ज़ेन सद्गुरु से भेंट करने आया।
वह जरूर ही एक महान-कवि रहा होगा,
क्योंकि केवल उच्चकोटि का महानतम कवि ही
एक रहस्यदर्शी से मिलने का आधार खोज सकता है।

प्रत्येक कवि ऐसा नहीं करेगा, क्योंकि जहां कविता अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचती है, वहां रहस्यवाद की पहली पगध्वनि सुनाई देती है।

जहां कविता का अंत होकर वह अपने चरमोत्कर्ष पर,

अपने गौरीशंकर शिखर पर पहुंचती है, वह हिमालय बन जाती है, और वही, रहस्य के मंदिर तक जाने का पहला कदम होता है।

कविता का सर्वोच्च शिखर, रहस्यवाद का निम्नतम तल है

और वही उन दोनों का मिलन बिंदु है।

इसलिए केवल बहुत महान कवि ही उस ऊंचाई को प्राप्त कर सकते हैं, जहां एक ज़ेन सद्गुरु उससे कह सकेगा:

मेरे वत्स! तुमने तो बहुत कुछ सीख लिया है।

अब हम इस बोध कथा में प्रवेश करेंगे।

नीनागावा शिंजेमन जो छंदबद्ध कविता का एक सुन्दर कवि,

और ज़ेन का श्रद्धालु था, उसके अन्दर

सुप्रसिद्ध सद्गुरु इक्यू का शिष्य बनने की इच्छा जागत हुई,

जो उन दिनों नीले बैंजनी फूलों की घाटी मुस्कीनो में डेटोकूजी मठ का सद्गुरु था।

मेरा सदा से ही यह अनुभव रहा है

कि जितने भी महानतम कवि हैं, वे धर्म से दूर नहीं रह सकते,

उन्हें उसकी ओर आना ही होता है,

क्योंकि कविता एक ऐसे बिंदु तक ले जाती है

कि उसी के पार धर्म होता है।

यदि तुम निरंतर एक कवि बने ही रहते हो, तो तुम धार्मिक बन जाओगे। यदि तुमने अंतिम सीमा तक यात्रा नहीं की है,

तो तुम केवल एक कवि ही बनकर रह जाओगे।

इसलिए बहुत से छोटे-मोटे कवि, केवल कवि बनकर ही रह जाते हैं

महान कवियों का धर्म की ओर गतिशील होना एक बाध्यता है।

क्योंकि जब वह विशिष्ट बिंदु आ जाता है,

जहां कविता का अंत होता है और धर्म का प्रारम्भ

तो तुम उससे छुटकारा नहीं पा सकते।

यदि तुम उस सीमा तक उनका अनुसरण करते हो, तो उससे आगे तुम कहां जाओगे?

उसी क्षण कविता स्वयं धर्म में रूपांतरित हो जाती है,

किसी को भी उसका अनुसरण करना ही होता है।

यही चीज एक तर्कशास्त्री और एक वैज्ञानिक के साथ भी घटती है, लेकिन कुछ अलग तरह से।

एक वैज्ञानिक के साथ भी, यदि वह दृढ़ता से अपने कार्य में निरंतर जुटा- ही रहता है, तो एक क्षण ऐसा आता है,

जहां वह यह अनुभव करता है वह एक ऐसी अंधी तंग गली में पहुंच गया है, जिसके आगे मार्ग बंद हो गया है।

और वहां एक अतल शून्यता भरी खाई है, और सभी रास्ते बंद हो गए हैं। कवि के साथ यह अनुभव अलग तरह का होता है।

वहां उसके सामने मार्ग तो होता है, लेकिन वह मार्ग कविता की ओर न जाने का होता है।

उसका मार्ग अपने आप स्वत: ही धर्म के मार्ग में बदल जाता है।

लेकिन एक तर्कशास्त्री, एक वैज्ञानिक अथवा एक दार्शनिक के लिए वह अलग तरह से घटता है।

वह अंधी तंग गली के उस छोर पर आ जाता है, जहां मार्ग समाप्त हो जाता है। वह कहीं आगे जाता ही नहीं, उसके आगे कोई रास्ता होता ही नहीं, वहां केवल एक ढालू चट्टान और गहरी खाई होती है।

अंतिम दिनों में ऐसा ही अल्वर्ट आइन्सटीन के साथ घटा।

ऐसा केवल महान लोगों को ही घट सकता है।

कम बुद्धि वाले, उसी सड़क के उस स्थान पर कभी नहीं पहुंचते

जहां रास्ता तंग होता हुआ बंद हो जाता है, और वे वहीं उसे सड़क पर ही, यह विश्वास करते हुए मर जाते हैं कि वह सड़क उन्हें कहीं ले जा रही थी। रूपांतरण तो महान लोगों का ही होता है।

अल्वर्ट आइन्सटीन को अपने जीवन के अंतिम दिनों में,

यह अनुभव होना शुरू हो गया था, कि उनका पूरा जीवन यों ही व्यर्थ बीत गया।

किसी ने उनसे पूछा

यदि आपका जन्म फिर से हो, तो आप क्या बनना पसंद करेंगे?

उन्होंने उत्तर दिया: मैं फिर से कभी भी एक वैज्ञानिक न बनकर

एक नल का मिस्त्री बनना अधिक पसंद करूंगा,

लेकिन कभी भी वैज्ञानिक नहीं। इसने सब कुछ समाप्त कर दिया।

अपने अंतिम दिनों में उन्होंने परमात्मा के बारे में अथवा जीवन की उस अंतिम सर्वोच्च स्थिति, जो सभी रहस्यों का एक रहस्य है के बारे में सोचना

शुरू कर दिया था,

और कहा था: मैं इस अस्तित्व के रहस्य के जितने अधिक अन्दर

गहराई में गया, मैंने अधिक से अधिक यह अनुभव किया

कि यह रहस्य शाश्वत और अनंत है।

मैंने जितना अधिक उसे जाना

मैं अपनी जानकारी अथवा ज्ञान के बारे में उतना ही अनिश्चित बनता गया। यह रहस्य इतना अधिक विराट है, कि वह कभी भी चुकता नहीं, बढ़ता ही जाता है।

यही धारणा, परमात्मा के भी बारे में है:

उसका रहस्य इतना अधिक विराट है, कि उसका विकास होना कभी रुकता नहीं

तुम उसे जितना भी जानते हो, जितना भी जान सकते हो,

फिर भी वह अज्ञात ही बना रहता है।

तुम जितना अधिक उसके अन्दर जाते हो, गहरे और गहरे उतरते ही चले जाते हो,

और तुम फिर भी यह पाते हो, कि तुम परिधि पर ही घूम रहे हो।

तुम उस रहस्य सागर में डुबकी लगाते हो, लेकिन तुम उसकी थाह नहीं पाते।

तुम ठीक उस रहस्य के केंद्र में कभी पहुंच ही नहीं सकते।

वह क्षण कभी आता ही नहीं, जब तुम यह कह सकी: मैंने सब कुछ जान लिया है।

सिवाय मूर्ख व्यक्तियों के किसी भी अन्य व्यक्ति ने यह कहा ही नहीं। एक समझदार व्यक्ति अपने को अधिक से अधिक अज्ञानी होने का अनुभव करना शुरू कर देता है।

केवल मूर्ख लोग ही इधर-उधर से कुछ चीजें इकट्ठी कर लेते ऐं, और यह सोचना शुरू कर देते हैं, कि वे जानते हैं।

केवल मूर्ख लोग ही ज्ञानी होते हैं, जो जानने का दावा करते हैं। वैज्ञानिक खोज में भी

एक क्षण ऐसा आता है, जब मार्ग कहीं नहीं ले जाता,

तभी अचानक वहां एक छलांग लगती है।

एक कवि, धर्म में बिना किसी छलांग के प्रविष्ट हो सकता है,

उसे साधारण रूप से सरकते हुए धर्म के मार्ग पर आ जाना है

क्योंकि दोनों रास्ते एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

लेकिन एक वैज्ञानिक को धर्म के पथ पर आने के लिए एक छलांग भरनी होती है।

तीन सौ साठ डिग्री तक पूरी तरह घूमना होता है

उसे पूरी तरह ऊपर से नीचे, अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर आना होता है। लेकिन एक कवि, एक सर्प की भांति अपनी केंचुल छोड़कर

सरकते हुए बाहर निकल सकता है।

मैं इसी वजह से यह कहता हूं कि काव्य, धर्म के कहीं अधिक निकट है। यह व्यक्ति नीनागावा शिंजेमन जरूर ही एक बहुत महान कवि रहा होगा, इसीलिए ज़ेन अथवा ध्यान में उसकी उत्सुकता जागृत हुई।

यदि तुम्हारे काव्य का सृजन तुम्हें ध्यान की ओर नहीं ले जाता, तो वह काव्य है ही नहीं।

अधिक से अधिक वह शब्दों का चतुरता से किया गया एक संयोजन है वह एक तुकबंदी है, लेकिन वहां काव्य की आत्मा नहीं है।

तुम एक अच्छे भाषाशास्त्री, एक अच्छे व्याकरण, छंद आदि के जानकार और शब्दों को छंद में ढालने वाले एक ऐसे कवि हो सकते हो-जो काव्यशास्त्र के सभी नियमों और सिद्धांतों को जानता हो, लेकिन तुम एक कवि नहीं हो सकते-

क्योंकि अपनी गहराई में स्थित केंद्र पर कविता, ध्यानपूर्ण होती है।

एक कवि, मात्र शब्दों की माला गूथने वाला एक माली ही नहीं होता;

उसके पास कल्पना के साथ एक अंतर्दृष्टि होती है।

वह कैवल शब्दों को गीत, छंद में संयोजित करने वाला ही नहीं होता,

कुछ विशिष्ट क्षणों में कविता कहीं अज्ञात से उतरती है-

वे क्षण ध्यान के ही होते हैं।

वास्तव में जब कवि वहां नहीं होता, कविता तभी घटती है।

जब कवि पूरी तरह अनुपस्थित हो जाता है

तभी अकस्मात् बिना मांगे कहीं अज्ञात से कुछ बरस कर उसे आप्लावित कर
देता है तभी अचानक उस अज्ञात की जैसे कोई किरण उसके अन्दर प्रविष्ट हो जाती है।
उसके शरीर रूपी घर को, जैसे एक ताजा हवा का झोंका
एक ताजगी और सुवास से भर देता है।
अब उसे ताजी हवा के इसी स्पंदनशील झोंके का भाषा में जैसे अनुवाद भर करना होता है।
वह सही अर्थों में शब्दों की माला गूंथने वाला माली न होकर
अज्ञात से उतरे अनजान अनुभव का अपनी भाषा में अनुवाद मात्र करता है। एक कवि, एक अनुवादक होता है,
उसके आंतरिक अस्तित्व में जो कुछ घटता है,
वह उसी का अपने शब्दों में केवल अनुवाद करता है।
यह आंतरिक अनुभूति संवेदना जैसा अधिक और विचार जैसा कम होता है। यह बुद्धिगत बहुत कम, और अधिक से अधिक हार्दिक होता है।

एक कवि प्रामाणिक रूप से बहुत साहसी होता है,
हृदय से जीने के लिए बहुत बड़ा साहस चाहिए।
साहस के लिए अंग्रेजी का शब्द Courage बहुत दिलचस्प है।
यह लैटिन भाषा के मूल Cou से आता है, जिसका अर्थ होता है-हृदय। इसलिए साहसी होने का अर्थ है, हृदय के साथ रहना।
दुर्बल मनुष्य, केवल दुर्बल मनुष्य ही बुद्धि के साथ जीते हैं,
भयभीत बने, वे अपने चारों ओर तर्कजाल का एक सुरक्षा कवच निर्मित कर लेते हैं।
वे डरकर अपने हृदय के सारे खिड़की-दरवाजे बंद कर लेते हैं,
वे अपने को धर्म शास्त्रों, धारणाओं, शब्दों और सिद्धांतों की ओट में छिपा लेते है।
हृदय का मार्ग ही साहस का मार्ग है।
यह असुरक्षा में जीना है,
यह प्रेम और श्रद्धा में जीना है,
यह अज्ञात की ओर आगे बढ़ना है,
और यह अतीत को छोड़ते हुए भविष्य को होने की अनुमति देना है।
साहस का अर्थ है खतरनाक रास्तों की ओर बढ़ना,
जीवन बहुत खतरों से भरा है और केवल कायर ही खतरों से दूर रह सकते
लेकिन तब, वे पहले ही से मरे हुए हैं।
एक व्यक्ति, जो जीवंत है, वास्तव में जीवित रहते हुए जीवन स्फूति से भरा हुआ है।
वह हमेशा अज्ञात की ओर गतिशील होता ही है।
उसमें खतरा होता है, लेकिन वह जोखिम उठाएगा ही।

हृदय हमेशा जोखिम उठाने को तैयार रहता है,
हृदय एक जुआरी जैसा होता है, जब कि मन व्यापारी होता है।

मन अथवा बुद्धि हमेशा हिसाब किताब जोड़ती है, वह चालाक होती है। हृदय कोई हिसाब-किताब नहीं करता।

अंग्रेजी का यह शब्द Courage बहुत सुन्दर और दिलचस्प है।

इसका अर्थ है हृदय के द्वारा जीना:

एक कवि हृदय के द्वारा ही जीता है।

और धीमे- धीमे हृदय ही में वह अज्ञात की पगध्वनि सुनना शुरू कर देता है। बुद्धि उस ध्वनि को नहीं सुन सकती, वह अज्ञात से बहुत-बहुत दूर होती है। मन या बुद्धि, ज्ञात से, जानकारी से भरी होती है।

तुम्हारा मन है क्या? वह, वही सब कुछ है जो तुम जानते हो।

वह अतीत है तुम्हारा, जो बीत चुका, जो मुर्दा है।

मन और कुछ भी नहीं बल्कि इकट्ठी हुई स्मृतियां और बीत जाने वाला अतीत है। हृदय है भविष्य, हृदय है हमेशा आशा से आप्लावित।

हृदय हमेशा भविष्य में ही कहीं होता है।

मन सोचता है अतीत के बारे में और हृदय स्वप्न देखता है भविष्य के।

और मैं तुमसे कहता हूं

कि अतीत की अपेक्षा, भविष्य कहीं अधिक वर्तमान के निकट है।

इसी कारण मैं कहता हूं कि एक कवि, धर्म के कहीं अधिक निकट है।

दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, अस्तित्व को जानने का सैद्धांतिक दर्शन, धर्मशास्त्र और विज्ञान यह सभी अतीत और ज्ञात से सम्बंधित हैं,

काव्य, संगीत, नृत्य, कला-और सभी कलाएं भविष्य की सम्पत्ति हैं।

धर्म, वर्तमान की सम्पत्ति है, और मैं तुमसे कहता हूं

कि अतीत की तुलना में भविष्य वर्तमान के कहीं अधिक निकट है,

क्योंकि अतीत तो पहले ही जा चुका। भविष्य को अभी आना है।

भविष्य को अभी भी प्रकट होना है।

भविष्य में अभी भी सम्भावना है, कि वह आएगा, वह आ ही रहा है। प्रत्येक क्षण वह वर्तमान बनता जा रहा है।

प्रत्येक क्षण भविष्य ही वर्तमान बनता जा रहा है,

और वर्तमान अतीत होता जा रहा है।

अतीत में कोई सम्भावना नहीं है, उसका उपयोग किया जा चुका।

तुम पहले ही उससे आगे बढ़ चुके-वह चुक गया।

वह अब एक मुर्दा चीज की भांति है, वह एक कब है।

भविष्य है एक बीज की भांति, वह आ रहा है, हमेशा उसमें से कुछ आता ही है

और वह हमेशा वर्तमान से मिलता भी है।

तुम सदैव गतिशील रहते हो।

वर्तमान और कुछ भी नहीं, बल्कि वह भविष्य की ओर गतिशीलता है। वह पहले ही से उठाया हुआ वह कदम है, जो तुम ले चुके हो,

और वह भविष्य बनने जा रहा है,

कविता का सम्बन्ध है, सम्भावनाओं, आशा और सपनों के साथ है,

वह भी निकट से निकटतम।

यह व्यक्ति, नीनागावा जरूर ही एक महान कवि रहा होगा।

मैं यह क्यों कह रहा हूं कि उसे एक महान कवि होना ही चाहिए?

मैंने उसकी कोई कविता नहीं पड़ी, मैं यह भी नहीं जानता कि उसने लिखा क्या है?

लेकिन मैं यह भी कहता हूं कि उसे एक महान कवि जरूर होना ही चाहिए क्योंकि ज़ेन के प्रति उसकी उत्सुकता जागृत हुई,

और इतना ही नहीं

उसमें, सुप्रसिद्ध सद्गुरु इक्यू का शिष्य बनने की चाह उत्पन्न हुई।

ज़ेन के प्रति उत्सुक होना ही पर्याप्त नहीं है

जब तक कि तुम एक शिष्य न बनो।

धर्म में दिलचस्पी लेना ही पर्याप्त नहीं है- यह अच्छा है, लेकिन यह बहुत दूर तक नहीं ले जाता।

दिलचस्पी एक कौतूहल मात्र बन कर रह जाती है,

दिलचस्पी केवल मानसिक ही बनी रहती है,

जब तक कि तुम प्रतिबद्ध होकर एक छलांग न लगाओ,

जब तक कि तुम एक शिष्य न बनो।

शिष्य बनना एक बहुत बड़ा निर्णय है,

यह कोई साधारण निर्णय नहीं है

यह बहुत कठिन है, लगभग असम्भव निर्णय है।

मैं यह सदा से कहता रहा हूं कि एक शिष्य बनना सबसे अधिक असम्भव क्रांति है।

क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे पर कैसे श्रद्धा कर सकता है?

कोई भी व्यक्ति कैसे अपना जीवन किसी दूसरे व्यक्ति को सौंप सकता है? यह सबसे अधिक असम्भव क्रांति है, लेकिन यह घटती है।

और जब यह घटती है तो बहुत सुन्दर होती है।

इसके जैसा यहां अन्य कुछ है भी नहीं।

लेकिन केवल वे ही लोग जो बहुत साहसी होते हैं, लगभग जीवट साहस की प्रतिमूर्ति,

केवल वे ही लोग आगे बढ़कर कदम उठा सकते हैं।

यह कायरों के लिए नहीं है

यह बुद्धि प्रधान लोगों के बस की बात नहीं है,

यह उन्हीं लोगों के लिए है, जो हृदय में जीते हैं,

यह उनके लिए है, जिनमें साहस है, जो जोखिम उठा सकते हैं।

यह अभी तक खेले गए खेलों में सबसे बड़ा जुआ है,

क्योंकि तुम अपना पूरा जीवन दांव पर लगाते हो।

तुम अपने आपको किसी दूसरे व्यक्ति को सौंपते हो,

जब कि तुम नहीं जानते कि वह है कौन? तुम उसे जान भी नहीं सकते। तुम कुछ विशिष्ट चीजों का अनुभव करते हो,

लेकिन तुम सद्गुरु के बारे में कभी भी निश्चित नहीं हो सकते।

हमेशा एक संदेह बना ही रहता है तुम्हें

इस संदेह के बावजूद भी, एक व्यक्ति को छलांग लगानी ही पड़ती है। संदेह की संतुष्टि नहीं हो सकती। नहीं।

तुम उसे छिपा सकते हो, लेकिन तुम संदेह करने वाले भाग को समझा नहीं सकते।

तुम उसे कैसे आश्वस्त कर सकते हो?

तुम्हें सद्गुरु के साथ उसके सान्निध्य में रहना होगा,

केवल तभी संदेह मिट सकेगा। इससे पहले ऐसा होना सम्भव ही नहीं है। केवल अनुभव ही उसके मिटने में सहायक बनता है।

इसलिए तुम उसे कैसे आश्वस्त कर सकते हो?

मन हमेशा हिचकता है।

लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि वे हिचक रहे है,

वे पचास प्रतिशत पक्ष में और पचास प्रतिशत विरोध में हैं।

उन्हें क्या करना चाहिए? क्या उन्हें कुछ प्रतीक्षा करनी चाहिए? यदि वे प्रतीक्षा करते हैं, तो वे हमेशा प्रतीक्षा ही करते रहेंगे,

क्योंकि यदि वे यह सोचते हैं कि वे तभी छलांग लगाएंगे, जब मन सौ प्रतिशत निश्चित और आश्वस्त हो जाएगा,

तो वे लोग कभी भी ऐसा निर्णय लेंगे ही नहीं।

क्योंकि मन कभी भी किसी भी चीज के बारे में सौ प्रतिशत

आश्वस्त हो ही नहीं सकता-मन का स्वभाव ही ऐसा है।

वह हमेशा टुकड़ों में बंटा हुआ खण्डित ही होता है, वह कभी भी समग्र, अथवा अखण्ड हो ही नहीं सकता।

हृदय और मन के मध्य यही अंतर है।

हृदय हमेशा पूर्ण और अखण्ड होता है और मन हमेशा विभाजित। मन ही तुम्हारे अस्तित्व को विभाजित करता है।

हृदय तुम्हारे अस्तित्व का अविभाजित भाग है।

शिष्यत्व हृदय से होता है।

मन, मनोरंजन और सैर सपाटे की ही बातें किए चले जाता है, और इस संदेह तथा मन की चटर-पटर के बावजूद भी

एक व्यक्ति छलांग लगाता है।

मैं कहता हूं कि इस सभी के बावजूद छलांग लगाना ही केवल मात्र मार्ग है तुम सामान्य रूप से मन की बात सुनते नहीं, तुम प्रामाणिक रूप से मन के अधीन बने गतिशील होते हो।

हृदय तक पहुंची और उससे पूछो।

शिष्य बनना, व्यक्ति के प्रेम में पड़ने जैसा है,

यह किसी व्यापारिक साझेदारी के समान नहीं है, यह कोई मोल-तोल का सौदा नहीं है।

तुम प्रामाणिक रूप से अपने को सौंपते हो, समर्पित करते हो,

बिना यह जाने हुए कि तुम्हें कुछ भी घटने जा रहा है अथवा नहीं,

क्या तुम्हें अपने समर्पण के प्रतिदान में कुछ मिलेगा अथवा नहीं?

तुम नहीं जानते

तुम केवल अपने को सौंपते हो,

इसीलिए मैं इसे सबसे बड़ा साहस कहता हूं।

उसकी केवल दिलचस्पी मात्र ही नहीं थी ज़ेन में, वह एक श्रद्धालु था। वह उससे प्रेम करता था।

दिलचस्पी, कौतूहल और पूछताछ यह मन की होती है।

और श्रद्धा और भक्ति जन्मती है हृदय में।

....उसमें एक शिष्य बनने की इच्छा जागृत हुई।

एक शिष्य बनना क्या होता है? आखिर इसका क्या अर्थ है?

इसका अर्थ है: मैंने सभी प्रयास कर लिए और असफल रहा,

मैंने उसकी बहुत तलाश की, लेकिन उसे पा न सका,

मेंने वह सभी कुछ कर लिया, जो मैं कर सकता था

और मैं जैसे का तैसा रहा। मेरे अन्दर कोई भी रूपांतरण नहीं हुआ।

इसलिए मैं अब समर्पण करता हूं।

अब सद्गुरु ही वास्तविक रूप से निर्णय करेगा, मैं नहीं।

मैं अब एक छाया की भांति पूरी तरह से उसका अनुसरण करूंगा।

वह जो कुछ भी करने को कहेगा, मैं उसे करूंगा।

मैं उससे प्रमाण नहीं मांगता।

मैं यह भी नहीं कहूंगा कि पहले वह मुझे समझ बुझा कर आश्वस्त करे। मैं तर्क-वितर्क नहीं करूंगा, मैं परिपूर्ण श्रद्धा के साथ पूरी तरह उसका अनुसरण करूंगा।

मन फिर भी इस बारे में प्रश्न उठा सकता है:

'यह तुम कर क्या रहे हो? ऐसा करना ठीक नहीं है।

यह तुम्हें कहीं भी नहीं ले जाएगा, यह मूर्खतापूर्ण है, यह पागलपन है।' मन इसी तरह बहुत कुछ कहे चला जाएगा,

लेकिन एक बार जब तुम शिष्य बनने का निर्णय ले लो,

फिर तुम मन की सुनो ही मत, तुम सद्गुरु को सुनो।

अभी तक तुम अपने मन और अहंकार की बात सुनते आए हो,

अब आगे से तुम सद्गुरु को ही सुनोगे। अब सद्गुरु ही तुम्हारा मन होगा। शिष्य बनने का यही अर्थ होता है:

तुम अपने आपको, अपने 'मैं' को उठाकर एक तरफ रख दोगे,
और सद्गुरु को अनुमति दोगे कि वह तुम्हारे अस्तित्व के
गहरे केंद्र पर पहुंच सके।
तुम अब बचे ही नहीं। अब केवल सद्गुरु ही है।
शिष्य बनने का अर्थ है: एक छाया बनना,
अपने अहंकार को पूरी तरह एक किनारे अलग रख देना।

उसे इक्यू द्वारा बुलवाया गया
और बुद्ध मंदिर के प्रवेश द्वार पर उनके बीच निस संवाद हुआ। ज़ेन बोध कथाएं प्रामाणिक रूप से अत्यंत ही अर्थपूर्ण हैं:

उनमें एक शब्द भी अनावश्यक नहीं है।
.. .मंदिर के प्रवेशद्वार पर उनके मध्य निस संवाद हुआ।
पहला शब्द है-' संवाद। '
संवाद, केवल बातचीत नहीं है, वह चर्चा-परिचर्चा भी नहीं है, वह तर्क-वितर्क भी नहीं है, वह कोई वाद-विवाद भी नहीं है। संवाद का गुण ही कुछ और होता है।
संवाद तब होता है-जब दो आत्माओं का प्रेम पूर्ण मिलन होता है। वे तर्क-वितर्क और वाद-विवाद करने का प्रयास नहीं करते, बस पूरी तरह सहानुभूति पूर्ण व्यवहार से,
दोनों एक दूसरे को समझने का प्रयास करते हैं।
संवाद का अर्थ है, एक-दूसरे के अस्तित्व में सहभागिता करना:
दो मित्र अथवा दो प्रेमी जब अपने अन्दर बिना किसी विरोध के यह सिद्ध करने का प्रयास किए बिना कि तुम ठीक हो और दूसरा गलत-जब ऐसे दो के बीच बातचीत होती है, तभी घटता है संवाद।
जब तुम लोगों से बातचीत करते हुए
सूक्ष्मतम रूप से अपने आपको ठीक सिद्ध करने का प्रयास किए जाओ,
और दूसरा अपने आप को ठीक सिद्ध करने का प्रयास करे
तब उनके मध्य संवाद होना सम्भव ही नहीं है।
संवाद का अर्थ होता है दूसरे व्यक्ति को खुले मन से समझने का प्रयास करना।

संवाद एक दुर्लभ घटना है और यह बहुत सुन्दर होता है,
क्योंकि दोनों ही संवाद के द्वारा समृद्ध होते हैं।
वास्तव में जब तुम बातचीत करते हो, तो वह एक चर्चा-परिचर्चा
अथवा एक वाद-विवाद ही हो सकता है,
दोनों एक-दूसरे के विरोध में एक शाब्दिक संघर्ष द्वारा,
यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि मैं ठीक हूं और तुम गलत हो। संवाद, पूरी तरह इससे भिन्न होता है,

संवाद एक-दूसरे के विरोध में दिखावा न होकर

एक-दूसरे का हाथ थामकर, साथ-साथ सत्य की ओर

एक-दूसरे की सहायता करते हुए मार्ग खोजकर आगे बढ़ना होता है। एक-दूसरे के साथ-साथ सहयोग करना होता है,

वह सत्य को पाने का एक लयबद्ध प्रयास होता है।

वह किसी भी तरह से कोई संघर्ष होता ही नहीं।

वह सत्य को पाने के लिए मित्रतापूर्वक साथ-साथ गतिशील होना होता है, सत्य की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे की सहायता करना होता है।

किसी के भी पास पहले ही से सत्य नहीं होता,

लेकिन जब दो व्यक्ति साथ-साथ सत्य के बारे में जांच और खोज प्रारम्भ करते हैं,

वो, वही संवाद होता है, जिससे दोनों ही समृद्ध होते हैं।

और जब सत्य मिलता है, तो वह न तो मेरा होता है और न तुम्हारा ही। जब सत्य प्राप्त होता है

तो वह उन दोनों से कहीं अधिक विराट होता है, जिन्होंने उसे खोजने में एक दूसरे का साथ दिया था,

वह दोनों को ही चारों ओर से आच्छादित कर लेता है,

और दोनों ही समृद्ध हो जाते हैं।

संवाद से ही गुरु और शिष्य के मध्य सम्बन्ध जुड़ने की शुरुआत होती है, और इसे मंदिर के प्रवेश द्वार पर ही घटना चाहिए

अन्यथा मंदिर के अन्दर जाना सम्भव नहीं है।

इसीलिए बोध कथा में महत्वपूर्ण शब्द है-' प्रवेश द्वार पर '

इस संवाद को प्रवेश द्वार पर ही होना चाहिए था।

संवाद घटना ही प्रमुख बात है, यदि यह नहीं घटता

फिर वहां शिष्य बनने की कोई सम्भावना ही नहीं है।

तब इक्यू ने प्रवेश द्वार से ही उसे बिदा कर दिया होता

क्योंकि फिर वहां उस व्यक्ति को मंदिर के अन्दर आमंत्रित करने की

कोई आवश्यकता ही नहीं होती, वह अर्थहीन होता।

इसलिए प्रवेशद्वार की सीढ़ियों पर बैठे हुए ही संवाद घटित हुआ।

इक्यू ने उस व्यक्ति को समझने का प्रयास किया।

उसे इस व्यक्ति की सम्भावनाओं, क्षमताओं और

उसे अनुभव करते हुए समझना था।

उसकी खोज कितनी गहन है? उसकी खोज की प्रवृत्ति कितनी गहरी है? कहीं वह केवल एक कौतूहल मात्र ही तो नहीं है?

कहीं वास्तव में वह श्रद्धालु भक्त न होकर केवल एक दार्शनिक ही तो नहीं है?

इक्यू उसके अस्तित्व को अनुभव कर समझने का प्रयास कर रहा था,

और नीनागावा ने कोई भी प्रतिरोध न करते हुए इसमें उसे सहयोग दिया। वह भयभीत नहीं हुआ, उसने अपना बचाव करने की कोशिश नहीं की, उसने ऐसा कुछ बनने और दिखाने का बहाना नहीं बनाया,

जो वह वास्तव में नहीं था।

उसने इस व्यक्ति के सम्मुख अपना हृदय पूरी तरह खोल कर रख दिया। उसने इस व्यक्ति को अपने अन्दर प्रवेश करनी की अनुमति दी

जिससे वह उसे अनुभव कर समझ सके,

क्योंकि इसी तरह से एक सद्गुरु को यह तय करना होता है

कि तुम केवल संयोगवश ही यहां आए हो

अथवा तुम प्रामाणिक रूप से यहां आए हो।

यह आना संयोगवश भी हो सकता है

किसी व्यक्ति ने तुम्हें इस बाबत बताया था और तुम इस सड़क से होकर गुजर रहे थे.....

इसलिए तुमने सोचा कि अभी तो फिल्म देखने जाने के लिए काफी समय बचा है,

चलो, चलकर यहां भी देख लें, कि यह सद्गुरु कौन और कैसे हैं?

यदि यह आना संयोगवश है

तो अच्छा है इस सम्बन्ध का अंत प्रवेश द्वार पर ही कर दिया जाए

क्योंकि यह कहीं भी आगे नहीं ले जाएगा।

यदि मन तार्किक है,

यदि मन अपने ही विचारों से पूरी तरह भरा हुआ है

तब तुम एक छात्र तो बन सकते हो, लेकिन एक शिष्य नहीं।

और एक सद्गुरु एक शिक्षक नहीं होता,

वह छात्रों की खोज नहीं करता, वह कोई स्कूल नहीं चला रहा है।

वह हृदय के एक मंदिर का सृजन कर रहा है, वह एक तीर्थ बना रहा है, वह इस पृथ्वी पर एक पावन पवित्र ज्ञान-गंगा का अवतरण कर रहा है। इक्यू को उसे अनुभव करना था, और उसने बहुत प्रामाणिकता से उसका अनुभव कर, उसे समझा,

और उस व्यक्ति ने बहुत साहस से यह सिद्ध किया

कि वह प्रामाणिक है।

उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करते हुए सद्गुरु के सभी प्रश्नों के उत्तर दिए।

सद्गुरु ने उससे जो कुछ भी पूछा, उसने समग्रता से उसका पूरा उत्तर दिया। ये उत्तर बहुत सुन्दर हैं, अब हम उनकी ओर धीमे- धीमे यात्रा करेंगे।

उसे इक्यू द्वारा बुलवाया गया

और मंदिर के प्रवेशद्वार पर उनके मध्य निम्न संवाद घटित हुआ। इक्यू ने पूछा: आप कौन हैं?

यही पूरी खोज बनने जा रही थी।

'मैं कौन हूं?' धर्म, इस बारे में ही की गई सारी खोज है।

यदि तुम पहले ही से यह जानते हो कि तुम कौन हो?

तो फिर फिक्र करने की कोई जरूरत ही नहीं है।

अथवा यदि तुमने अपने अज्ञान में अपने नाम और रूप के साथ

बहुत अधिक पहचान बना ली है, यदि तुम नाम और आकृति में ही डूबे हो, तब भी तुम अभी इतने विकसित नहीं हुए हो

कि इक्यू जैसा सद्गुरु तुम्हें स्वीकार कर ले।

तब तुम्हें ऐसे किसी छोटे सद्गुरु और वास्तव में किसी शिक्षक के पास जाना चाहिए जो तुम्हें शिक्षा दे सके, कि तुम न तो नाम हो,

और न हो रूप, और तुम एक शरीर भी नहीं हो, और न यह हो और न वह, और वह तुम्हारे अन्दर एक ऐसी दार्शनिक भूमि तैयार कर दे

जिसमें एक सद्गुरु बीज बो सके।

तब तुम्हें किसी शिक्षक के पास जाने की जरूरत है।

इसलिए जो पहली बात इक्यू ने पूछी, वह यही थी-'तुम कौन हो?'

नीनागावा ने उत्तर दिया: बौद्ध धर्म का एक श्रद्धालु।

यह अत्यंत ही विनम्र और बिना कोई दावा करने वाला उत्तर है।

उसने अपना नाम नहीं बतलाया, कि मैं नीनागावा हूं-आप नहीं जानते मुझे?

क्या आपने अभी तक देश के सबसे बड़े कवि के बारे में कुछ भी नहीं सुना? क्या आप अखबार नहीं पढ़ते

आप कितना व्यर्थ का प्रश्न पूछ रहे हैं : तुम कौन हो?

इस देश में प्रत्येक व्यक्ति मुझे जानता है, और यहां तक कि सम्राट भी। कवि बहुत-बहुत अधिक अहंकारी व्यक्ति होते हैं

कवि, लेखक, उपन्यासकार-इन सभी का बहुत अधिक प्रगाढ़ अहंकार होता है।

तुम साहित्यकारों से अधिक अहंकारी कोई दूसरा मनुष्य नहीं खोज सकते। उनके साथ संवाद होना बहुत-बहुत कठिन होता है

वे पहले ही से जानते हैं।

वे तुम्हें सिखा सकते हैं, लेकिन उन्हें कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता।

केवल इसलिए कि कुछ पंक्तियों को छंदबद्ध कर वे एक कविता बना सकते

केवल इसलिए कि वे एक लेख कहानी या उपन्यास लिख सकते हैं,

वे यह शिद्दत से अनुभव करने लगते हैं कि हां, वे भी कुछ हैं।

वास्तव में एक प्रामाणिक कवि के पास कोई भी अहंकार नहीं होगा-

यदि किसी कवि का अहंकार बहुत अधिक प्रगाढ़ है, तो वह कवि है ही नहीं।

क्योंकि उसने अपनी कविता से ही कुछ भी नहीं सीखा।

उसने उस मौलिक सत्य को भी नहीं समझा,

कि कविता केवल तभी उतरती है, जब वह उपस्थित नहीं रहता,

इसलिए यदि उसे बाध्य होकर कविता लिखनी पड़ी होगी,

तो वह कविता एक यांत्रिक कौशल हो सकती है, वह कवि एक यांत्रिक हो सकता है,

लेकिन वह एक कवि नहीं है।

वह सुन्दर शब्दों का एक लयबद्ध संयोजन करने में समर्थ हो सकता है,

वह काव्यशास्त्र के सभी नियमों का अनुसरण करने में कुशल हो सकता है, लेकिन वह एक कवि नहीं है।

तकनीकी रूप से वह ठीक और कुशल हो सकता है

लेकिन अन्दर अपनी गहराई में यदि अहंकार अभी भी वहां है,

तो वह यह जानता ही नहीं कि कविता क्या होती है,

क्योंकि कविता तो केवल तभी घटती है, जब तुम वहां मौजूद ही नहीं होते।

वास्तव में एक महान कवि कोई भी दावा नहीं करेगा,

कि वह उस कविता का सृजनहार है।

वह यह दावा कैसे कर सकता है, जब उसके घटने के समय वह उपस्थित ही नहीं था वहां।

अंग्रेजी साहित्य के महान कवियों में से एक कवि कॉलरेज के साथ ऐसा हुआ कि जब वह मरा, तो अपने पीछे लगभग चालीस हजार अधूरी कविताएं छोड़ गया।

वह एक कविता लिखना शुरू करता, तीन पंक्तियां लिखता और रुक जाता, सालों गुजर जाते, और अचानक एक दिन, वह उसमें दो पंक्तियां-

और जोड़ देता और फिर रुक जाता।

चालीस हजार अधूरी कविताएं।

उसके मरने से ठीक पहले किसी व्यक्ति ने उससे आ-

आखिर तुम यह कर क्या रहे हो?

यह इतनी सुन्दर काव्य पक्तियां हैं, तुम इन कविताओं को पूरा क्यों नहीं कर देते?

उसने उत्तर दिया: मैं उन्हें पूरा कैसे कर सकता हूं?

मैंने उन्हें कभी लिखा ही नहीं। वे तो स्वयं ही उतरीं। कहीं अज्ञात से आईं। जब वे स्वयं से आईं, आ गईं।

जब वे नहीं आतीं, तो नहीं आतीं, इसमें मैं क्या कर सकता हूं?

उन्हें खींच कर आने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।

मैं नहीं जानता कि वे कहां से आईं?

कभी कोई पंक्ति चांदनी से झरी, कभी कोई पंक्ति अचानक फूल सी खिल उठी।

कभी-कभी पूरी कविता ही क्रमिक रूप से उतरी,

और कभी नहीं भी उतरी और कुछ भी नहीं किया जा सका।

क्योंकि मैं स्वयं नहीं जानता था कि वे काव्य पंक्तियां कहां से आ रही हैं? और सत्य बात तो यह है कि जब वे आईं, तो मैं वहां था ही नहीं।

मैं तो इतना अधिक विस्मय विमूढ होकर केवल एक शून्यता भर रह गया था, इसलिए मैं उन अधूरी कविताओं को पूरा कैसे कर सकता हूं?

यही कारण है पुरानी कविताएं बिना किसी के हस्ताक्षर के आज भी जीवित कोई भी नहीं जानता कि उन्हें किसने लिखा?

किसने लिखे महानतम कविताओं में उपनिषद?

उनकी रचना किसने की, कोई भी नहीं जानता।

उन कवियों ने उन पर अपने हस्ताक्षर ही नहीं किए।

उन्होंने अपना नाम इसलिए अंकित नहीं किया,

क्योंकि उन्होंने विनम्र होकर यह अनुभव किया,

कि वे उनके रचयिता, अथवा सृजनहार हैं ही नहीं, वे तो कहीं अज्ञात से उतरी हैं।

जब नीनागावा से पूछा गया, 'आप कौन है?'

यदि वह अन्य दूसरे सामान्य कवियों, लेखकों और साहित्यकारों की भांति अपने अहंकार से भरा होता, तो उसने कुछ इस तरह कहा होता:

"आप मुझे नहीं जानते, मैं गौरवमय काव्य का रचयिता नोबेल पुरस्कार विजेता हूं और सम्राट ने भी मेरी कविताओं की प्रशंसा की है

और अपने राज्य का कवि बनाकर मुझे सम्मानित किया है। "

नहीं, नीनागावा ने कहा: मैं बौद्ध धर्म का एक श्रद्धालु उपासक हूं।

उसने अपनी कविता के बारे में कुछ कहा ही नहीं,

उसने अपने नाम की प्रसिद्धि के बारे में कोई बात ही नहीं की,

और न उसने स्वयं अपने बारे में कुछ भी बताया।

उसने साधारण रूप से इतना ही कहा : मैं बौद्ध धर्म का, बुद्ध का एक उपासक हूं।

एक श्रद्धालु उपासक-यह प्रदर्शित करता है-

कि वह वहां अपने हृदय के कारण अपने प्रेम के कारण आया था।

वह वहां कोई तर्क-वितर्क करने की वजह से नहीं आया था,

वह वहां अपनी भावनाओं के कारण, एक श्रद्धालु बनकर आया था।

इक्यू ने पूछा: आप कहां के हैं?

नीनागावा ने उत्तर दिया, आपके ही क्षेत्र का।

एक बहुत सुन्दर संकेत और प्रतीक है यह।

वास्तव में वह उसी क्षेत्र से आ रहा था

देश के जिस क्षेत्र अथवा भाग से इक्यू आया था।

लेकिन वह उस भाग के बाबत बता ही नहीं रहा था।

वह आंतरिक क्षेत्र के बारे में, अपनी तरिक-खोज के बारे में बता रहा था। भले ही इस क्षेत्र में आप अधिक आगे हों

आप हो सकता है पहुंच भी गए हों वहां, और मैं केवल एक नव प्रवेशी हूं लेकिन मैं हूं आपके ही क्षेत्र का, हम लोगों की खोज एक ही है।

मैं भी एक सहयात्री हूं।

एक बार तुम्हारा हृदय, सत्य को जानने की ओर प्रवृत्त हो जाए

तो तुम सभी बुद्धों के सहयात्री बन जाते हो।

वे वहां पहुंच गए हैं, तुम भी पहुंच जाओगे एक दिन।

हो सकता है इसमें कई जन्म लग जाएं

लेकिन इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता-तुमने मार्ग पर यात्रा का शुभारम्भ कर दिया है।

तुम हो सकता है, अभी शुरुआत ही कर रहे हो,

लेकिन अब तुम एक सहयात्री हो।

नीनागावा ने उत्तर दिया- आपके ही क्षेत्र का,

मैं भी आपके उसी संसार का ही एक भाग हूं जहां आप रहते हैं

इक्यू ने पूछा: और इन दिनों वहां कैसा क्या हो रहा है?

वह उसे धकियाते हुए उकसा रहा है,

हो सकता है वह केवल बहाने बना कर कहीं से उधार ली हुई सुन्दर विद्वत्तापूर्ण बातों से उसे धोखा देने की कोशिश तो नहीं कर रहा है?

हो सकता है, उसने ज़ेन शास्त्रों का अध्ययन किया हो,

जहां ऐसे संवादों का उल्लेख किया गया है।

लेकिन वह इक्यू से बचकर नहीं जा सकता,

यदि वह बहाने बना रहा है, तो वह कहीं न कहीं गिरेगा ही।

आह! और इन दिनों वहां कैसा क्या हो रहा है?

इक्यू उसे वापस पीछे ले जाना चाहता है।

नीनागावा भी इस बात को भली भांति समझ रहा है

कि 'आपके क्षेत्र से' उसका क्या अर्थ है?

लेकिन वह उसे एक क्षण भी सोचने की अनुमति नहीं देना चाहता।

इसीलिए वह पूछता है: और इन दिनों वहां कैसा क्या हो रहा है?

कौन वहां का प्रधानमंत्री बन गया है?

किसकी पत्नी किसके साथ भाग गई है?

कोई अफवाह, कोई गपशप: आखिर वहां उस क्षेत्र में क्या कुछ चल रहा है? कुछ न कुछ घटनाएं वहां जरूर घटी होंगी-

कोई व्यक्ति मरा होगा, किसी का विवाह हुआ होगा

कुछ न कुछ घटनाएं घटी ही होंगी आखिर वहां क्या कुछ हो रहा है?

नीनागावा ने कहा: कौवे, 'कांव कांव' करते रहते हैं। गौरइयां चटचमती रहती हैं।

मंत्री, प्रधानमंत्री और उनका राजनीतिक संसार,

बाजार और अर्थशास्त्र, ये चीजें सच्चा इतिहास नहीं हैं।

ये केवल दुर्घटनाएं या संयोग हैं, जो केवल परिधि पर घटते रहते हैं।

ये उस शाश्वत जगत का भाग नहीं हैं, वे हर समय घटते ही रहते हैं

यहां क्या शाश्वत है? उनके लिए जो उसे जानते हैं, केवल वही असली खबर है।

और जो उसे नहीं जानते, उनके लिए जो कुछ संयोगवश अथवा दुर्घटनावश हो रहा है, वही एकमात्र समाचार है।

नीनागावा ने उत्तर दिया: कौवे 'कांव कांव' करते रहते हैं और गौरेयां चहचहाती रहती हैं।

यही शाश्वत समाचार है जो सदा होता ही रहता है,

और अभी भी हो रहा है।

गर्मी और सर्दी स्वाभाविक रूप से आती जाती हैं, और बादल घिरते है और उड़ जाते हैं, यही शाश्वत है सब कुछ।

सुबह सूर्योदय होता है और शाम सूर्य अस्त हो जाता है

और रात आकाश में तारे झिलमिलाते हैं,

और ऐसा सभी कुछ अभी भी हो रहा है।

यही प्रामाणिक समाचार है।

कौवे इस बात की फिक्र नहीं करते कि कौन प्रधानमंत्री बना,

और गौरेयों का जरा भी ध्यान संसार की इन घटनाओं की ओर नहीं जाता,

केवल मनुष्य ही अपने अन्दर यह कूड़ा कर्कट भरे जा रहा है।

हेनेरी फोर्ड ने कहा है – 'इतिहास वह शैथ्या है, जिस पर लोग चिर निद्रा में सो गए हैं।'

एक इतने अधिक धनी व्यक्ति से ऐसा वक्तव्य आना,

यह बहुत दुर्लभ चीज है। लेकिन यह सत्य है।

इससे क्या फर्क पड़ता है कि नेपोलियन जीतता है या हार जाता है? कौन शासन करता है? शाश्वत अस्तित्व निरंतर गतिशील है।

इन सभी घटनाओं से बेखबर, कि वहां क्या हो रहा है?

नीनागावा क्या कह रहा है? वह कह रहा है, अस्तित्व हमेशा से वैसा ही है, कौवे, ' कांव-कांव ' करते हैं, गौरेयां चहचहाती रहती हैं।

और आप अपने खयालों में अभी इस समय हैं कहां?

इक्यू की कठोरता, अब दूसरे आयाम से आक्रमण करती है।

और आप अपने खयाल से, अभी इस समय हैं कहां?

नीनागावा उत्तर देता है : 'नीले-बैंजनी फूलों की सुन्दर घाटी में।'

वह मठ, मुरस्कीनो की नीले बैंजनी फूलों के क्षेत्र के नाम से जाना जाता था। इक्यू ने पूछा: क्यों?

आप इसे इस नाम से क्यों पुकारते हैं? क्या इसलिए क्योंकि-

आप इस समय गहरे नीले बैंजनी फूलों के क्षेत्र में हैं?

नीनागावा ने उत्तर दिया, चारों ओर ही मिसकैंथस, सूरजमुखी

मॉर्निंग ग्लोरी, क्यारे सुनहरे रंग के काइसनथेम्स, और ऑस्टर के फूल खिले हुए हैं।

नीनागावा यह नहीं कहता कि इस मठ का नाम नीले बैंजनी फूलों का क्षेत्र

नामों का सम्बन्ध अतीत की स्मृतियों से है

और सद्गुरु पूछ रहा था, अभी वर्तमान के बारे में।

और अभी तो चारों ओर बस फूल ही फूल हैं...

मिसकैंथस, मार्निंग ग्लोरी, सूरजमुखी, कॉइसनथेम्स और आस्टर के फूल। ये सभी फूल इस घाटी को गहरे नीले और बैंजनी रंग से रंग देते हैं।

जब इक्यू ने अभी के बारे में पूछा तो नीनागावा ने ' अभी ' के बारे में उत्तर दिया।

इक्यू जैसा सद्गुरु वास्तव में एक असम्भव व्यक्तित्व है। वह जरा भी विश्राम नहीं लेता।

उसने पूछा: और जब ये मुरझा जाएंगे, उसके बाद?

ये फूल अभी तो यहां हैं, बिल्कुल ठीक।

इसीलिए आप इस क्षेत्र को गहरे नीले बैंजनी फूलों का क्षेत्र कहते हैं। लेकिन शीघ्र ही ये फूल भी चले जाएंगे, तब आप इस घाटी को क्या कहकर पुकारेंगे?

नीनागावा ने उत्तर दिया: यह मियाजीनो है-शरद ऋतु के फूलों का क्षेत्र।

यह बात समझ लेने जैसी हैं।

बादल आते हैं और बरस कर चले जाते हैं-यह एक ही सिक्के के दो पहलू है।

फूल खिले हैं और तब वे मिट जाते हैं-

ये भी एक ही घटना या चीज के दो पहलू हैं।

उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनों विपरीत नहीं हैं:

वे एक ही चीज के दो पहलू हैं।

अभी यहां फूल खिले हैं, इसलिए इसे बैंजनी फूलों की घाटी कहा जाता है। और जब यह फूल चले जाएंगे तो लोग कहेंगे-

कि यह वह क्षेत्र है, जहां इस समय शरद् ऋतु में खिलने वाले फूल नहीं हैं। यह फिर भी बैंजनी फूलों की घाटी ही रहेगी,

लेकिन अपने दूसरे पहलू से फूलों की अनुपस्थिति के कारण।

एक बार ऐसा हुआ कि एक ज़ेन सद्गुरु अपनी मां से बहुत अधिक प्रेम करता था। ज़ेन शिष्य बनने से पूर्व ही, वास्तव में उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी।

वह एक ज़ेन भिक्षु बनना चाहता था, लेकिन उसकी मां ने कहा:

तुम्हारे पिता की मृत्यु हो चुकी है और मैं बेचारी अकेली असहाय हूं।

इसलिए उसने कहा: आप फिक्र न करें। मैं भले ही भिक्षु बन जाऊं,

लेकिन मैं आपका बेटा ही बना रहूंगा और आप मेरी मां।

मैं कुछ भी छोड़ नहीं रहा हूं और न आप कुछ भी खो रही हैं।

इसलिए उसकी मां ने फिर उसे भिक्षु बनने की अनुमति दे दी।

वह अपनी मां से बहुत अधिक प्रेम करता था।

जब वह अपनी मां के लिए चीजें खरीदने बाजार जाता, तो लोग उस पर हंसते,

वे कहते हैं: हम लोगों ने एक भिक्षु को कभी भी चीजों को खरीदते हुए नहीं देखा।

बौद्ध भिक्षु केवल भिक्षा मांगते हैं, और न केवल वह भिक्षा ही मांगता था, वह मछली और मांस भी खरीद रहा था,

लोग उसका उपहास उड़ाते हुए कहते थे, यह तो बहुत अधिक हो गया। वस्तुत: वह यह चीजें अपनी मां के लिए ही खरीदता था, स्वयं अपने लिए नहीं :

वह मांस मछली पसंद करती थी, क्योंकि वह धार्मिक भिक्षुणी या संन्यासिनी

नहीं थी।

तब, जब उसकी मां ने लोगों को ही नहीं, पूरे कस्बे को एक भिक्षु को मछली खरीदने पर हंसते और उपहास उड़ाते हुए देखा, तो वह शाकाहारी बन गई। और चूंकि लोग उसे चीजें खरीदते देखकर हंसते थे,

उसकी मां ने कहा: तुम बाजार मत जाया करो। मैं स्वयं जाकर चीजें खरीद लूंगी।

लेकिन उसका पुत्र निरंतर उसे प्रेम करता रहा।

तब एक दिन जब वह कहीं प्रवचन देने गया था,

उसकी मां की मृत्यु हो गई, वह वहां था ही नहीं।

वह ठीक समय पर घर आ गया, मृत शरीर अभी भी वहां था,

और लोग उसे श्मशान ले जाने की तैयारी कर रहे थे।

वह मृत शरीर के पास आकर बोला: " मां! तो तुमने छोड़ ही दिया शरीर। " और उसने स्वयं ही उसकी ओर से उत्तर देते हुए कहा : "हां बेटे! मैंने छोड़ दिया शरीर।"

तब उसने कहा: "आप जरा भी फिक्र न करें।"

क्योंकि शीघ्र ही मैं भी तो अपना शरीर छोडूंगा।

तब मां की ओर से उत्तर देते हुए उसने कहा : "ठीक है, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी।"

और तब उसने लोगों से कहा:

मैंने अपनी मां से अलविदा कह दी। संवाद पूरा हुआ।

मेरे लिए दाह संस्कार पूरा हो गया। आप लोग मृत शरीर को ले जा सकते हैं। किसी व्यक्ति ने उससे पूछा: हम लोग कुछ समझे नहीं आपकी बात,

आखिर मामला क्या है? आप अभी किससे बातें कर रहे थे?

उसने कहा: मैं अपनी मां की अनुपस्थिति से बात कर रहा था,

क्योंकि वह उसके अस्तित्व का दूसरा पहलू है।

उन लोगों ने पूछा – लेकिन आप उत्तर क्यों दे रहे थे?

उसने कहा: क्योंकि वह अब उत्तर नहीं दे सकती, इसलिए मुझे ही दोनों काम करने पड़े।

अनुपस्थिति उत्तर नहीं दे सकती, इसलिए मुझे उसकी ओर से उत्तर देना पड़ा।

लेकिन वह अभी भी अपने अनुपस्थित आयाम में है।

इसलिए जब इक्यू ने पूछा: और जब वे चले जाएंगे, उसके बाद?

नीनागावा ने उत्तर दिया, यह मियाजीनो है-शरद ऋतु में खिलने वाले फूलों की घाटी तो यह रहेगी ही।

यह है वही क्षेत्र, लेकिन अपने अनुपस्थित पहलू के रूप में। प्रकट अथवा अप्रकट, अस्तित्व में अथवा अस्तित्वहीन,

और जीवन अथवा मृत्यु यह उसी एक चीज के ही दो पहलू हैं, इसमें चुनने जैसा कुछ है ही नहीं, और जो चुनते हैं, वे मूर्ख हैं, और अनावश्यक रूप से दुःख और पीड़ा सहन करते हैं।

अब विस्मयाभिभूत होकर इक्यू ने अंतिम प्रश्न पूछा:

जब फूल बिदा हो जाते हैं तो इन मैदानों में फिर क्या घटता है? नीनागावा ने उत्तर दिया: झरने हंसते खिलखिलाते हुए बहते हैं, और तेज हवा अपने साथ सब कुछ उड़ाकर ले जाती है, जैसे वह घाटी को बुहार देती है।

स्मरण रहे : यह देन जैसा है, लेकिन यह पूरी तरह ज़ेन नहीं है। वह एक कवि है, गहरी समझ का एक बहुत महान कवि,

लेकिन कविता का सर्वोच्च, केवल ज़ेन का प्रारम्भ है,

वह धर्म का भी शुभारम्भ है।

है यह सब कुछ ज़ेन जैसे ही तत्वों वाला।

वह समझदार है, उसने एक विशिष्ट झलक देखी है,

उसके हृदय के द्वार खुले हैं, वह संवेदनशील है।

उसने अंधेरे में टटोला है, और वह अपनी ही खोज के द्वारा उससे टकराया भी है, उसे एक विशिष्ट अनुभूति का स्वाद मिला है।

लेकिन अभी भी वह केवल एक झलक है।

ऐसा कभी-कभी घट जाता है-

एक अंधेरी रात में अचानक बिजली कौंध जाती है, और तुम्हें एक झलक मिल जाती है,

तब फिर से अंधेरा घिर आता है।

यह वह है, जो एक महान कवि को घटता है:

वह ठीक सीमा रेखा पर खड़ा हुआ है

जहां से वह उस पार की कुछ झलक पा सकता है।

लेकिन वे केवल झलकें हैं। वे ज़ेन जैसी हैं।

वे ज़ेन कब बनेंगी?

वे केवल तभी ज़ेन बनेंगी, जब वे लम्बी अवधि तक झलकें ही न रहेंगी, लेकिन वे तुम्हारा अस्तित्व बन जाएंगी।

तब तुम क्षण-क्षण उन्हीं में जीते हो।

वे आती और जाती नहीं।

वे प्रामाणिक रूप से तुम्हारा आंतरिक अस्तित्व ही बन जाती हैं, ठीक उसी तरह जैसे तुम हो।

फिर वे बिजली की कौंध की तरह नहीं होतीं,

भरी दोपहर में वह प्रकाश की बाढ़ की तरह पूरा दिन ही बन जाती हैं। आकाश में ऊंचाई पर स्थित सूर्य जैसा प्रकाश स्रोत वहां बना ही रहता है। फिर वहां अंधकार के आने की कोई सम्भावना नहीं रह जाती।

फिर वह झलक न होकर तुम्हारा भाग बन जाती हैं।

तुम जहां भी जाते हो, उसे साथ लिए चलते हो।

तुम्हारा आंतरिक प्रकाश अब प्रदीप्त हो रहा है-

तुम अब संयोगों पर निर्भर नहीं रहते। तुम अब उसमें रम जाते हो।

वह तुम्हारा घर बन जाता है।

बुद्धि के द्वारा सत्य तक पहुंचने का प्रयास करना ठीक ऐसा ही है

जैसे कोई व्यक्ति कानों के द्वारा देखने का प्रयास करे।

ऐसा होना सम्भव ही नहीं है। कान सुन सकते हैं, लेकिन देख नहीं सकते। हृदय के द्वारा सत्य तक पहुंचने का प्रयास करना इस तरह है

जैसे कोई हाथों से देखने का प्रयास करे।

हाथ देख तो नहीं सकते

लेकिन वे फिर भी एक झलक दे सकते हैं, कि देखना क्या हो सकता है? एक अंधा व्यक्ति, यदि एक स्त्री से प्रेम करता है

तो वह उसके चेहरे और शरीर को छूकर, उसके उभारों, गोलाइयों, मोड़ों उष्णता और उसकी संगमरमर जैसी संरचना का हाथों द्वारा ही

एक विशिष्ट झलक को देखने जैसा कुछ अनुभव करता है।

हाथ तुम्हें देखने जैसी एक विशिष्ट झलक दे सकते हैं,

ठीक-ठीक पूरी तरह देखने जैसी तो नहीं, क्योंकि हाथ कैसे देख सकते हैं? वे केवल टटोल सकते हैं।

लेकिन जब तुम बंद नेत्रों से किसी के चेहरे का स्पर्श करते हो

तुम उसके मोड़ों ओर घुमावों से नाक, कान और आंखों को छूकर

यह अनुभव कर सकते हो कि चेहरा किस तरह का होगा।

एक कवि एक संवेदनशील हाथ की ही भांति होता है,

जो अपने हाथों के द्वारा सत्य की प्रकृति का अनुभव करता है

उसे ज़ेन जैसी ही कुछ विशिष्ट झलकें मिलती हैं

और ज़ेन का एक प्रामाणिक व्यक्ति आंखों की भांति होता है,

वह टटोलता नहीं है, उसे हाथों से स्पर्श करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है,

क्योंकि वह देख सकता है।

नीनागावा के ज़ेन सदृश उत्तरों से विस्मयाभिभूत होकर

सद्गुरु इक्यू ने उसे अपने साथ कक्ष में ले जाकर उसके सामने चाय प्रस्तुत की।

ये सभी यह प्रदर्शित करने के संकेत और प्रतीक हैं

कि तुम्हें निकट से निकटतम आने की अनुमति दे दी गई।

और उसने उसे स्वयं ढालकर चाय प्रस्तुत की।

चाय, ज़ेन का वह प्रतीक है, जिसका अर्थ है सजगता और होश,

क्योंकि चाय तुम्हें अधिक सजग और सचेत बनाती है।

चाय का आविष्कार बौद्धों द्वारा ही किया गया,

और सदियों से वे चाय का प्रयोग ध्यान में सहायक होने के लिए करते रहे हैं। और चाय इसमें सहायक है भी

यदि तुम एक प्याला कड़क चाय का पी लो, और तब ध्यान करने बैठो
तो कम से कम एक घंटे तक तुम्हें नींद नहीं आएगी,
और तुम सचेत बने रहोगे।
अन्यथा तुम जब भी विश्रामपूर्ण होकर शांति का अनुभव करोगे
नींद आ जाएगी। नींद को दूर करने के लिए चाय सहायता करती है।

यह कथा कही जाती है कि जब बोधिधर्म चीन के एक विशिष्ट पर्वत ' ता ' पर बैठा हुआ ध्यान कर रहा था।

उस 'ता' नाम के पर्वत से ही, 'चा' अर्थात् 'टी' का नाम पड़ा।

उस पर्वत का उच्चारण, 'ता' अथवा 'चा' के रूप में किया जा सकता है, इसी कारण भारत में ही 'टी (Tea)' को चाय अथवा चा कहा जाता है। बोधिधर्म ध्यान कर रहा था, और वास्तव में वह बहुत बड़ा ध्यानी था। वह अट्ठारह घंटे तक ध्यान करना चाहता था, लेकिन यह कठिन था। उसे बार-बार नींद आने लगती थी,

और उसकी पलकें बार-बार झपकने लगती थीं।
इसलिए उसने अपनी पलकों को काटकर बाहर फेंक दिया,
और अब वहां आंखों के बंद होने की कोई सम्भावना ही नहीं रह गई। यह कहानी बहुत सुन्दर है-
वे ही पलकें पहली बार चाय का बीज बनीं,
और उनसे एक विशिष्ट पौधे का जन्म हुआ।

उस पौधे की पत्तियों से बोधिधर्म ने संसार में पहली बार चाय तैयार की, और वह यह अनुभव कर आश्चर्यचकित रह गया,

कि यदि तुम उस पौधे की पत्तियों को उबाल कर पी लो,
तो तुम एक लम्बी अवधि तक सजग बने रहोगे।
इसलिए ज़ेन के लोग सदियों से चाय पीते आ रहे हैं,
और चाय पीना उनके लिए एक बहुत-बहुत ही पावन कृत्य बन गया है।

जब एक ज़ेन सद्गुरु चाय स्वयं प्यालों में डालकर प्रस्तुत करता है,
तो यह एक प्रतीक है और इस बात का संकेत है

कि वह इसके द्वारा यह कह रहा है: अधिक सजग और होशपूर्ण बनो। नीनागावा को चाय प्रस्तुत कर वह जैसे कह रहा है, तुम सत्पथ पर चल रहे हो। तुम हो तो ठीक रास्ते पर, लेकिन तुम थोड़ा सोए-सोए चल रहे हो। तुमने दिशा तो पा ली है, अब इसी दिशा में आगे बढ़ते जाओ।

शीघ्र ही तुम्हारा ज़ेन जैसा अस्तित्व, ज़ेन ही बन जाएगा,
लेकिन तुम्हें कुछ और अधिक होशपूर्ण होने की आवश्यकता होगी।

नीनागावा के ज़ेन जैसे वक्तव्य से विस्मयाभिभूत होकर इक्यू उसे अपने साथ अपने कक्ष में ले गया और उसे चाय प्रस्तुत की।

वह चाय नहीं होश परोस रहा है, एक पूरा प्याला भर होश,

यह इस बात का प्रतीक है कि अब तुम्हें और अधिक होशपूर्ण बनना चाहिए। उसे इसी सब की तो जरूरत है।

तब इक्यू ने आशु कविता के रूप में यह हाइकू कही: मैं विविध व्यंजन परोस कर
आपका स्वागत करना चाहता हूं।
पर आह! इस लेन क्षेत्र में
मैं चाय के सिवा और कछ भी प्रस्तुत नहीं कर सकता। अथवा केवल 'कुछ नहीं' ही भेंट कर सकता हूं।

इसके दो अर्थ हैं।
सामान्य अर्थ यही है
कि ज़ेन क्षेत्र में सुरुचिपूर्ण भोजन के प्रति संवेदनशील होने की अनुमति नहीं है।
वहां बहुत ही सादा भोजन ने की अनुमति दो
चावल, थोड़ी-सी तरकारी, और चाय। यहां विविध व्यंजन लेने की अनुमति नहीं है।
इसलिए पहला इसका साधारण अर्थ यही है:
मैं आपको विविध व्यंजन परोसना चाहता हूं
लेकिन आह! इस ज़ेन क्षेत्र में
हम कुछ भी तो नहीं परोस सकते।
यह इक्यू का आखिरी प्रयास था,
जिससे वह उसके गहनतम केंद्र में तीर की तरह प्रविष्ट होकर
यह देख सके, कि वह इसका अर्थ समझ सकता है अथवा नहीं? और इसका दूसरा अर्थ है:
मैं तुम्हें विविध व्यंजन परोस कर
तुम्हारा स्वागत करना चाहता हूं।
आह! पर इस देन क्षेत्र में
मैं केवल 'कुछ नहीं' को ही भेंट कर सकता हूं।
मैं भेंट में 'कुछ नहीं' ही दे सकता दूं।

इसका यह अर्थ भी हो सकता है: मैं कोई भी चीज भेंट में नहीं दे सकता। अथवा इसका यह भी अर्थ हो सकता है:

मैं तुम्हें केवल 'कुछ नहीं' ही दे सकता हूं
तब 'कुछ नहीं' ही भेंट है।

होश और 'कुछ नहीं यह दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं।
तुम जितने अधिक होशपूर्ण होते हो, तुम उतना ही अधिक
'कुछ नहीं' होने का अनुभव करते हो।
इसलिए पहले तो इक्यू ने चाय प्रस्तुत कर जैसे कहा: होशपूर्ण बनो।
तब वह कहता है, मैं अन्य कोई और चीज प्रस्तुत नहीं कर सकता
सिवाय 'कुछ नहीं' के। चाय प्रस्तुत किए जाने के बाद-

यह सद्गुरु द्वारा फेंका गया आखिरी जाल था।

यदि नीनागावा कुछ होने का बहाना बना रहा होता, तो निश्चित और विश्राम पूर्ण होकर उसने सोचा होता:

मैं अब स्वीकार कर लिया गया। सद्गुरु मुझे स्वयं अपने कक्ष में ले गए मुझे स्वयं अपने हाथों से चाय डालकर प्रस्तुत की।

चाय लेने के बाद वह निश्चित होकर आराम करता।

क्योंकि तुम बहुत अधिक देर तक बहाना नहीं बना सकते।

बहाना बनाना या ढोंग ओढ़ना एक ऐसा तनाव है, कि एक व्यक्ति को तनाव छोड़कर विश्राम में जाना ही होता है।

और जब सद्गुरु ने तुम्हें स्वयं अपने हाथों से चाय डालकर प्रस्तुत की हो, अब वहां बहाना बनाए रखने की कोई जरूरत ही नहीं है,

प्रत्येक चीज समाप्त हो चुकी।

इसलिए वह आखिरी जाल था।

नीनागावा ने उत्तर दिया:

ओ करुणामय महान आत्मा।

जो मेरा इतना अधिक ख्याल कर आप सर्वाधिक कमनीय विविध भेंटों में से एक-एक भेंट,

जो 'कुछ नहीं' का उपहार दे रहे हैं

वही मौलिक शून्यता है।

नहीं! उसके पास वास्तव में, ज़ेन जैसी ही समझ है,

वह केवल मात्र एक कवि ही नहीं है।

अस्तित्व के प्रामाणिक काव्य की कोई चीज उसे जरूर घटी है

प्रत्येक चीज समाप्त हो चुकी।

इसलिए वह आखिरी जाल था

नीनागावा ने उत्तर दिया :

"ओ करुणामय महान आत्मा!

मेरा इतना अधिक ख्याल कर,

आप सर्वाधिक कमनीय सुंदर भेंटों में से एक भेंट

जो ' कुछ नहीं ' का उपहार दे रहे हैं,

वही मौलिक शून्यता है।

इससे अधिक कुछ और दिया ही नहीं जा सकता।

यही आखिरी परम कमनीय सुन्दर भेंट है

जो स्वयं अस्तित्व का ही सर्वोच्च स्वाद है।

यह ऐसा है जैसे मानो तुमने परमात्मा को ही भोजन बनाकर पचा लिया हो। सभी सुन्दरतम विविध व्यक्तियों में यह 'कुछ नहीं' की भेंट सर्वाधिक सुन्दर है।

उससे बहुत गहरे में प्रभावित होकर सद्गुरु ने कहा: मेरे वत्स! तुमने तो बहुत अधिक सीख लिया

यह सीखना ज्ञान नहीं है।

ज़ेन में सीखने और ज्ञान के मध्य एक अंतर है,

मैं पहले इसे स्पष्ट करना चाहता हूं।

ज्ञान या जानकारी उधार की होती है, जबकि सीखना तुम्हारा होता है। ज्ञान होता है-शब्दों, भाषा और धारणाओं के द्वारा

सीखना होता है अनुभव के द्वारा।

ज्ञान का हमेशा अंत हो जाता है, तुमने जान लिया, वह पूरा हो गया। सीखना कभी भी पूरा नहीं होता, वह हमेशा मार्ग पर ही गतिशील रहता है। सीखना एक प्रक्रिया है, कोई भी उसे किए चले जाता है,

और जीवन के आखिरी क्षण तक, कोई भी सीखता ही रहता है।

ज्ञान कहीं किसी स्थान पर रुक जाता है और अहंकार बन जाता है। सीखना कभी भी नहीं रुकता, वह विनम्र बना रहता है।

ज्ञान उधार लिया हुआ होता है

तुम अपने ज्ञान से सद्गुरु को कभी धोखा नहीं दे सकते,

क्योंकि तुम्हारे शब्द केवल परिधि पर ही रहेंगे,

गहरे में तुम्हारा अस्तित्व तुम्हें प्रकट कर देगा।

तुम अपने को शब्दों में छिपा नहीं सकते।

एक सद्गुरु के लिए तुम्हारे शब्द पारदर्शी होते हैं।

तुम जो कुछ भी अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते हो

वह हमेशा उसके पीछे वहां छिपी वास्तविकता को देख सकता है।

यदि यह व्यक्ति भी केवल जानकारी या थोथे ज्ञान वाला रहा होता

तो इक्यू द्वारा तुरंत पकड़ लिया जाता।

लेकिन नहीं, वह वास्तव में एक ऐसा व्यक्ति था, जो सीख रहा था।

उसने सीखा था, वह ज्ञानी होने का ढोंग नहीं कर रहा था।

अस्तित्व और जीवन के विविध अनुभवों के द्वारा उसने बहुत कुछ सीखा था

'मेरे वत्स!' इक्यू ने कहा: तुमने बहुत सीखा है।

एक ज़ेन सद्गुरु द्वारा इतना कहना बहुत कुछ है,

क्योंकि वे सभी, ऐसी बात कहने के बारे में बहुत कंजूसी करते हैं।

जब एक ज़ेन सद्गुरु ऐसी कोई बात कहता है, तो उसका बहुत अर्थ होता है। और वह ऐसी बात केवल तभी कह सकता है,

जब वह वास्तव में प्रभावित होता है,

जब वह प्रामाणिकता से उसकी सच्चाई का अनुभव करता है

केवल तभी, वह ऐसी बात कह सकता है, अन्यथा नहीं।

इस बोध कथा को समझो और तुम स्वयं को उसके समानान्तर रखकर अनुभव करो।

क्या तुमने सीखा है अथवा तुमने केवल जानकारी ही इकट्ठी की है? इसे अपना बहुत ही महत्वपूर्ण नियम बना लो।

ज्ञान या जानकारी के द्वारा प्रभावित न होकर
स्वयं प्रवर्तित सहज स्वाभाविक प्रत्युत्तर आने दो,
केवल तभी तुम मेरे निकट से निकट आ सकोगे।
और केवल तभी एक दिन अन्दर ले जाकर,
मैं तुम्हें एक प्याला चाय पीने को आमंत्रित कर सकता हूं।
अन्यथा तुम केवल शारीरिक रूप से ही मेरे निकट हो सकते हो,
और उससे कोई भी सहायता मिलने वाली नहीं।
मुझे तुम्हें होश और सजगता परोसनी है,
और मुझे तुम्हें विविध सुन्दर व्यंजनों अथवा भेटों में से
सर्वाधिक मूल्यवान भेंट, 'कुछ नहीं' अर्थात् शून्यता देनी है।